सन्त-सप्तक



ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल



सन्त-सप्तक



जगद्गुरु श्रीरामनरेशाचार्य के जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पद–प्रतिष्ठित
होने के रजतजयंति–वर्ष के अवसर पर

सन्त–सप्तक

लेखक
ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

प्रकाशक
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्मारक सेवा न्यास
श्रीमठ, पंचगंगा, वाराणसी (काशी) (उत्तरप्रदेश)

प्रकाशक
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्मारक सेवा न्यास
श्रीमठ, पंचगंगा, वाराणसी (काशी) (उ. प्र.)
प्रथम संस्करण : 2014
द्वितीय संस्करण : 2015
अक्षर संयोजक
प्रिंस कम्प्यूटर्स
दिल्ली
मुद्रक
बी. के. ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

मूल्य : 300.00 रुपये

लेखकीय निवेदन

सन् 2013 में 'राजस्थान के सन्त और उनका साहित्य' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ था जिसका प्रबुद्ध पाठकों ने ही नहीं, सुधी विद्वानों ने भी सोल्लास स्वागत, समादर किया था। उसी स्वागत, समादर से प्रेरित होकर मैंने 39 सन्तों, भक्तों व सूफियों के बारे में लिखा जिनमें से कुछ को छोड़कर शेष सर्वथा अज्ञात अथवा अल्पज्ञात हैं। इन 39 रचनाकारों को (1) सन्त-सप्तक व (2) सूफी-सन्त-सौरभ दो पुस्तकों के रूप में सन् 2014 में प्रकाशित किया गया।

आपके हाथों में सन्त-सप्तक है जिसमें स्वामी रामानन्द, राजर्षि पीपा गागरोनी, धन्ना जाट, परसजी खाती, भक्त अंगद, भक्त भुवन चौहान व अवधूत रूपदास 'रामस्नेही' सम्मिलित हैं। सन्त-सप्तक का 1100 प्रतियों का प्रथम संस्करण मार्च 2014 में हुआ। पाठकों ने पुस्तक को हाथों-हाथ अपनाया और इसके द्वितीय-संस्करण का अवसर दिसम्बर 2014 में ही आ उपस्थित हुआ।

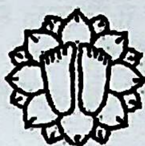
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीरामनरेशाचार्यजी का आदेश हुआ कि सूफी-संत-सौरभ में प्रकाशित 'सन्त सैन और उनकी रचनाएँ' आलेख श्री 'सन्त-सप्तक' में सम्मिलित हो जाये किन्तु पुस्तक का नाम 'सन्त-सप्तक' ही रहने दिया जाये। आचार्यश्रीजी के आदेशानुसार 'सन्त-सैन' से सम्बन्धित आलेख परिशिष्ट में दिया जा रहा है। इससे स्वामी श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज के एक अन्य महत्त्वपूर्ण शिष्य का प्रामाणिक विवरण इस पुस्तक में हो रहा है। जगद्गुरु रामानन्दाचार्य श्रीस्वामी रामनरेशाचार्यजी महाराज ने इस पुस्तक को स्वयं के रामानन्दाचार्य-पदप्रतिष्ठित होने के रजतजयन्ति महोत्सव के अवसर पर 'जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्मारक सेवा न्यास' से प्रकाशित करवाकर मुझे तो अनुग्रहित किया ही है, हिन्दी-साहित्य-जगत् पर भी कम उपकार नहीं किया है। मैं जगद्गुरु महाराजश्री के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

डॉ. श्रीउदयप्रताप सिंह भी कम धन्यवाद के पात्र नहीं हैं जिन्होंने जगद्गुरुश्री की सेवा में पुस्तक को प्रकाशित करने की सुदृढ़ संस्तुति की जिसके फलस्वरूप यह शोधग्रन्थ हिन्दी-साहित्य-जगत् को सुलभ होरहा है।

श्रीरामचरणचरणाश्रितः
ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल
सम्पादक : श्रीरामस्नेही-संदेश
60/60 रजतपथ, मानसरोवर, जयपुर-302020 (राजस्थान)
मोबाइल : 09351503555, 09811155375, 0141-2782609,
Email : bks@mactool.com

अनुक्रमणिका

॥सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः॥



श्रीसम्प्रदायाचार्य जगद्गुरु रामानन्दाचार्यपदप्रतिष्ठित

स्वामी रामनरेशाचार्यजी महाराज

श्रीमठ, पंचगंगा, वाराणसी



आचार्यमंगलाशासन

नमोस्तुरामाय

"सन्त-सप्तक" ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल के माध्यम से प्रकट होरहा है। यह अतीव प्रसन्नता की बात है। परमप्रभु ने इन्हें ही निमित्त बनाया। निश्चित् रूप से इनकी पुण्यशालिता अनुपम है। संतों व भक्तों का गुणगान परमेश्वर की ही सेवा है, क्योंकि दोनों ही अभिन्न हैं जिसे देवर्षि नारद ने भक्तिसूत्र में "तस्मिन् तज्जने भेदाभावात्" के रूप में प्रकट किया तथा भक्तों के प्रथम एवं निष्पक्ष गायक नाभादासजी ने "भगत भगति भगवन्त गुरु चतुर नाम बपु एक" के माध्यम से वर्णित किया।

संतों ने वेदों, स्मृतियों, पुराणों तथा इतिहासों में वर्णित मंगलमय भावों को समझकर तथा अपने जीवन में उतारकर जनसामान्य केलिय भाषा में अभिव्यक्त किया। वेदों तथा वेदानुकूल शास्त्रों की कल्याणमयी गंगा के विस्तार में महती एवं निर्विवाद भूमिका है, परन्तु संतों के प्रयासों ने उस गंगा को अतिशय व्याप्ति प्रदान की।

आचार्य रामानन्द की हिन्दी रचनाओं का पठन-पाठन तथा प्रकाशन का अभाव निश्चित् रूप से दुःखद तथा अन्वेष्य है, जबकि सम्प्रदाय में निरन्तर हिन्दी रचनायें होती रहीं तथा प्रकाशन भी होता रहा। सम्प्रदाय के आश्रमों में संस्कृत-रामानन्द की अपेक्षा हिन्दी-रामानन्द ही अधिकाधिक उपादेय हैं।

सन्त-सप्तक में स्वामी रामानन्द, राजर्षि पीपा गागरोनी, सन्त धन्ना जाट, सन्त परसजी खाती, भक्त अंगद तँवर, भक्त भुवन चौहान तथा सन्त रूपदास 'अवधूत' का जीवन-परिचय एवं उनकी रचनाओं को ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल ने जिस प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त श्लाघनीय एवं परमोपादेय है। इस प्रयास के माध्यम से असंख्य मानवों का जीवन परमधन्यता से मण्डित होगा।

संतों के नामों के पूर्व सन्त या भक्त ही तुलनात्मक रूप से शोभादायक होता है तथा अन्त में गुरु-प्रदत्त—'दास' 'शरण' एवं 'प्रपन्न'।

यह चिन्तनीय है कि दीक्षा के बाद भी तथा सन्तत्व की पूर्णता के पश्चात् भी प्रस्तुत सन्तों में इसका अभाव कैसे रहा? सप्तक-घटक संतों का जीवन-परिचय तथा रचनायें आज तक आधारहीन, अप्रामाणिक तथा अन्धानुकरण के माध्यम से ही प्रस्तुत होती रहीं। परिश्रम, प्रतिभा तथा तक-वितर्क के महाधनी ब्रजेन्द्र सिंहल ने सभी को प्रामाणिक तथा सुस्थिर स्वरूप प्रदान किया, जो ऐतिहासिक एवं परम्परा केलिये अनुकरणीय है।

सप्तक के अधिकांश संत निर्गुण-निराकार-आस्थावान हैं। आचार्यप्रवर रामानन्दजी तो दोनों ही धाराओं के प्रबलतम प्रवर्तक हैं। वैदिक सनातनधर्म का यह वैशिष्ट्य है "अनेकानेक कल्याणपथों का संस्थापन" जबकि दूसरों के यहाँ इसका नितान्त अभाव है। इसका मूल है मनुष्य-जीवन में रुचि एवं योग्यता की विभिन्नता।

मैं ब्रजेन्द्र सिंहल के अन्वेषी तथा प्रामाणिक-रचनात्मक सुदीर्घ जीवन केलिये श्रीरामजी के चरणों में प्रार्थी हूँ।

रामनरेशाचार्य

(स्वामी रामनरेशाचार्य)

स्वामी रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ

स्वामी रामानन्दाचार्य (वि.सं. 1356 से 1467) की हिन्दी रचनाओं की चर्चा पूर्व की अपेक्षा वर्तमानकाल में तुलनात्मक रूप से अधिक होने लगी है। कारण, वर्तमानकाल में देववाणी संस्कृत-भाषा का पठन-पाठन न्यून रूप में होने लगा है जबकि राष्ट्रीयभाषा हिन्दी के पठन-पाठन का प्रचलन बढ़ता जारहा है। इससे सन्त-भक्त-सम्प्रदायों में यह होड़ सी लगी रहती है कि वे भी अपने पंथ-प्रवर्तकों, प्रचारकों, सन्तों, महंतों को हिन्दी-उन्नायक सिद्ध करें और उनकी हिन्दी रचनाएँ साहित्यकारों के समक्ष प्रस्तुत करें।

रामानन्दी-वैरागी साधुओं, विद्वानों, आचार्यों, महंतों ने इसप्रकार का कोई ठोस प्रयत्न नहीं किया क्योंकि उनके मठों, मंदिरों व ठाकुरद्वारों में यातो स्वामी रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ संभवतः उनको उपलब्ध नहीं थीं या उनके मनों में संस्कृत-रामानन्द की छवि बसी हुई थी। अतः उन्होंने कभीभी हिन्दी-रामानन्द को जनता के सामने लाने का प्रयत्न नहीं किया।

सर्वप्रथम डॉ. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने कबीरपंथी, दादूपंथी व अन्य फुटकर हस्तलिखित ग्रंथों को आधार बनाकर स्वामी रामानन्द की हिन्दी रचनाओं को प्रकाशित कराया। दादूपंथी सन्तों ने अपनी पंचवाणी-पुस्तकों में अपने पंथ के सन्तों की वाणियों को तो लिख-लिखकर सुरक्षित रखा ही, अन्यान्य सम्प्रदायों, पंथों के सन्त-भक्तों की वाणियों को भी लिख-लिखकर नष्ट होने से बचाया। हाँ, यहाँ यह लिखना अनिवार्य है कि दादूपंथी सन्तों ने उन वाणियों अथवा रचनाओं को ही अपनी पुस्तकों में लिखा जो उनके सिद्धान्तों से मेल खाती थीं। उदाहरणार्थ सूर व तुलसी की रचनाओं का दादूपंथी सन्तों ने संग्रह तो किया किन्तु उनका नहीं किया जो उनके उपास्य के रूप. लीला व धाम से सम्बंधित थीं। मात्र नाम, विनती, विरह, उपदेश, चेतावनी, चाणक, प्रेम, विरह आदि-आदि से सम्बद्ध रचनाएँ लिखीं जिनके लिखने से दादूपंथ की मान्यताओं का समर्थन होता था।

स्वामी रामानन्दाचार्य की पाँच पदात्मक रचनाएँ दादूपंथी-पंचवाणी व संग्रह पुस्तकों में लिखी मिलती हैं। स्फुट रूप में रामरक्षास्तोत्र भी लिखा मिलता है। अन्तर्राष्ट्रिय-रामस्नेहि-सम्प्रदाय की पुस्तकों में पदों का संकलन तो मेरे देखने में नहीं आया, किन्तु 'रामरक्षास्तोत्र', 'भगतिजोग' व 'मूलमंत्र' जैसे ग्रंथ अवश्य लिखे मिलते हैं।

मैंने यहाँ स्वामी रामानन्दाचार्य की रचनाएँ कम से कम 15 स्रोंतो से संकलित की हैं। चूँकि अधिकतम स्रोत दादूपंथी हैं। अतः उनमें अधिकांशतः वे ही पद आवृत्त हुए हैं, जो प्रायः प्राचीनतम हस्तलिखित ग्रंथों में मिलते हैं।

रामरक्षास्तोत्र दादूपंथी पुस्तकों सहित रामस्नेहि-सम्प्रदाय की पुस्तकों में भी लिखा मिलता है। यह स्तोत्र इतना प्रसिद्ध है कि इसके अनुकरण पर दादूपंथ में जैमलजी चौहान ने व अन्तर्राष्ट्रिय-रामस्नेहि-संप्रदाय, शाहपुरा के भगवानदासजी ने भी रामरक्षास्तोत्रों की रचना की और आज भी इन संप्रदायों के सन्त व भक्त-सेवकादि स्वामी रामानन्दाचार्य के रामरक्षास्तोत्र के साथ अपने-अपने पंथ के रामरक्षास्तोत्रों का पाठ करते हैं। जैमलजी चौहान, सन्तप्रवर दादूदयालजी के 52 प्रधान शिष्यों में गिने जाते हैं। इनका कविताकाल वि॰सं॰ 1650 से 1670 के बीच अनुमानित किया जा सकता है। इस कालसीमा के आधार पर यह सिद्ध होता है कि रामानन्दाचार्य कृत रामरक्षास्तोत्र वि॰सं॰ 1600 के पूर्व की रचना है।

संभावना है कि रामरक्षास्तोत्र की हस्तलिखित प्रतियाँ रामानन्दी-मठों सहित कबीरपंथी मठों में भी मिल जाएँ। फिरभी यह ग्रंथ प्राचीन ही ठहरता है। यह सत्य है कि इस स्तोत्र की भाषा व्यवस्थित नहीं है। इसका एक ही कारण है और वह है, स्वामी रामानन्द के समय में हिन्दी-कविता की भाषा का मानक रूप स्थिर न हो पाना। स्वामी रामानन्द संस्कृत-भाषा के विद्वान् तथा योगसाधना में निष्णात् थे। अतः उनका संपर्क जनसामान्य के साथ-साथ नाथयोगियों व संस्कृतज्ञों से अवश्य ही रहा होगा। रामरक्षास्तोत्र जनसामान्य के लाभार्थ लिखा गया था। अतः इसमें बोलचाल की भाषा का प्रयोग होना समीचीन लगता है। स्वामी रामानन्द का योगसाधना-सम्पन्न होने से उनके द्वारा इसमें यौगिक-शब्दावली का प्रयोग भी उचित ही लगता है।

स्वामी रामानन्द के समय में मुसलमान हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बना रहे थे। ऐसी स्थिति में स्वामी रामानंद ने हिन्दूजाति का दो उपायों द्वारा, मनोबल ही नहीं बढ़ाया, उनको सुरक्षा भी प्रदान की। पहला उपाय था, वैरागी साधुओं को संघों में संगठित कर विधर्मियों से लोहा लेने को तैयार करना। आवश्यकता पड़ने पर ये संघ शास्त्र के स्थान पर शस्त्र बाँधकर लोहा लेने को तत्पर हो जाया करते थे।

दूसरा उपाय था, भगवदाराधना द्वारा जनता का मनोबल ऊँचा रखवाना। उनको कुछ ऐसे उपाय बताना जिससे वे कठिन से कठिन परिस्थिति में भी अपने आपको अडिग रख सकें। ऐसे उपायों में ही परिगणित था, रामरक्षास्तोत्र का निर्माण जिसके द्वारा जनता में यह भावना बद्धमूल होजाये कि हर-एक परिस्थिति में रामजी महाराज़ हमारी रक्षा करेंगे।

भगवच्छरणागति जो षड्विधा है, में एक प्रकार है, 'भगवान् हमारी रक्षा करेंगे', इसमें

अटल विश्वास। इस विश्वास को कायम रखने केलिये ही रामानन्दजी महाराज ने रामरक्षास्तोत्र की रचना की।

अतः रामरक्षास्तोत्र स्वामी रामानन्दजी की ही रचना है, ऐसा निर्णय होता है। इस बारे में एक बात और कहनी है।

स्वामी रामानन्द का रामरक्षास्तोत्र इतना प्रसिद्ध और प्रभावी रहा कि नाथपंथियों ने गोरखनाथ के नाम पर व रामानुजियों ने रामानुज के नाम पर रामरक्षास्तोत्र बनाकर प्रचारित कर दिये किन्तु इनको जनता में ही नहीं, उनके अनुयायियों में भी महत्व नहीं मिला। वैसे भी रामानुज तमिल थे। उनकी रचना यातो तमिल में या संस्कृत में होती, हिन्दी में नहीं हो सकती। इसीप्रकार गोरखनाथ ने यदि ऐसा कोई रक्षाकवच बनाया होता तो वह 'रामरक्षास्तोत्र' ने होकर 'नाथरक्षास्तोत्र' होता।

ऐसी स्थिति मे यही कहने में आता है कि 'रामरक्षास्तोत्र' स्वामी रामानन्द की ही रचना है। कुछ विद्वानों का कथन है कि रामरक्षास्तोत्र स्वामी रामानन्द की रचना न होकर वैरागी-सम्प्रदाय की तपसी-शाखा द्वारा निर्मित व प्रचारित ग्रंथ है किन्तु ऐसे विद्वान् ऐसा मानने के पीछे किसी या किन्हीं आधारों को प्रस्तुत नहीं करते। कहने या लिख देने मात्र से कोई कथन प्रमाण नहीं होजाता। उसके पीछे सुदृढ़ आधार होने चाहिए। अनेक हस्तलेखों के आधार पर तैयार किया गया पाठ यहाँ प्रस्तुत है। साथ में कवच भी दिया गया है। ग्रंथ 'भगतिजोग' व 'मंत्रजोग' के अंतिम दोहा छंदों पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि इनकी रचना स्वामी रामानन्द ने नहीं की होगी। उनके किसी शिष्य या शिष्यपरम्परा के सन्त ने की होगी। जैसाकि

ऐही भगति अनन्य है, बिरला पावै भेद।
भाग होइ तब पाइए, कह रामानँद गुरुदेव ॥14॥ भक्तिजोग
मंत्र जोग बिधि एह करौ, जो कोइ चाह्वै राम।
गुरु रामानन्द प्रताप तें, मन पाया बिसराम ॥11॥ मूलमंत्र

ये दोनों ग्रंथ ग्वालियर रामद्वारे में वि.सं. 1877 में सन्त ब्रह्मदासजी, शिष्य स्वामी रामजनजी वीतराग की देखरेख में उनकी शिष्या बीरूबाई द्वारा लिखी बड़ी पुस्तक में मिले हैं।

इन दोनों ग्रंथों की भाषा न तो 14 वीं शताब्दी की और न 15 वीं शताब्दी की ही है। अतः भाषा के आधार पर इनको स्वामी रामानन्द की रचना मानना असंभव है। साथ ही, 'कह रामानँद गुरुदेव' तथा 'गुरु रामानंद प्रताप तें' जैसी अर्धालियों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये ग्रंथ स्वामी रामानन्द की रचना न होकर उनके नाम पर लिखी गई रचनाएँ हैं।

विभिन्न हस्तलिखित ग्रंथों से 4 रागों के पाँच पदों का संकलन भी यहाँ किया गया

है। प्रारम्भिक तीन पद विक्रमसम्वत् 1660 में लिखी हुई पुस्तक से लिये गये हैं जबकि अगले दो पद (4-5) रज्जब की सरबंगी के आधार पर संग्रहित किये गये हैं। कई पंचवाणी-पुस्तकों में, जहाँ नामदेव के पद संग्रहित हैं वहाँ पाँचवाँ पद सन्त नामदेव की छाप से भी मिलता है। पद क्रमांक एक गुरुग्रंथ में भी संकलित है जिसको यथारूप गुरुग्रंथीयपाठ के नाम से प्रस्तुत किया गया है।

ये पद 1660 से 1670 वि.सं. के बीच लिखे ग्रंथों में मिले हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये इससमय से भी पूर्व रचित होकर प्रचलित होगये थे। साथ ही यह भी संज्ञान में आता है कि इन पदों को न कबीरपंथी सन्तों और न दादूपंथी सन्तों ने बनाया होगा। इनको स्वामी रामानंद ने ही बनाया होगा।

हाँ, इनकी विषयवस्तु अवश्य ही संस्कृत-रामानंदजी की विचारसरणि से मेल नहीं खाती। स्वामी रामानन्द की दो संस्कृत-रचनाएँ निःसंदिग्ध रूप से उनकी ही मानी जाती है। **'वैष्णवमताब्ज-भास्कर'** व **'रामार्चनपद्धति'**। 'वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' में विशिष्टाद्वैत- सिद्धांत का मंडन है जबकि रामार्चनपद्धति में विग्रहपूजा आदि कर्मकाण्डों का वर्णन है। इसके विपरीत, आलोच्य पदों में पूजापाठ, जपतप, तीर्थव्रत आदि की व्यर्थता प्रतिपादित कीगई है। इन पदों में कहा गया है कि परमात्मा घट में ही मिलता है, तीर्थादि में नहीं।

बहुत संभावना है, स्वामी रामानंद ने ये विचार व्यक्त किये हों क्योंकि उनके गुरु राघवानंदाचार्यजी तो महान् योगाचार्य थे ही, तब ही तो उन्होंने अल्पायु रामदत्त को दीर्घायु रामानन्द स्वामी बनाया। स्वामी रामानंद ने भी योगसाधना करके ही सिद्धि प्राप्त की थी। अतः उनका ध्यान भी आंतरिक-साधना की ओर अधिक था, बनिस्पत बाह्यसाधना के। चूँकि उनके संस्कार सगुण-साकार-परमात्मा की भक्ति के थे। अतः उनका सैद्धान्तिक मतवाद तो विशिष्टाद्वैत ही रहा किन्तु उनकी साधना योगाभिमुखी होगई।

योगमार्ग ब्रह्मात्मैक्य की ही बात करता है। योगियों ने बाह्याचारों की व्यर्थता प्रतिपादित की है। जातिपाँति, ऊँचनीच, लिंग-वर्ग आदि की खुली भर्त्सना योगियों ने की है। स्वामी रामानंद ने भी अपने भक्तिमार्ग में जाति-पाँति का बंधन बिल्कुल नही माना। लिंग-वर्ण, ऊँच-नीच केलिए उनके यहाँ कोई स्थान नहीं था। पीपा की पत्नी सीता, सुरसुरानंद की पत्नी सुरसरी आजीवन इनके साथ रहीं। रामानंद के पीपा जैसे राजा शिष्य थे तो रैदास जैसे चर्मकार भी शिष्य थे। अतः रामानंद के यहाँ न वर्ग भेद था, न वर्ण भेद था। इन उदार विचारों के पीछे सिद्धों और नाथों का संपर्क ही माना जा सकता है और इसीलिये ऐसा मानने का पक्का आधार है कि ये पद भी स्वामी रामानंद के ही हैं।

हाँ, यह कहा जा सकता है कि इनके मात्र 5 पद ही नहीं और भी रहे होंगे जिनकी खोजबीन होनी जरूरी है।

जैसा पूर्व में लिखा गया है, स्वामी रामानंद के उक्त पाँच पद अनेक हस्तलिखित प्रतियों में मिले हैं। मुख्य-मुख्य हस्तलिखित प्रतियों के विवरण इसप्रकार हैं।

ग्रंथांक	496	लिपिकाल	1660वि.सं.
"	501	"	1710 "
"	561	"	1780 "
"	497	"	1785 "
"	2	"	1797 "
"	34	"	1715 "
"	12	"	1733 "
"	-	"	1755 "
"	-	"	1817 "
"	-	"	1732 "
"	12	"	1741 "

रज्जब की सरबंगी व गोपालदास की सरबंगी-सरह-चिंतामणि जिनका समय 1660 से 1670 के बीच तथा 1684 वि.सं. क्रमशः है। और भी अनेक ग्रंथों में इन पदों की उपलब्धता है। दादूपंथ में इन पदों को लिखने का प्रचलन खूब रहा है।

नागरी-प्रचारणी-सभा, बनारस, से "रामानंद की हिन्दी रचनाएँ", नामक पुस्तक डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के सम्पादन में प्रकाशित हुई थी। इसके प्रधान-सम्पादक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी थे। इसमें उक्त 5 पदों के अतिरिक्त एक छठा पद भी प्रकाशित है जो हनुमानजी की आरती है और जो हनुमान-चालीसा में गोस्वामी तुलसीदास की छाप से प्रकाशित मिलती है। राजस्थानी हस्तलिखित ग्रंथों में मुझे अभीतक यह आरती स्वामी रामानंद की छाप युक्त नहीं मिली है। अतः मैंने इसका पाठ उक्त पुस्तक के आधार पर ही प्रस्तुत किया है।

'रामानंद की हिन्दी रचनाएँ', पुस्तक में तीन और छोटे-छोटे ग्रंथ भी प्रकाशित हुए हैं जिनको उक्त पुस्तक में स्वामी रामानंद की रचनाएँ मानी गई हैं। उनका पाठ भी यहाँ उक्त पुस्तकानुसार ही प्रस्तुत किया जारहा है। वैसे 'ग्यानलीला' ग्रंथ मुझे मेरे संग्रह के सम्वत् 1903 में लाखेरी रामद्वारे में सन्त हृदयराम रामस्नेही, शिष्य स्वामी रूपदासजी 'अवधूत' द्वारा लिखित गुटके में भी मिला है।

इस आलेख में मैंने स्वामी रामानंद का समय 1356-1467 वि.सं. लिखा है जो अगस्त्यसंहिता पर आधारित है। सम्प्रदाय भी इसी कालावधि को मानता है। राजर्षि

पीपा का समय गागरोन के प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों से तथा कबीर और रैदास के समय शिलालेखादि से सिद्ध होते हैं। वे उक्त कालावधि से मेल खाते हैं। इन समयों की विस्तृत विवेचना मैंने अन्यत्र की है। अतः यहाँ उस समस्त विवेचन को पुनः लिखना पिष्टपेषण है। राजर्षि पीपा व धन्ना जाट से सम्बद्ध आलेख इसी पुस्तक में यथास्थान प्रकाशित हैं जिनमें इस सम्बन्ध में सप्रमाण विवेचन किया गया है। अस्तु!

ग्रंथ रामरक्षा (1)

अथ श्रीरामरक्षाकवचम्

1-ॐ रांराघवायनमो-मे शिरः पातु रां ॐ।
2-ॐ क्लींदशरथात्मजायनमो-मे भालं पातु क्लीं ॐ।
3-ॐ ह्रींकौशल्येयायनमो-मे दृशोपातु ह्रीं ॐ।
4-ॐ ऐंविश्वामित्रप्रियायनमो-मे श्रुतिं पातु ऐं ॐ।
5-ॐ क्षौंमखत्रातायनमो-मे घ्राणं पातु क्षौं ॐ।
6-ॐ श्रींसौमित्रिवत्सलायनमो-मे मुखं पातु श्रीं ॐ।
7-ॐ आंविद्यानिधयेनमो-मे जिह्वां पातु आं ॐ।
8-ॐ क्रौंभरतवन्दितायनमो-मे कण्ठं पातु क्रौं ॐ।
9-ॐ हुंदिव्यायुधायनमो-मे स्कन्धौ पातु हुं ॐ।
10-ॐ फट्भग्नेशकार्मुकायनमो-मे भुजौ पातु फट् ॐ।
11-ॐ फट्सीतापतयेनमो-मे करौ पातु फट् ॐ।
12-ॐ हुंजामदग्निजितेनमो-मे हृदय पातु हुं ॐ।
13-ॐ क्रौंखरध्वंसिनेनमो-मे मध्यं पातु क्रौं ॐ।
14-ॐ आंजाम्बवदाश्रयायनमो-मे नाभिं पातु आं ॐ।
15-ॐ श्रींसुग्रीवेशायनमो-मे कटिं पातु श्रीं ॐ।
16-ॐ क्षौंहनुमत्प्रभवेनमो-मे सक्थिनीपातु क्षौं ॐ।
17-ॐ ऐंराक्षसकुलविनाशकृतेरघूत्तमायनमो-मे ऊरुं पातु ऐं ॐ।
18-ॐ ह्रींसेतुकृतेनमो-मे जानुनी पातु ह्रीं ॐ।
19-ॐ क्लींदशमुखान्तकायनमो-मे जंघयोः पातु क्लीं ॐ।
20-ॐ रांविभीषणः श्रीदायनमो-मे पादौ पातु रां ॐ।
21-ॐ रांरामायनमो-मेऽखिलं वपुः पातु रां ॐ।

इति श्रीरामरक्षाकवचम्

स्वामी रामानंद कृत रामरक्षा

श्लोक

ॐ अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरं ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः॥

आत्मागुरुभ्योनमः॥ परमात्मागुरुभ्योनमः॥ आदि गुरुदेव॥ अन्त गुरुदेव॥ मध्य गुरुदेव॥ शरण्य गुरुदेव॥ अलख गुरुदेव के चरणारविन्द पादुकानमोस्तु ॥ ते हरन्ते सर्व व्याधि, सकल सन्ताप, दुःख, दारिद्र्य, रोग, पीड़ा, कलह-कल्पना, सकल विघ्न खंड खंडा। ॐ तस्मै श्रीरामरक्षा ररंकारवाणी, अनुभव तत्त्व निर्भय मुक्ति जाणी ॥

1. बंधिया मूल देखिया स्थूल जहँ गगन गर्जन्त ध्वनि ध्यान लागा।
रहित ही तीन गुणा शील सन्तोष में रामरक्षा हिये ओंकार जागा।
पंच तत्त्व पच्चीस प्रकृति, पंच भूतात्मा पंच बाई। सम दृष्टि साम घर आणि,
प्राण अपान उदान व्यान समान अनहद शब्द मिल खबर पाई ॥

2. उलटिया सूर ग्रह डंक छेदन किया पोखिया चन्द्र तहाँ कला सारी।
अगनि परगट भई जरा वेदन टरी डंकिनी संकिनी घेर मारी ॥
धरणि अम्बर बिचै पंथ बहता रहै प्रेत अरु भूत दानव संहारा।
वज्र की कोटरी, वज्र का दंड ले, वज्र का खड्ग ले काल मारा ॥

3. गरुड़ पक्षी उड्या, नाग नागिन डस्या, विष्प की लहर निद्रा न झाँपै।
पिंड निर्मल भया, पिंजरे पढत सुवा, रोग मथ बाय पीड़ा न व्यापै ॥
रोम रोम ररंकार उचरंत वाणी, श्रवण सुनत कर चित्त भेला।
झिलमिलै ज्योति झुणकार झुणकत रहै, नाद विन्दे मिल्या रंग रेला ॥

4. शून्य के नेहरे शून्य सजता रहै, आपसे आप मिल आप लागा।
शरीर से शरीर मिल शरीर निरखत रहै, जीव से सीव मिल ब्रह्म जागा ॥
नैन से नैन मिल नैन निरखत रहै, मुक्ख से मुक्ख मिल बोल बोला।
श्रवण से श्रवण मिल नाद सजता रहै, शब्द से शब्द मिल शब्द खोला ॥

5. निरत से निरत मिल, निरत लागी रहै, सुरत से सुरत मिल, सुरत आवै।
ध्यान से ध्यान मिल दम्म सजता रहै, रंग से रंग मिल रंग गावै।

ध्यान से ध्यान मिल, जाप अजपा जपै सोइ दम जाय सो लाय लेखै।
चित्त से चित्त मिल चित्त चेतन भया, उनमनी दृष्टि में भाव देखै ॥

6. द्वार से द्वार मिल शीष से शीष मिल, देह विदेह मिल भेद भेदा।
तिहुँ लोक में घोर अंधार सब मिट गया, श्वेत ही स्फटिकमणि हीर वेधा ॥
ऊघरै नैन, उच्चरै वैन, चंद अरु शूर, राखिया थीर थीरं।
हनुमान हुंकार हलकार मचती रहै, यों सोखिया पकड़ बावंन वीरं ॥

7. गंग उलटी चलै, भानु पश्चिम मिलै, निकसिया विम्ब परकाश कीया।
आतमा माहिं दीदार देखत रहै, यूं अजर अमर होय आप जीया ॥
खुण खुणी रुण झुणी, नादरी नाद नादं, सुषुम्ना का छकै स्वाद स्वादं।
चाचरी भूचरी खेचरी अगोचरी उन्मनी पंच मुद्रा साधते सिद्ध योगेन्द्रा ॥

8. डरे डूंगरे जलें थले घाटे ओघाटे तस्मै श्रीराम रक्षा करै।
बाघ बाघनि का क्रोध जाला, चौसट योगिनी का काट कुटका करै ॥
खेचरा भूचरा क्षेत्रपाला
दिष्ट अरु मुष्ट, छल छिद्र वीर वेताल, नव ग्रह दूत पाखंड टारै।
दुहाई फिरती रहै, अलख निरंजन निराकार कौ चक्र फिरबौ करै ॥
बाट में घाट में पंथ में घोर में शोर में देश में विदेश में राज का,
तेज में साँकडै पैसतां तस्मै श्रीराम रक्षा करै।

9. जागतां सोवतां खेलतां मालतां, सन्त को शीष पर हस्त फिरबौ करै।
चक्र लीयां रहे, आप रक्षा करै गुप्त का जाप ले गुप्त सेवा।
चद्र अरु सूर घर एक रहिबौ करै, जीतिया संग्राम देवाधिदेवा।
कमल सूधा किया उलट अमृत पिया, विष्ष का जहर सब दूर भागा।
कमलदल कमलदल ज्योति ज्वाला जगै भवर गुंजार आकाश लागा ॥

10. रमत सार सोखंते रुधिर बिंदु रोम नाड़ी गर्जन्ते गगन बाजन्ते।
वेणु शंख शब्द धुनि त्रिकुटी दास रामानन्द ब्रह्म चीन्हन्ते ॥
ब्रह्म ज्ञानी रामरक्षा भणन्ते उद्धरे प्राणी, लागिया विचार पारंगते।
पंथे घोरे राजद्वारे संग्रामे शत्रु संकटे, संध्याकाले प्रातःकाले मध्याह्ने ॥
श्रीरामरक्षा उच्चरन्ते उद्धरेप्राणी पापे न लिप्पन्ते पुण्ये न हारंते।
जे जपंते जनार्दनम् मोक्ष मुक्ति फल पावंते ॥

11. अजर आसन, वज्र किंवाड़, वज्र दशवें द्वार जो या वज्र को करै।
घात उलट काल ताहि को खाय, जा मुख राज रामनिरंजन उच्चरै ॥

ताकी अनंत देव रक्षा करै, ॐ संझ्या तारणी, सबदुःख निवारणी, संझ्या करै।
कोटि विघ्न टलै पिंड प्राण की नाथ निरंजन, निराकार रक्षा करै ॥
इति स्वामीजी श्रीरामानन्दजी महाराज कृत रामरक्षा सम्पूर्णम्

ग्रंथ भगतिजोग (2)

भगतिजोग एह सुणौं सयाना। बुधि प्रमाण कछु करौं बखाना ॥
भगति करण का ए आरंभा। महल उठै तब थिर होइ थंभा ॥1॥
परथम पकड़ौ दिढ़ बैरागा। गह बिसवास करौ सब त्यागा ॥
इंद्री जीत रु रहै उदासा। अथवा गृह अथवा बनवासा ॥2॥
माया मोह करै नहिं काहू। रहै सबन सूँ बेपरवाहू ॥
कनक कामनी करै न संगा। आसा त्रिसना धरै न अंगा ॥3॥
सील भाव छिम्या उर धारै। धीरज सहित दया ब्रत पारै ॥
दीन गरीबी राखै पासा। देखै निरपख होइ तमासा ॥4॥
मान महातम कछू न चाह्वै। एकै दसा सदा निरह्वावै ॥
राव रंक की संक न आणैं। कीड़ी कुँजर एक करि जाणैं ॥5॥
बैर भाव काहू नहिं करिहै। गुरु को सब्द ले हिरदै धरिहै ॥
सार गहै कूकस कूँ नाखै। रमताराम इष्ट करि राखै ॥6॥
आनदेव की करै न सेवा। पूजै एक निरंजण देवा ॥
मन माहीं सब सूँज ज राखै। बाहरि के बंधन सब नाखै ॥7॥
सुनि से मंदिर अधिक अनूपा। जामें मूरति जोति सरूपा ॥
सहज सिंघासन बैठे स्वामी। आगै सेवग करै गुलामी ॥8॥
उदक सील असनान करावै। प्रेम प्रीति का पुहुप चढावै ॥
भोजन भाव धरै ले आगै। मनसा बाचा कछू न माँगै ॥9॥
ग्यान दीप ले आरति उतारै। घंटा अनहद सबद उचारै ॥
तन मन सकल अरप्पन करही। दीन होइ पुनि पाँवन परही ॥10॥
मगन होइ नाचै अरु गावै। गदगद रोम अचल होइ आवै ॥
सेवा भाव कछू नहिं चोरै। दिन दिन प्रीती अधिकी जोरै ॥11॥
ज्यूँ पतिव्रता रहै पति पासा। यूँ साहिब के ढिंग रह दासा ॥
कोई दास भूलि मति जावौ। पतिबरता पति ले निरबावौ ॥12॥
आन जु दिसा पाँव मति धारौ। गुरु को सब्द ले हिदै बिचारौ ॥
सदा अखंडित ताली लावौ। पूर्ण ब्रह्म में जाइ समावौ ॥13॥
एही भगति अनन्य है, बिरला पावै भेव।

भाग होइ तब पाइए, कह रामानंद गुरुदेव ॥14॥

ग्रंथ मूलमंत्र (3)

मूल जु मंत्र सुणौ हो भाई। सतगुरु बिन जाण्यौ नहिं जाई ॥
जाके कछु नहिं रूप न रेखा। कूण प्रकार जाइ जो पेखा ॥1॥
वाके नहिं कछु ठौर न ठामा। जाको किस बिधि धरिये नामा ॥
अपणे सुख के कारण दासा। काढ्यौ सोध प्रेम परकासा ॥2॥
वाकौ नाम राम जब राख्यौ। पीछै और विविध करि भाख्यौ ॥
सहस नाम की कूण चलावै। नाम अनेक पार नहिं पावै ॥3॥
राम मंत्र सबके सिर मोरा। ताहि न कोई पूजै औरा ॥
राम नाम सब में तत सारा। दूजा है जग का बिवहारा ॥4॥
राम नाम सूँ सिला तिराई। पाथर कभू तिर्यौ है भाई ॥
राम नाम का देखौ कामा। पात न उठ्यौ लिख्यौ तब नामा ॥5॥
राम नाम सिव गौरि सुणावै। सो नारद ले धू कुँ पठावै ॥
पुनि प्रहलाद गह्यौ एह मंत्रा। सही कसौटी काढ्यौ जंत्रा ॥6॥
जलै न मरै खड़ग की धारा। राममंत्र का ए उपगारा ॥
परथम सुणिले गुरु के पासा। पीछै करौ जिभ्या अभ्यासा ॥7॥
ता पीछै हिरदै में धारौ। जिभ्या रहित मंत्र उच्चारौ ॥
सुगम उपाइ और सब रोगी। राम मंत्र.ध्याए ते खोजी ॥8॥
पुनी प्रगट है ररंकारा। तब आपहि आप अखंडित धारा ॥
जैसे जल में लूण मिलाई। ऐसे धुनि में रहत समाई ॥9॥
तन मन बिसिर जात है सोई। जाके रूम रूम राम धुनि होई ॥
राम बिना सब धरम निकाभा। सब नामन में ताजा रामा ॥10॥
मंत्र जोग बिधि एह करौ, जो कोइ चाह्वौ राम ॥
गुरु रामानंद प्रताप तें, मन पाया बिसराम ॥11॥

पद (4)

(1)

राग बसन्त

मूलपाठ 1660 विक्रमीय प्रति से

'कहाँ जाइये घरि ही लागौ रंग'। मेरौ चित न चलै मन भयौ अपंग ॥टेक॥
जहाँ जाऊँ [1]तहाँ जल पखान। पूरि रहे हरि सब समान ॥
बेद सुमृति सब मेल्हे जोइ। '[2]जहाँ तो[1] जाइये जे' हरि इहाँ न होइ ॥1॥

एक बारि मन भई उमंग। चोवा चंदन चरचे अंग ॥
पूजन चाले ठाँइ ठाँइ। [6]सो ब्रह्म बतायौ गुरि आप माँइ[6] ॥2॥
सतगुरु मैं बलिहारी तोर। जिनि सकल बिकल भ्रम जारे मोर ॥
रामानंद रमैं एक ब्रह्म। गुरु के एक सबदि काटे कोटि क्रम्म ॥3/1॥

पाठान्तर

1. कहाँ जाइये हो, घरि लागौ रंग (र.स.) 2. जहाँ (र.स.) 3. उहाँ (र.सं.,गो.स.) 4. 'तो' रज्जब की सरबंगी में नहीं है। 5. 'जे' गोपालदास की सरबंगी में नहीं है। 6. सो=सोई (गो.स.) गुर ब्रह्म बतायौ आप माहिं (र.स.)। यह पद रज्जब की सरबंगी में 102/1 पृष्ठ 579-580 पर व गोपालदास की सरबंगी में 14/12 पृष्ठ 166 पर अंकित हैं। आगे गुरुग्रंथीय पाठ यथारूप प्रस्तुत किया जारहा है।

राग बसन्त

गुरुग्रंथीय पाठ, पृष्ठांक 1195

कत जाईऐ रे घर लागो रंगु। मेरा चितु न चलै मनु भइयो पंगु ॥रहाउ॥
एक दिवस मन भई उमंग। घसि चंदन चोआ बहु सुंगध ॥
पूजन चाली ब्रहम ठाइ। सो ब्रहमु बताइओ गुर मन ही माहि ॥1॥
जहा जाईऐ तह जल पखान। तू पूरि रहिओ है सभ समान ॥
बेद पुरान सभ देखे जोइ। ऊहाँ तउ जाईऐ जउ ईहां न होइ ॥2॥
सतिगुर मैं बलिहारी तोर। जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर ॥
रामानंद सुआमी रमत ब्रह्म। गुर का सबदु काटै कोटि करम ॥3॥1॥

(2)

राग बसन्त

मूलपाठ विक्रमीय 1660 की प्रति से

सहज सुन्य में नित बसन्त। अबहिं असहजि न जाइ अनंत ॥टेक॥
न तहाँ इच्छा[1] वोउंकार। न तहाँ नाभि न नाल तार ॥1॥
न तहाँ ब्रह्मा सिव[2] बिसन्न। न तहाँ चौबीसों[3] बपु बरंन ॥2॥
न तहाँ दीसै माया मंड। रामानँद स्वामी रमैं अखंड ॥3॥2॥

पाठांतर

1. इछूया (गो.स.); 2. स्यौ (गो.स.); 3.चौईसौं (गो.स.)
यह पद गोपालदास की सरबंगी में 63/3, पृष्ठ 322 पर अंकित है।

(3)

राग सोरठ

मूलपाठ वि.सं. 1660 की प्रति से

ताथैं नि कछु रे संसारा[1]। हमारै राम को नाँव अधारा ॥टेक॥
गुल[2] का चींटा गुल[3] खाई। गुल[2] माहीं उलझ रहाई[4] ॥
गुल[2] रती एक मीठा होई। पीछै दुख पावै सोई ॥1॥
सुपिनंतरि राजा होइये। नाना बिधि के सुख लहिये ॥
अैसे सुख क्यूँ सुख होई। जागूँ तो झूठा सोई ॥2॥
मैं मेरी ग्यान नसावै। ताथैं आतमा समाधि न पावै ॥
रामानंद गुरि गमि गावै। ताथैं भिन्न[5] भिन्न[5] समझावै ॥3॥

पाठांतर

1. संसार 2. गुड़ 3. मुड़ 4. जाई 5. भ्यन्न-भ्यन्न।
यह पद गोपालदास की सरबंगी में 87/18 पृष्ठ 424 पर अंकित है।

(4)

राग बिलावल

रज्जब की सरबंगी वि.सं. 1660-1670, पृष्ठ 433,

हरि बिनि जनम वृथा खोयौ रे।
कहा भयौ अभिमान बडाई, धन मद अँधमति सोयौ रे ॥टेक॥
अति उतंग तरु देखि सुहायौ, सैंबल कुसुम सुवा सेयौ रे ॥
सोइ फल पुत्र कलत्र बिषै सुख, अंति सीस धुनि धुनि रोयौ रे ॥
सुमिरन भजन साध की संगति, अंतरि मन मैल न धोयौ रे ॥
रामानंद रतन जनम त्रासैं, श्रीपति पद काहे न जोयौ रे ॥73/1॥

(5)

राग टोडी

रज्जब की सरबंगी, सं. 1660-1670; पृष्ठ 680

सहजैं सहजैं सब गुण जाइला। भगवंत भगत ए थिर थाइला ॥टेक॥
मुक्ति भईला जाप जपीला। यौं सेवग स्वामी संगि रहीला ॥
अंमृत सुधा निधि अंत न पाइला। पीवत प्रान न कदे अघाइला ॥
रामानंद मिलि संगि रहैला। जब लगि रस तब लगि पीवैला ॥146/4॥

(6)
आरती

रामानंद की हिन्दी रचनाएँ, पृष्ठ 7

आरति कीजे हनुमान लला की। दुष्ट दलन रघुनाथ कला की ॥
जाके बल गरजे महि काँपे। रोग सोग जाके सिमाँ न चाँपे ॥
अंजनी सुत महाबल दायक। साधु सन्त पर सदा सहायक ॥
बाएँ भुजा सब असुर संघारी। दहिन भुजा सब सन्त उबारी ॥
लछिमन धरनि में मूर्छि पर्‌यौ। पैठि पताल जमकातर तोर्‌यौ ॥
आनि सजीवनि प्रान उबार्‌यौ। मही सबन कै भुजा उपार्‌यौ ॥
गाढि परै कपि सुमिरौं तोही। होहु दयाल देहु जस मोही ॥
लंका कोटि समुंदर खाई। जात पवनसुत बार न लाई ॥
लंक प्रजारि असुर सब मार्‌यौ। राजा रामजी के काज सँवार्‌यौ ॥
घंटा ताल झालरी बाजै। जगमग ज्योति अवधपुर छाजै ॥
जो हनुमानजी की आरति गावै। बसि बैकुंठ परमपद पावै ॥
लंक विधंस कियौ रघुराई। रामानँद स्वामी आरति गाई ॥
सुर नर मुनि सब करहिं आरती। जै जै जै हनुमान लाल की ॥

(5)
ग्रंथ ग्यानलीला

वि.सं. 1903 में लिखित गुटके से

मूरख तन धर कहा कमायौ। रामभजन बिन जनम गँवायौ ॥
पसू ज्यूँ पेट भरि भरि सोयौ। पायौ लाल अबिरथा खोयौ ॥1॥
रामभजन गति जाणी नाहीं। भूँदू भूलौ धंधा माहीं ॥
मेरी मेरी करतौ फिरियौ। हरि सुमरण तो कबू न करियौ ॥2॥
नारी सेती नेह लगायौ। कबहूँ हिदै राम नहि गायौ ॥
सुख माया सूँ खरौ पियारौ। कबहुँ न सिंवर्‌यौ सिरजनहारौ ॥3॥
जोबन मदमातौ अभिमानी। पर घर भटकत संक न आनी ॥
स्वारथ माहिं चहूँ दिसि धायौ। गोविन्द को गुण कबहुँ न गायौ ॥4॥
पर अँस खाय महा रुचि मानी। कबहूँ हिरदय दया न आनी ॥
ऐसे ऐसे करत बुहारा। आये साहिब के हलकारा ॥5॥
बंधे काल कियौ चौरंगा। सुत धी नार कोइ नहिं संगा ॥
जो तुम करम किया है भारी। सो अब संग सु चलै तुमारी ॥6॥

जम आगै ले ठाढौ कीनौं। धरमराय बूझण कूँ लीनौं ॥
कहधू कौन किया तैं करमा। सिरजनहार न भज्यौ निसरमा ॥7॥
जिण पाणी सूँ पैदा कीयौ। नर सो रूप तोहि कूँ दीयौ ॥
जो तूँ बिसर्‍यौ मूरख अंधा। तो तूँ आयौ जम पै बंधा ॥8॥
हरि की कथा सुनी नहिं काना। तो तूँ नाहीं जम सूँ छाना ॥
साध सँगति में कभू न रहियौ। मुख सूँ राम कबहुँ नहिं कहियौ ॥9॥
सो हरि बिनि प्राणी दुख पायौ। धर्मराय यूँ कहि समझायौ ॥
हरि की भगति करौ नर नारी। धरमराय यूँ कहै बिचारी ॥10॥
मोकूँ दोस न दीजे कोई। जिसा करम भुगताऊँ सोई ॥
पाप पुण्य कूँ न्यारा छाणू। जो तुम करम करौ सो जाणू ॥11॥
तुमरा करम तुमैं भुगताऊँ। आदि पुरुष की अज्ञा पाऊँ ॥
साहिब की अग्या है मोकूँ। महा कसौटी देहूँ तोकूँ ॥12॥
घड़ी घड़ी का लेखा लेहूँ। करमादिक तेरा भर देहूँ ॥
है हरि बिना कूण रखवारौ। चित दे सिंवरौ सिरजणहारौ ॥13॥
संकट में प्रभु देहि उबारी। निसदिन सिंवरौ नाम मुरारी ॥
रामानँद यूँ कह समझाई। हरि सिंवर्‍यौ जमलोक न जाई ॥14॥

(6)
ग्रंथं योग-चिन्तामणि

ॐ अकट बिकट रे भाई। कायागढ़ चढ़ा न जाई ॥
पछिम दिसा की घाटी। फौज खड़ी है ठाढी ॥1॥
जहाँ नाद बिन्दु की हाथी। सतगुरु ले चल साथी ॥
सतगुरु साह विराजै। नौवत नाम की बाजै ॥2॥
जहाँ अष्टदल कमल फूला। हंस सरोवर में भूला ॥
जहाँ राग रंग होय खासे। जहाँ है हंस के बासे ॥3॥
सब्द को सीखले सब्द को बूझले सब्द से सब्द पहिचान भाई ॥
सब्द हिरदय बसै सब्द नयनों बसै सब्द की महिमा चार बेद गाई ॥
सब्द आकास बसै सब्द पाताल बसै सब्द तो पिंड ब्रह्मंड छाई ॥
आप में देख ले सकल में पेख ले आप ही मध्य विचार भाई ॥5॥
कह रामानंद सतगुरु दया करि मिलिया सत्य का सब्द सुन भाई ॥
फकीरी अदल बादसाही ॥6॥
सन्तो बंदगी दीदार। सहज उतरो सागर पार ॥
सोहं सब्दै सों कर प्रीत। अनुभव अखंड घर जीत ॥7॥

अब उलटा चढ़ना दूर। जहाँ नगर बसता है पूर ॥
तन कर फिकिर कर भाई। जिसमें राम रोसनाई ॥8॥
सुरत नगर का कर सयल। जिसमें आतमा का महल ॥
इंद्रिया सिंधु मूल मिलिया। जिस पर रखना बावाँ पाँव ॥9॥
दहिने को मध्य पर धरना। आसन अमर घर करना ॥
द्वादस पवन भर पीता। उलट घर सीस को चढ़ना ॥10॥
दो नैना कर बान। भौंह उलटा कस कवान ॥
त्रिवेनी कर असनान। तेरा मिट जाय आवाजान ॥11॥
बाजा गैब का बाजै। बोली सिंधु में राजे ॥
लगी है गैब के बाजा ॥12॥
सन्तो बंदे सबदा पार। दोहे सरवर दोहे पहार ॥
जहाँ खरे कुदरथ को झार। लगी है नौ लख हार ॥13॥
संकला करण मूल। जड़िया कटे तो देखना मत फूल ॥
माया ब्रह्म की फाँसी। परी है प्रेम की फाँसी ॥14॥
बाजन बिना तम तूर। सहजे ऊगे पच्छिम सूर ॥
भँवर है सुगंध का प्यासा। किया है कमल का वासा ॥15॥
इंद्रिया आराम का दीन्हा। जिसका चोलना है लाल ॥
उनमनी भरे जदद मसाल ॥16॥
अमहो घंस्या मायी। गगन में बादला छाई ॥
अंमृत निर्झर लाई। उलट दरियाव निर्भरिया ॥17॥
यहि बिधि चढ़ना चौसठ सीढ़िया ॥
हंसा आन बैठा तीरे। निसदिन चुगै मोताहल हीरे ॥18॥
राम नैनों में रम रहे, मरम न जानैं कोइ ॥
जिसको मिलिया सतगुरू, ताके पूरा मुहरम होइ ॥19॥
कहै रामानंद बच्चा, अगम पंथ का मेला ॥
झंडा रोपा गैयब का, हो सरोवर के तीर ॥20॥
साधू खेलै नट कला, दृष्टि बंद का खेल ॥
ज्योति अखंडी झिलमिली, बिनु बाती बिनु तेल ॥21॥
साधू परखै सब्द तो, सुरति निरति का खेल ॥22॥
मोती की झालर लगी, हीरों का परकास ॥
चंद सूर की गम नहीं, जहाँ दरसन पावै दास ॥23॥

(7)

रामाष्टक

नागरी-प्रचारणी-सभा के ग्रंथांक 951 के अनुसार

अवधपुरी निज धाम कहिये निकट सरजू गंग है।
दशरथनन्दन असुरगंजन रामजी पूरण ब्रह्म है ॥
सत्य सीता भ्रात लछमन धनुषधारी राम है।
चित्रकूट तपलोक कहिये रामजी पूरण ब्रह्म है ॥
लंकपुरि छिन माहिं जारी अग्याकारि हनुमान है।
रावण मारि विभीषण थाप्यौ, रामजी पूरण ब्रह्म है ॥
सोरहकला जुग चार प्रगटौ, सातदीप नवखंड है।
आदि अंत मधि खोज देखौ रामजी पूरण ब्रह्म है ॥
भाल तिलक विशाल लोचन आनंद कँद श्रीराम है।
स्यामल सूरत मधुर मूरत रामजी पूरण ब्रह्म है ॥
अष्ट सिधि नवनिधी दाता, भक्ति मुक्ति वरदायकं।
ज्ञान जोग सरूप सुंदर, रामजी पूरण ब्रह्म है ॥
चेतनी होइ चैत माही जोग जुक्त लीला रची।
करही करतार भई भुक्ता रामजी पूरण ब्रह्म है ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश नारद कोटि अठासी देवता।
इंद्रादिक सनकादि गावही रामजी पूरण ब्रह्म है ॥
राम अष्टक पढ़त निसदिन, सत लोक सोगं छीजंतं।
रामानंद अवतार अवधू रामजी पूरण ब्रह्म है ॥

(8)

ग्रंथ ग्यानतिलक

ॐ आदि जुगादि पवन और पानी। ब्रह्म विष्णु महादेव जानी ॥
पाँच तत्त का करो निसेफ। उलटि दिष्टि आपै में देख ॥1॥
आप तेज धरणी आकासा। सकल पसारा पौन की साथा ॥
पौनै आवै पौने जाय।
पौन नाद धुनि गरजत रहै। सूरा होय सो खड़की लहै ॥2॥
खड़की लागि पार गहिया। ररंकार का चरन गहिया ॥
जहाँ राति द्यौस नहिं सूर। तहां उजियारा है भरपूर ॥3॥

धरती धीरन का मन थीर। महादेव नहिं ब्रह्मा वीर ॥
ज्योति स्वरूप किरपा निधाना। तिहि न लोक मत बहि जाना ॥4॥
मारिग माहिं मँडि गया सूरा। ताकूँ सतगुर मिलि गया पूरा ॥
पाँच पकड़ि एक घरि ल्याव। चीतक चौहट न्याव चुकाव ॥5॥
आतम माहिं जब भया अनंदा। मिटि गये तिमिर प्रगटे रघुचंदा ॥
बुधि का कोट सबल नहिं टूटै। ताकौं मनसा डाइणि कस विधि लूटै ॥6॥
आसा नदी निकट नहिं जाई। भरम सब दिये बहवाई ॥
चेतन के गृह पहरा जागै। ताकौं काल कहाँ कर लागै ॥7॥
ऐसा है कोई अदली अदल चलावै। नगरी चोर मूस नहिं पावै ॥
कहँ कबीर सोई बड़ भागी। जाकी सुरति निरंतर लागी ॥8॥
आदि अंत अनहद बानी। चौद ब्रह्मंड रह्या भर पानी ॥9॥
ते पानी का अंड उपाया। तीन लोक जन उपजाई माया ॥
अंड सेवत भय जुग चारि। तहाँ उपजे ब्रह्मा त्रिपुरारि ॥10॥
नाभ कमल छलि ब्रह्मा भये। जुग छतीसों भरमत गये ॥
आपै आप करत बिचारा। को हम को सरजनहारा ॥11॥
जब ले अंता का अंत बहु। विगहंत भई भारि ॥
जा दिन जीव जंत नहीं कोई। ता दिन की दास कबीर कहि बिचारि ॥12॥
स्यो सकती दोउ मुष जीवंत।

पछिम दिसा धुन अन्नहद गरज अमिरस झरै उपजै ब्रह्मग्यान ॥1॥[1]
आकासे उडध न अचवै आतम तत्त विचारी ॥2॥
नरसी जल मैं घर करै मनसा चढै पहाड़ं ॥3॥
गगन गरजै हीरा नीपजै घंटा पड़ै टकसालं ॥
(जो कोई) दास कबीर से पारषी कोई नर भये ऊत्तर पारं ॥4॥

---

1. कबीर की चार साखियां मिलाइए—
अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान ॥
अविगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान ॥44॥
आकासे मुषि औंधा कुवां, पाताले पनिहारि ॥
ताका पाणी को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि ॥45॥
सिव सकती दिसि कौंष जु जोवै, पछिम दिसा उठै धूरि ॥
जल मैं स्यंध जु घर करै, मछली चढ़ै खजूरि ॥46॥
अमृत बरसै हीरा नीपजै, घंटा पड़ै टकसाल ॥
कबीर जुलाहा भया पारष, अनभै उतरया पार ॥47॥

अब की बेर मोहि बकसल्यौ कदम दास कबीर।
गुर रामानँद के बदन पै सदक करूं सरीर ॥1॥
स्वामीजी तुम्ह सतगुर हम दासा.... ....।
पूछूं एक सबद का भेव। करो कृपा कहो गुरदेव ॥2॥
(स्वामीजी) कौंन सी नगरी कौंन अस्थान। कौंन लोग बसैं परधान।
को है राजा को है महता। कहो पुरुष नगरी की बाता ॥3॥
ज्ञान कथ मन महंसं। केता ऊजड़ केता बंसं ॥
मोहि बतावो सबद का भेव। कहां बसै निरंजन देव ॥4॥
कहाँ ग्यान कहां ग्यान का म्यान कहां म्यान का मसकाला ॥
कहां धरती कहां धरती का पाट कहां पाट का कोंची ताला ॥5॥
कहां नीर कहां नीर का तीर कहां बासि का पीता।
कहै कबीर गुरु रामानँदजी यह दरियाव भर्‌या कै रीता ॥6॥

सुनो सिधा काया नगरी हृदय अस्थान।
पांच लोग बसैं (प्रधान) मन राजा पौन प्रधान ॥7॥
ग्यान कथं मन महंसं, कुदया उजड़ दया घर बंसं ॥
कबीर सुनो सबद का भेव, हृदया बसं निरंजनदेव ॥8॥
कबीरजी ये ल्यौ नगरी का भेव।

निद्रा काल लह काल बासा
सील ग्यांन का म्यान सन्तोष, म्यान का मसकाला ॥
सुरति निरति का तीर, छूछिम वासिका पीता ॥
कहि रामानंद सबद सवाया, और सबै घट रीता ॥9॥
सबद कूंची सबद ताला, सबदै सबद भया उजियाला ॥
जो (कोइ) जानै सबद का भेव, आपै करता आपै देव ॥10॥
कांटा बिना न कांटा निकसै, कूंची बिना न ताला।
सिद्ध बिना न साधिक निपजै, ज्यौं घट होइ उज्याला ॥11॥
दर्पण मध्ये दर्पण दीसै, नीरंतर नीर कमाई।
आपा मध्ये आपा दीसै, बिन देष्यां लष्या न जाई ॥12॥
अंमर बरषै धरती निपजै, अंद्रि बरषंदाई।
गुरू हमारा बानी बरषं चुनि चुनि मानक लेई ॥13॥
स्वामीजी कौन समानि दुलीचा बोलिय, कौन समानि भोगी।
कौन समानि राजा बोलिय, कौन समानि जोगी ॥14॥

(स्वामीजी) काये देषि दो दल कंपं, काये देषी कालं।
काये देषि चेला कंपं किस बिधि विष मिट जंजालं ॥15॥
(सिधा) राजा देषि दो दल कंपं, जोगी देषि कालं।
सतगुर देषि चेला कंपं, एस बिधि मिट जंजालं ॥16॥
जप तप सेती सब जुग लाग्या, पाप पुंन की आसा।
तन मन सेती कोई साधु जन लाग्या, जन किया निः केवल बासा ॥17॥
पवन घरि पानी पानि घरि मनसा, बंक नालि सों आया।
जटा मीन पानी में बैठे, सुंन मीन घर पाया ॥18॥
स्वामीजी बसत भवना जागन बैठे, आसण मांडं षाली।
कुवाँ है पण लेजू नाहीं, किस बिधि सीचं माली ॥19॥
(सिधा) जोग जुगति की लेज बनावो, आसंण सेती ताली।
मनसा फूल फुलंदर लागी बाड़ी इस बिधि सीचों माली ॥20॥
(स्वामीजी) बसत घणेरी बरतन ओछा, कहो गुरू क्या कीजे।
चांपि धरूं तो बरतन बिणसै, बाहर धरूं तो छीजे ॥21॥
सिद्धा सहजें लीना सहजें दीना, सहज सुरति ल्यौ लाई॥
सहज सहज धरो कबीरजी बरतन, इस विधि करै समाई ॥22॥
(स्वामीजी) अड़ध चंदा उड़ध सूरा, विच गगन मध्य द्वारा।
औघट घाट मलिद्रावं षोजो, किस बिधि पार उतरणा ॥23॥
(सिधा) गुरु हमारे घरि वाणि, जिन किया सकल पसारा।
ले दिय कंद्रव बैठे कीया, चौंदस उजियारा ॥24॥
(स्वामीजी) सतगुरु मिल तौ दरसन सांचा, नाहिं त पछि मरणां।
नाव है पण षेवट नाहीं, किस बिधि पार उतरणां ॥25॥
सुंन के नेहर सुन सुनता रह, सबद सुं सबद मलि सबद बुझता रह।
वाय सों वाय मलि मलि कर जानि, पानि म प्रत कसं मथि आन ॥26॥
गोब्यँद तबै पागिया, एह अरथ बिचारा।
पढ़ गुण अरथ विचार नाहिं, दिन दिन संप्या बाढ़ ॥27॥
जप करं तप करं, कोटि तिरथ भ्रम आवैं।
(कहै कबीर सुनो गुर रामानँदजी)
जुगति बिन जोगेस्वर, कस करि परम पद पावै ॥28॥
सिधा काया नगरी अलेष राजा सील सन्तोष उजीरं।
सिधा धरती रूप सदा विलासं न विगसं आकासं ॥
पांच पचीस मलि प्रगट षेलो सब जुग करो विलासं ॥29॥

(स्वामीजी) अगम अगोचर दूरि पियाना मारग लषं न कोई।
(कहिं कबीर सुनो)
गुर सेती सतगुर चीना सरबण तत ग्यांन।
मूरष सं (ग) विवर्जते प्रगट पसू समांन ॥30॥
पढ पढ राता गुण गुण माता, ह्रदा सुद्ध न होई ॥
पढै गुणै औ घढ पड़ै जो गुर पंथ, विवेष पायक चेतन कोटवालं
नौ नौ घढिले समझावो जीतल्या जमकालं ॥31॥
काया हमारा तखत बना है, मन पवन दोउ घोड़ा।
गुरु का सबद षडतल का खांडा, कीया जम से निवेड़ा ॥32॥
अगिम हमारा बाजा बाजं, झूल मस्त दर हाथी।
जीव का संसा सतगुर तोड्यां, सु पुरुष मलि साथी ॥33॥
जोग जुगति जहँ छत्र सिंहासन, महा सकति रणवासं।
जहां विलम पौन पुरुष, वा घर रहनि हमारी ॥34॥
काढ्या कढे न जाल्या सूकै, उतिपति परलै नाहिं।
सुंन मँडल म भौंर गुफा जहां, पांचूं त (हां) भलाई ॥35॥
इँगला पिंगला करल माता, सुषमन के घरि मेला।
जहां विलंब मनवां कबीरजी, सब जुग देखा भेला ॥36॥
निम्भ्वा बिन मरणा निरअग्नि बिन तरणा, रंग राग बिन अपारा ॥
सोव सदा जाग निसि वासर असा तत विचारा ॥37॥
भूल्या सो भूल्या फेर बी चेतना, लोह कसं सासौं आपै कों रेतना।
भेष ल्यो भेद तंत स्यो सोई, नाभ कमल सों लहर उटतइ
झलमलि सोषैं वाई ॥38॥
उलटि तील तेल चरंगे, नीर चरंगे बाई।
नाद बिंद गांठी पड़गा, मनवा कही न जाई ॥39॥
झाझं ले द्रावं सोंपो, बांस मनोरथ पेलो।
धरती पैठि गगन थम रोपो, इस बिधि बनषँड षेलो ॥40॥
(स्वामीजी) बनषँड जाउँ तो षुद्या व्यापै नगरी जाउँ तो माया ॥
कठण लहरि कंदरफ की पलटूं गुरजी।
किस विध सीचों जल व्यन्द की काया ॥41॥
(कबीरजी) बज्र कछोटी इंद्री बांधो, भला बुरा मति जोवो।
लोचत भोचत नागा मूनी, हरि बिन जन्म बिगोवो ॥42॥
(स्वामीजी) आसा बांधो, आसा बांधो, बांधो सत नियारा।

आपा परच्या दिढ करि बांधो, सहजै चढौ अकासा ॥43॥
द्वादस कमल पर अग्नि पहोपो, जलसि समानि सिर जाग।
रनि पहर पडऊ लीट रनि काल सों लड़ें ॥44॥
असि धारणि धारो कबीरजी, सहजे पिंड ले उधरो।
सिधा समझे घट का येहि अँदेसा षे ॥45॥
सतगुर बचन हृदय दृढ़ गहो, लो सबद बिचारि।
जा घट जैसी सामति देषो, ता घट तैसा मेलो ॥46॥
जंत्र मंत्र नाटक चेटक ये, उरले ब्यौहारा।
सुंन मंडल म मोहारा जागं, वे वरले संसारा ॥47॥
एकादसी द्वादसी धर्म का मेला चौंदस चंचल थीरं।
पून्यो प्रगट नभ भा उज्यारा, बुधि पिंड सरीरं ॥48॥
एकादसी करि हिंदू भूल्या, मुसलमान धरि रोजा।
षट दरसन तीरथ करि भूल्या, तन मन उनहु न षोज्या ॥49॥
तन मन षोजतो काई का संसा, लागि रह्या आचारं।
एक न भूल्या दो (इ) न भूल्या, भूल्या सब संसारं।
जानि बूझि करि जो नर भूल्या, ताकउं वार न पारं ॥50॥
तिरणि का ओट सिष्ट का करता, जुग देषि लुकाना।
वेद कतेब पढि मुसलमान भूले, पढि पढि मरम न जाना ॥51॥
रूम रूम में ठाकुर रम रहये, कोइ बरले जन चिना।
उलटि बमै सर्प कौं षाय पूज देवा, भोज आग ठाढ़े भये ॥52॥
रहस के देहर नाद वाज्या
एहि कारण भेष जटा धारि निकस्या। जा उद्यान मान पकरि रह्या ॥53॥
ऊरम धूरम जोति उज्याला। चंद बिन चाँदनी अग्नि बिन उज्यार।
टुट न षड़की भाग न ताला। पाँच तत पुरुष ल्योष्ट धानवाला ॥54॥
पिंड पड़ तो सतगुर लाजे ग्यांन की कोठड़ी पड़त लहपूरा।
पचि मुवा संसार निकस्या कोइ सन्त जन सूरा ॥55॥
सूरा जूझंत पूरा बूझंत अगम पंथ कूं पग धरंत गढ बंका।
(कहावत) काल कूं जीत कर जंजाल कूं मेटि करि निरभै
होइल्यौ मारिल्यौ मन की संका ॥56॥
अनहद की रूरी अगम का मेला तत तरवर की करल छाया।
ग्यांन गुफा में बहुत सुष पाया ॥57॥
अगम निगम है पंथ हमारा साषा आर (पत्र) अमी रस पीया।
सुनो कबीरजी सो जोगेस्वर जुग जुग जीया ॥58॥

राजर्षि पीपा गागरोनी

उपोद्घात—श्रीमद्भागवत् का अध्ययन करते समय यह तथ्य संज्ञान में आता है कि गुरु वशिष्ठ, मुनि विश्वामित्र को राजर्षि कहते थे जबकि विश्वामित्र चाहते थे कि वशिष्ठ उनको ब्रह्मर्षि कहें। वस्तुतः विश्वामित्र जन्मतः क्षत्रिय थे, पश्चात् उन्होंने तपश्चर्या करके ऋषित्व प्राप्त किया था। अतः ब्रह्मर्षि वशिष्ठ उनको राजर्षि कहा करते थे। इसीकारण सर्वप्रथम मैंने गागरोनी पीपा को **राजर्षि पीपा** लिखा जिसको कुछ नकलची लेखकों ने अपनाकर अपना शब्द बना लिया है। अस्तु!

राजर्षि पीपा गागरोनगढ़ रियासत के स्वतंत्र शासक थे। इनकी जाति चौहान खींची राजपूत थी। जालपा नामक कुलदेवी के परमभक्त थे। मुक्ति की अभिलाषा ने इनको शाक्त से वैष्णव, शासक से शासित, गृहस्थ से संन्यासी बना दिया। ये प्रसिद्ध स्वामी श्रीरामानन्द के शिष्य बनकर महान् भक्तों में परिगणित हुए। इनकी एक पत्नी जिसका नाम सीता जो सोलंकी क्षत्रियों की बेटी थी, शीलव्रती होकर आजीवन इनके साथ रही। ये सभी सूचनाएँ विस्तार से सर्वप्रथम अग्रावत वैष्णव अनन्तदास ने पीपा की परचई में लिखीं। कालांतर में भक्तिरसबोधनी, भक्तदामगुणचित्रणी, राघवीय-भक्तमाल व इसकी चतुरदासी टीका में इन्हीं तथ्यों का कुछ हेरफेर के साथ लिखा जाना जारी रहा। धर्मप्रेमी जनता इन्हीं स्रोतों को पढ़ती व जानती रही। गागरोनगढ़ के इतिहास की सामग्री की ओर इनका ध्यान नहीं गया कि ऐतिहासिक ग्रंथों में राजर्षि पीपा का कौन-कौन सा विवरण मिलता है।

बीसवीं और इक्कसवीं सदी में कुछ विद्वानों ने इनकी ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया किन्तु कुछ को ऐतिहासिक पुस्तकें नहीं मिलीं, कुछ ने इतिहास को पढ़ना उचित नहीं समझा। जिन एक दो विद्वानों ने पढ़ने का प्रयत्न किया उनके प्रयत्न आधे-अधूरे व अपरिपक्व रह गये।

चूँकि मैं यहाँ राजर्षि पीपा पर स्वतंत्र पुस्तक न लिखकर सामान्यतः लिख रहा हूँ। अतः यह आलेख अति संक्षिप्त रहेगा। हाँ, ऐतिहासिक तथ्य पूर्ण प्रामाणिकता के साथ लिखे जा रहे हैं।

जीवनी—1. वंश व कुल : चौहान-कुल-कल्पद्रुम नामक इतिहास-ग्रंथ खींची राजपूतों के सम्बन्ध में प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रंथ है। इसमें अनेक स्रोतों को खँगालकर पीपा के पूर्वजों का वंशक्रम इसप्रकार दे रखा है। देवनसिंह ने सर्वप्रथम

गागरोन में खींची राजवंश की सत्ता स्थापित की; शासन-स्थापन-समय था 1251 ईस्वीसन्[1]। गागरोन के खींची शासकों के नाम–1. देवनसिंह 2. जेत्रराव 3. कल्याणराव 4. कड़वाराव (करोधसिंह) व 5. पीपाराव मिलते हैं। कड़वाराव का एक भाई प्रतापराव था। प्रतापराव का पुत्र कल्याणराव हुआ जो हमारे चरित्रनायक पीपाराव का काकाजात भाई लगता था। पीपाराव ने इसीको राजकाज सँभलाकर संन्यास ग्रहण किया था।[2]

कड़वाराव (4) के पुत्र पीपाराव (5) हुए। ये ही हमारे चरित्रनायक हैं। उक्त कल्याणराव (6) के पश्चात् 7. भोजराव व 8. अचलदास खींची हुए जो वि.सं. 1480 में होशंगशाह, मालवा के सुलतान से युद्ध करते हुए गागरोन में ही खेत रहा।[3] इतिहास में यह गागरोन का प्रथम शाका कहलाता है। इस शाके का आँखों देखे हाल का वर्णन शिवदास गाडण चारणकवि ने 'अचलदास खींची री वचनिका' में वि.सं. 1480 से 1492 के बीच कभी किया। डॉ. दशरथ शर्मा, जो चौहानों के इतिहास के परम प्रामाणिक इतिहासकार थे ने इसका रचनाकाल 1492 वि.सं. अनेक प्रमाणों के आधार पर लिखा है जिसको सभी विद्वान् एकस्वर से स्वीकार करते हैं।[4]

मालवा के सुलतान होशंगशाह व अचलदास खींची के बीच हुए युद्ध का विवरण फ़ारसी-तवारीखों में भी मिलता है। अतः यह समय और घटना दोनों ही सत्य हैं। खिलचीपुर-रियासत की हस्तलिखित ख्यात व चौहान-कुल-कल्पद्रुम के आधार पर उद्धृत उक्त वंशावली स्पष्टतः सिद्ध करती है कि हमारे चरित्रनायक पीपाराव, वि.सं. 1480 के शाके में मरने वाले अचलदास खींची के प्रपितामह (परदादा) थे। अतः सुनिश्चितः पीपाराव का निधन-समय वि.सं. 1480 के पूर्व का ही होना सिद्ध होता है।

खिलचीपुर-रियासत की ख्यात (खींचियों से गागरोनगढ़ छूटने के पश्चात् इनके कई ठिकानों में से एक प्रधान ठिकाना) में राजर्षि पीपा के पूर्वजादि का काल निम्नप्रकार दे रखा है।

2. समय : गागरोन का पहला खींची-राजा देवनसिंह सम्वत् 1336 तक राज्य करता रहा। दूसरा जेत्रराव 1336 से 1356 वि.सं. तक; तीसरा कल्याणराव 1356 से 1391 वि. सं. तक व चौथा करोधसिंह (कड़वाराव) 1391 से 1416 तक राज करता रहा। पाँचवे शासक के रूप में हमारे चरित्रनायक पीपा राव वि.सं. 1416 में गद्दीनशीन हुए और 25 वर्ष तक राज्य करके वि.सं. 1441 में गृहत्यागी संन्यासी बनकर रामानन्दजी के शिष्य बने।[5]

पाँचवा शासक कल्याणराव 1441 से 1442 तक, छठा शासक भोजराव 1442 से 1466 तक व अचलदास 1466 से 1480 वि.सं. तक गागरोनगढ़ का शासन करता रहा है।[6]

हमारे चरित्रनायक राजर्षि पीपा का समय उक्त ऐतिहासिक समयावधि में ही

निश्चित् करना सर्वथा उचित व प्रमाणाधारित होगा। जैसा, हम पूर्व में लिख आये हैं, सन्त पीपा पर जिन्होंने भी लिखा है, उन्होंने खींची चौहानों के इतिहास ग्रंथों को पढ़ा ही नहीं अथवा पढ़ा भी तो ढंग से नहीं पढ़ा। अतः उनके द्वारा निर्धारित अथवा लिखित समय अनुमानाधारित होने से अग्राह्य अतएव अप्रामाणिक है। उन सभी का उल्लेख कर पृष्ठों को बढ़ाना उचित नहीं। अतः हम उक्त समयावधि में ही राजर्षि पीपा का समय सुनिश्चित् कर रहे हैं।

ऊपर उद्धृत खिलचीपुर की ख्यात[7], चौहान-कुल-कल्पद्रुम[7] सर्वे ऑफ खींची चौहान हिस्ट्री[8] आदि पुस्तकों में राजर्षि पीपा का रांज्यारोहण सम्वत् तो देरखा है किन्तु न जन्मसम्वत् और न साकेतगमनकाल ही लिख रखा है। अतः हमको राज्यारोहण व राज्यत्यागकाल के अनुसार ही अपने निष्कर्ष निकालने होंगे।

राज्यारोहण सम्वत् 1416 में से यदि 25-26 वर्ष निकालें तो जन्मसम्वत् 1390 आता है। एक पीढ़ी का अन्तर प्रायः 25 वर्ष मानना रूढ़ि है। अतः जन्मकाल 1390 विक्रमी सम्वत् मान लेना समुचित जान पड़ता है। 25 वर्ष राज्य का भोग करके राजर्षि पीपा संन्यासी होगये।[9] इसीकारण राज्यत्याग वर्ष 1441 उक्त पुस्तकों में उपलब्ध होता है। संन्यासी होते समय पीपा की अनुमानित आयु 51 वर्ष आती है जो इस बात से पुष्ट होती है कि राजर्षि पीपा ने वर्षों तक देवी की सेवाभक्ति की किन्तु वह इनको मुक्ति प्रदान करने में असमर्थ रही। तबही इन्होंने जालपा देवी के परामर्शानुसार स्वामी रामानंद का शिष्यत्व ग्रहण किया[10]। अनंतदास की परचई से ऐसे संकेत मिलते हैं कि ये स्वामी रामानंद से दीक्षित होते ही संन्यासाश्रमी नहीं बने थे। गुरु-आदेशानुसार ये दीक्षित होकर गागरोन आगये थे।[11] जब कबीरदास आदि के साथ रामानन्द स्वामी द्वारका की यात्रा पर गए तब वे गागरोन होकर गये। तब ही रामानन्द व सीता सोलंकी का सम्वाद होकर पीपा व सीता ने राजपाट छोड़ कर संन्यास धारण किया था।[12]

यहाँ एक तथ्य ध्यान में लाने योग्य और है कि श्रीपीपा शासक बनने के पश्चात् ही भक्ति करने लगे थे अथवा कँवरपदे में ही देवी की उपासना करने लगे थे। उपलब्ध साक्ष्य इस बात को पुष्ट करते हैं कि श्रीपीपा कँवरपदे में ही देवी की भक्ति करने लगे थे। बारह वर्ष की सेवा से भी जब देवी से इनको मुक्ति प्राप्त होने का आश्वासन नहीं मिला तब इन्होंने रामानंद का शिष्यत्व ग्रहण किया।

चौहान-कुलकल्पद्रुमानुसार वि.सं. 1414 में इन्होंने द्वारका की यात्रा की। समुद्र में कूदे। द्वारकाधीश ने इनको अंगूठी की निशानी दी जिसकी स्मृति में आज भी द्वारका में छाप लगाई जाती है।[13]

सर्वे ऑफ खींची चौहान हिस्ट्री के अनुसार पीपा ने वि. सं. 1416 से ही शिष्य दीक्षित करना प्रारम्भ कर दिया था। इस सम्बन्ध में ताम्रपत्र उपलब्ध है।[14]

उक्त समस्त सूचनाओं के आधार पर यह मानना सर्वथा समीचीन है कि राजर्षि पीपा रामानन्द के शिष्य होते ही संन्यासाश्रमी नहीं बने थे। वे कुछ समय तक शासन करते रहे। यद्यपि ये राजा थे तथापि वास्तविक शासन इनका काकाजात भाई कल्याणराव ही करता रहा क्योंकि इनको भक्तिभाव से ही फुर्सत नहीं थी और इसी कारण गृहत्यागी संन्यासी होने पर इनका उत्तराधिकारी यही काकाजात भाई हुआ, न कि कोई भतीजा आदि। एक बात और, गुरु रामानन्द से ज्ञान प्राप्त करके इन्होंने घर में रहते हुए भी शीलव्रती का जीवन जिया जिसकारण इनके कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई। इनका अधिकांश जीवन भक्ति व सत्संग में ही व्यतीत होता रहा।

उक्त तथ्यों की पुष्टि उन चमत्कारपूर्ण घटनाओं के विश्लेषण से भी होती है जिनके अनुसार गृहत्यागी संन्यासी बनते ही इनमें चमत्कार दिखाने की क्षमता उत्पन्न होगई थी। चमत्कार दिखाने की क्षमता तबहीं उत्पन्न होती है जब साधक साधना करके ब्रह्मसाक्षात्कारी होजाता है जैसाकि मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है "ब्रह्मविद् ब्रह्मैवभवति"।

उक्त समस्त प्रमाणों व पूर्वापर तथ्यों के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि राजर्षि पीपा का जन्मसम्वत् 1390, गद्दीनशीनी का सम्वत् 1416 व गृहत्यागी संन्यासी बनने का सम्वत् 1441 है।

सर्वे ऑफ खींची चौहान हिस्ट्री की एक पंक्ति से यह पूर्णतः सिद्ध है कि राजर्षि पीपा गागरोन के शासक होने पर भी राज्य-प्रशासन इनका काकाजात भाई कल्याणराव ही चलाता था क्योंकि जब 1378 ईस्वी अर्थात् 1435 वि.सं. में गागरोनगढ़ पर तुर्कों का आक्रमण हुआ तब शासन की बागडोर कल्याणराव के हाथों में थी जबकि राजर्षि पीपा इस समय भक्तिमय जीवन बिताते हुए एकांतसेवी थे। "The next available date, proceedings backwards is 1378 AD which the first Turkish invation of Gagron from Dhilli has been recorded by persian historians, supporting Kalyanrao to be the ruling chief during the life of peepa as a recluae."[15]

यहाँ लक्ष्य करने की बात यह भी है कि तुर्कों का यह आक्रमण गागरोनगढ़ की कुछ भी क्षति न कर सका क्योंकि इस समय भक्तिस्वरूप राजर्षि पीपा गागरोनगढ़ में वर्तमान थे।

जैसा पूर्व में लिखा गया है, गागरोनगढ़ लगभग 200 वर्षों तक देवनसिंह खींची के वंशजों के अधीन रहा।[16] विक्रमसम्वत् 1480 में मालवा के सुलतान होशंगशाह ने गागरोनगढ़ पर भयंकर आक्रमण किया जिससे गढ़ टूट गया। राजपूत रमणियों ने जौहर किया। राजपूतों ने शाका किया। इससमय गागरोनगढ़ाधिपति पीपा का प्रपौत्र अचलदास खींची था। इससमय तक यदि राजर्षि पीपा जीवित होते तो निश्चिततः

अचलदास को कभी भी शाके का वरण न करना पड़ता उल्टे होशंगशाह ही भाग खड़ा होता किन्तु दुर्दैव से इससमय के पूर्व ही राजर्षि पीपा साकेतगमन कर चुके थे। यहाँ यह तथ्य भी ध्यान में रखना चाहिए कि राजर्षि पीपा अपनी जीवनसंगिनी सीता सोलंकी के टोडा में साकेतगमन के पश्चात् गागरोनगढ़ में आकर रहे थे और यहीं इनका साकेतगमन हुआ था। ऐसी स्थिति में यही मानना समीचीन है कि राजर्षि पीपा गागरोन के वि.सं. 1480 के शाके के पूर्व ही रामशरण होगये थे।

राजर्षि पीपा महान् भगवद्भक्त, शीलव्रती महामानव थे। अतः इन्होंने यदि अस्सी वर्ष की उम्र भी पाई हो तो इनका साकेतगमन काल 1390+80=1470 वि.सं. आता है, जो हर दृष्टि से ठीक ही है।

राजर्षि पीपा दीर्घजीवी थे, इसका एक प्रमाण तो यह है कि इनकी सबसे छोटी रानी सीता सोलंकी इनके जीवनकाल में ही रामशरण होगई थी। वह सबसे छोटी थी फिरभी पति के सामने रामशरण होगई। अतः राजर्षि पीपा दीर्घजीवी थे।

राजर्षि पीपा ने अपने पदों में नामदेव, कबीर व रैदास का नाम अत्यधिक श्रद्धा, भक्ति से लिया है।[17] जहाँ नामदेव का नाम भूतकालिक सन्त के रूप में स्मरण किया है, वहाँ कबीर व रैदास का नाम समकालीनों में परिगणित किया है।[18] ऐसी स्थिति में हमको इन महान् सन्तों के काल का भी विचार करना होगा।

रैदास का जन्मसम्वत् रैदास के 5वें वंशधर करमसिंह ने 1433, माघ सुदि पूनम, रविवार लिखा है जिसको समस्त रैदासी-पंथ एकस्वर से स्वीकार करता है। आचार्य पृथिवीसिंह आज़ाद ने अनेक प्रमाणों से इस जन्मसम्वत् को सही सिद्ध किया है।[19] उधर आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने कबीर का समय वि. सं. 1425 से 1505 माना है क्योंकि मगहर में कबीर का रोजा बिजलीखाँ ने विक्रमसम्वत् 1507 में निर्मित कराया था। जब पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध हो तब पुस्तकीय प्रमाण निर्बल पड़ जाता है। ऐसी स्थिति में कबीर का रूढ समय वि.सं. 1456 से 1575 नहीं हो सकता।[20] राजर्षि पीपा, कबीर व रैदास के गुरु, रामानन्द स्वामी प्रसिद्ध हैं। स्वामी रामानन्द का समय अगस्त्यसंहिता के अनुसार विद्वानों ने वि.सं. 1356 से 1467 तक माना है।[21] स्वामीजी की समयावधि में ही उनके शिष्यों का जीवनकाल होना चाहिए।

उक्त तीनों के काल स्वामीजी के जीवनकाल में पड़ते हैं। अतः सुकरतापूर्वक राजर्षि पीपा, कबीर, रैदास को स्वामी रामानंद का शिष्य सिद्ध करना आसान है।[22] काशी में पीपाकूप का होना इस बात को पुष्ट करता है कि स्वामी रामानन्द के कहने पर राजर्षि पीपा ने अपने राजा होने सम्बन्धी सभी चिह्नों को इस कूप में प्रवाहित कर दिया था तथा सर्वथा निष्कंचन होकर राजर्षि पीपा ने स्वामी रामानन्द का शिष्यत्व ग्रहण किया था।[23]

3. गुरु : हमारे द्वारा प्रस्तुत 21 पद व 17 साखियों में कहीं भी राजर्षि पीपा ने अपने गुरु रामानन्द का नाम उल्लिखित नहीं किया है। राजर्षि पीपा की कुल रचनाएँ इतनी ही हैं, नहीं कहा जा सकता। दादूपंथी सन्तों ने राजर्षि पीपा की उन ही रचनाओं को अपनी पुस्तकों में स्थान दिया जो उनको मिलीं और प्राप्त रचनाओं में से भी जो उनको अपने सिद्धान्तों के अनुकूल लगीं। अतः हमको अभीतक मिलीं रचनाओं के अन्तः साक्ष्य के आधार पर राजर्षि पीपा को स्वामी रामानन्द का शिष्य सिद्ध करना संभव नहीं है। हाँ, और रचनाएँ मिल जाएँ तो अन्तर्साक्ष्य के आधार पर दोनों को गुरु-शिष्य सिद्ध करना सरल होजाए। भक्तमाल, उसकी टीकाओं व परचई में स्पष्टतः राजर्षि पीपा को स्वामी रामानन्द का शिष्य लिखा गया है। परचई[24] का रचनाकाल 1645 व भक्तमाल का रचनाकाल 1640 विक्रमसम्वत् है।[25] यह समय राजर्षि पीपा के समय से 175 वर्ष बाद का है। इससमय तक सत्यतथ्य जनश्रुति बन गये थे जिनका शोधन-परीक्षण उक्त नाभादास व अनन्तदास ने करके ही अपने ग्रंथ लिखे होंगे। अतः हमको इन प्राचीनतम बहिर्साक्ष्यों को मान लेना चाहिए।

4. जन्मस्थान : राजर्षि पीपा के पूर्वज गागरोनगढ़ के एकछत्र शासक थे। अतः इनका जन्म गागरोनगढ़ में ही हुआ, मानना ही उचित है। इतिहासकार श्री ए. एच. निजामी व श्री आर. एस. खींची ने राजर्षि पीपा का जन्मस्थान गागरोनगढ़ ही माना है।[26]

5. जाति : इतिहास-ग्रंथ, धार्मिक-ग्रंथ, भक्तमालादि व जनश्रुति सभी स्रोत राजर्षि पीपा को चौहान राजपूतों की खींची खाँप का राजरत्न मानते हैं। इस सम्बन्ध में किसी ने भी विपरीत मत प्रकट नहीं किया है। राजर्षि पीपा की वंशावली उपलब्ध है। इनके वंशधर खींची राजपूत इनको आज भी अपना पूर्वज मानते हैं। अतः इस सम्बन्ध में सभी एकमत हैं।[27]

6. माता-पिता : खींची चौहानों की वंशावलियों में राजर्षि पीपा के पिता का नाम कड़वाराव शुद्ध नाम करोधसिंह (क्रोधसिंह) मिलता है।[28] माता का नाम शीशोदनी जगीसरी कुँवर मिलता है।[29]

7. पत्नियाँ : ऐतिहासिक ख्यातों व परचई-साहित्य में राजर्षि पीपा की 12 पत्नियों का उल्लेख मिलता है।[30] नाम मात्र बारहवीं रानी सोलंकी सीता का मिलता है। सीता सोलंकी के पिता का नाम हाजा सोलंकी मिलता है जो टोडा रायसिंह का शासक था।[31] जब भक्तिभानु रामानन्द स्वामी द्वारका की यात्रा करने के उद्देश्य से गागरोन आये तब पीपा स्वामीजी के साथ जाने को उद्यत हुए। अन्यान्य रानियों ने संन्यास न लेने देने का भरसक प्रयत्न किया किन्तु उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ। सोलंकी सीता का प्रयत्न भी जब सफल न हुआ तब उस स्वयं ने भी संन्यास लेने की प्रार्थना की। स्वामी रामानन्द ने कठोर परीक्षा लेने के उपरान्त ही संन्यासी बनने की आज्ञा

दी। सीता ने अपनी जितेन्द्रियता का साक्ष्य नग्न होकर दिया। स्वामी रामानन्द ने राजर्षि पीपा को, जो पहले से ही शीलव्रत का पालन कर रहे थे, सीता सोलंकी को साथ में रखने की स्वीकृति प्रदान कर दी।[32] सीता आजीवन राजर्षि पीपा के साथ रही। अंतिम समय में दोनों ही टोडा में रहे। पहले सीता का साकेतगमन हुआ। वहाँ के राजा ने जो राजर्षि पीपा का शिष्य था सीता सोलंकी की भव्य समाधि बनाई जो आज भी दर्शनीय है।

8. सन्तति : राजर्षि पीपा के 12 पत्नियाँ थीं फिरभी उनका कोई औरस पुत्र नहीं था।[33] संन्यास लेने के पूर्व से ही इनके काका का बेटा कल्याणराव राजकाज में इनका हाथ बँटाता था। अतः संन्यासोपरान्त इनका उत्तराधिकारी भी कल्याणराव ही हुआ।[34] वंशावली में कल्याणराव के पिता प्रतापराव को कड़वाराव का भाई बता रखा है। अतः प्रतापराव राजर्षि पीपा का काका हुआ व इसका पुत्र कल्याणराव काकाजात भाई। कहीं-कहीं कल्याणराव को राजर्षि पीपा का भतीजा[35] लिख रखा है जो भूल ही है। कल्याणराव ने गागरोन का मात्र एक वर्ष शासन किया।

9. शिष्य व पंथ : राजर्षि पीपा का कोई स्वतंत्र पंथ चला हो, ऐसी सूचनाएँ नहीं हैं किन्तु इनके अनुयायी अपने आपको पीपापंथी अवश्य कहते हैं। ये न विरक्त सन्त-महंत हैं और न इनके पूर्वज या वंशज खींची राजपूत ही हैं किन्तु कुछ खाँपों के राजपूत अवश्य हैं जिन्होंने राजर्षि पीपा के उपदेशानुसार लड़ना-भिड़ना छोड़कर दर्जी का पेशा अंगीकार किया और राजर्षि पीपा की शिक्षाओं का पालन करते हुए पीपापंथी अथवा पीपापंथी दर्जी कहलाने लगे। बड़वों, भाटों की बहियों में राजर्षि पीपा के कुछ शिष्यों के नाम मिलते हैं।

1. सोलंकी बेरीशाल 2. परमार दामोदरदास 3. पड़ियार सोमपाल 4. चौहान खेमराज 5. गोयल भीमराव 6. डाभी शंभूदास 7. राखेचा इंद्रराज 8. चौहान रणमल 9. खींची जगदास 10. दइया ईश्वरदास 11. शीशोदिया ब्रजमोहन 12. भाटी राजसिंह 13. टाँक हरदत्त 14. कछवाहा हरिदास 15. यादव अभयराज 16. राठौड़ हरचन्द 17. मकवाणा रामदास वरभण 18. गहलोत आनंददेव 19. चावड़ा बरजोग 20. संकलेचा माणकदेव 21. वारड़ बीजलदेव 22. परिहार रणमल्ल 23. साँकला अभयराज 24. झाला भगवानदास 25. गोयल दूदा 26. देवड़ा गोकुलराव 27. गौड़ गजेन्द्र 28. चूंडावत मंडलीक 29. बाघेला हितपाल।

उक्त सूची में चूंडावत मंडलीक का नाम आया है। चूंडावत राजपूत लाखावत चूंडा की सन्ताने हैं। चूंडा वि.सं. 1495 तक जीवित था। अनुमानतः चूंडा मोकल से 25-30 वर्ष बड़ा था। लाखा वि.सं. 1439 में गद्दी पर बैठा। सम्वत् 1478 के लगभग मरा। इस समय चूंडा 20 वर्ष से भी अधिक उम्र का रहा होगा। ऐसी स्थिति में 1470 विक्रमसंवत् तक जीवित रहने वाले पीपा का किसी चूंडावत राजपूत का शिष्य होना

संभव है। सूची सत्य के निकट लगती है। अन्यान्य राजपूतों के सम्बन्ध में भी ऐसी ही ऊहापोह की जा सकती है।

उक्त राजपूतों के अतिरिक्त धारणिया गोत के खाती जाति के परसजी नामक भक्त भी राजर्षि पीपा के शिष्य हुए हैं जो कलरु गाँव के रहने वाले थे तथा जिनका आज भी मेड़ता पट्टी में भारी प्रभाव है।[36] परसजी खाती पर इसी पुस्तक के अन्य अध्याय में लिखा गया है।

अनंतदासजी की परची में अनेक नाम आये हैं जिन्होंने राजर्षि पीपा का सत्संग लाभ लिया है। उन सभी का नाम अगले शीर्षक धार्मिक-यात्राओं के प्रसंग में लिखे जारहे हैं।

10. धार्मिक-आध्यात्मिक यात्राएँ : जालपादेवी (पीपा की कुलदेवी का नाम) के सत्परामर्शानुसार राजर्षि पीपा सर्वप्रथम काशी गये। वहाँ रामानन्दजी से दीक्षित होकर गागरोन आये। भगवान् की सेवा-पूजा पूर्ण श्रद्धाभक्ति से करने लगे। निमंत्रण पाकर रामानन्द स्वामी गागरोन आये। स्वामीजी ने पीपा से राजपाट छोड़कर द्वारका-यात्रा पर चलने को कहा। राजर्षि पीपा, उनकी पत्नी सीता सोलंकी, रामानंद स्वामी, कबीर, रैदास, 40 वैरागी साधु व अनेक वैष्णव द्वारका अढ़ाई माह में पहुँचे। सर्वप्रथम जसवंत फिर रुकमणिपति श्रीकृष्ण के दर्शन किये। गौमती-संगम में स्नान किया। इसप्रकार छः मास तक द्वारका में रहते रहे।

कबीर के परामर्शानुसार रामानन्द स्वामी काशी, मथुरा होते हुए तीसरे महीने में पहुँच गये। इधर पीपा व सीता ने समुद्र में इसलिए झंपापात (कूदे) किया कि उन्हें कृष्ण-रुकमणि के दर्शन हो जायेंगे। इनकी भावना शुद्ध थी। अतः इनको भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। नौ दिन दोनों पति-पत्नी भगवत्सानिध्य रहे। पीपा आना नहीं चाहते थे। भगवान् भेजना चाहते थे। अंततः भगवान् ने पीपा को ब्रह्मज्ञान देकर भूतल पर भेज दिया। दो दिन तक जनता राजर्षि पीपा के दर्शनार्थ आती रही। अधिक महिमा होती देखकर पीपा ने द्वारका से रमना उचित समझा। द्वारका से 60 कोस गागरोन की ओर आने पर इनको एक पठान मिला जिसने इनसे सीता को छीन ली। सीता ने गोविन्द का स्मरण किया। भगवान् ने पठान को दण्ड देकर सीता को पीपा के पास पहुँचने का परामर्श दिया। पीपा व सीता अपने रास्ते पर चले। पठान अपने रास्ते पर चला गया।

पाँच कोस और चलने पर दो ओर जाने वाला रास्ता मिला। दोनों रास्ता भटक गए। सघन गहन अंधकारमय जंगल में चले गये जहाँ मनुष्यमात्र का मुँह दिखना तक दुर्लभ था। वहाँ एक हिंस्र शेर था। वह मनुष्य मात्र की गंध एक कोस दूर से पहचान लेता था। पीपा-सीता को भी वह खाने को दौड़ा किन्तु ये तो रामनाम-स्मरण करते हुए निर्भय बने रहे। शेर व हाल की ब्याही शेरनी दोनों पीपा के चरणों में नतमस्तक होगये। पीपा के शिष्य होगये। भविष्य में शिकार न करने की प्रतिज्ञा की। कुछ ही

दिनों में उन दोनों का शरीरान्त होगया।
कहते हैं, यही शेर मरकर गुजरातीभाषा का आदिकवि नृसिंह मेहता बना जिसका समय वि.सं. 1470 से 1536 सुनिश्चित् है।[37] यह काल इस घटना की प्रामाणिकता को सत्यापित करता है। साथ ही राजर्षि पीपा के समय को भी पुष्ट करता है।
रमते-रमते दोनों ध्यानौरे (धनौरा) गाँव में आये। वहाँ कन्डेरों के सूखे बाँसों का हरे बाँसों में परिवर्तित करने का चमत्कार दिखाकर आँवा ग्राम में आये। यहाँ चींधर नामक भक्त रहता था। परम दरिद्र था। सीता ने गणिका का स्वांग बनाकर कृषकों से पाँच सौ मन गेहूँ एकत्रित कर चींधरिया भक्त को दिला दिया। सीता का सत सर्वथा सुरक्षित रहा।
आँवा (संभवतः टोंक जिले का एक कस्बा) में बढ़ती महिमा को देखकर टोडा ग्राम में आये। जनता ने पीपा केलिये अलग मंदिर व मकान बनाकर भेंट कर दिया। बिना मांगे ही गाँव में से सीधा आने लगा। वहाँ का, सूरजसेन राजर्षि पीपा का शिष्य होने को आया। पीपा ने कहा, आपकी पत्नी सन्तों से पर्दा करती है। सन्तों से पर्दा नहीं करना चाहिए। वे पर्दा नहीं करेंगी, तब ही दीक्षा दूँगा। सूरजसेन ने अपनी पत्नियों का पर्दा हटवा दिया। पीपा ने दीक्षा दी। यहाँ पीपा का प्रगतिशील व्यक्तित्व सम्मुख प्रकट होता है।
टोडा में राजर्षि पीपा ने अनेक चमत्कार दिखाए। घोड़ों का चमत्कार, भैंसों का चमत्कार, शाह का चमत्कार, बंजारे का चमत्कार। चमत्कार दिखाने में सीता भी पीछे नहीं रही। एकबार पीपा किसी महोत्सव में बाहर चले गये। पीछे से सौ के लगभग साधु आगये। सीता ने सन्तों को बनिये से सामान उधार लाकर जिमाया। शर्त थी एक रात्रि सीता बनिये को सन्तुष्ट करेगी। रात्रि होने के पूर्व ही पीपा टोडा में आ गए। पीपा स्वयं सीता को बनिये के यहाँ वचन पूरा करने को लेगए। सीता को देखते ही बनिया सीता के पैरों में गिर गया। पीपा से दीक्षा लेकर रामभजन करने लगा। चार ढोंगी साधुओं ने पीपा से सीता को मांगा। पीपा ने सहर्ष आज्ञा देदी। जैसे ही सीता ने उनसे कमरे में आने को कहा, सीता उनको शेरनी भासने लगी। सभी ने पीपा से दीक्षा ली। एक अन्य कामी ने सीता को मांगा। सीता रात्रि भर आगे-आगे दौड़ती रही; कामी पीछे-पीछे किन्तु वह सीता का स्पर्श तक न कर सका। शर्तानुसार दूसरे दिन सीता ने उस कामी को मना कर दिया। सतवंती सीता के उक्त चमत्कारों ने राजर्षि पीपा को अत्यधिक प्रभावित किया। उन्होंने सीता की अत्यधिक प्रशंसा की। सीता सुनकर नतमस्तक होगई।
सूरजसेन के दरबार में जाकर पीपा ने उसको उसके मन की बात बताई जिससे वह पीपा के चरणों में पड़ गया। बाँझ पत्नी मांगने पर सूरजसेन ने पीपा को देने का वचन तो दे दिया किन्तु रावले में साथ भी जाने लगा। सूरजसेन को तत्काल पीपा सिंह

रूप में दीखे, सभासदों को पीपा रूप में, पुनः रावले में दुग्धपान करते हुए बालक के रूप में। सूरजसेन को उपदेश देकर आश्रम में आगये। तेली के बैल को ब्राह्मण को देने का चमत्कार, गूजरी की दही की मटकी का मोल भेंट के द्वारा देने का चमत्कार, ब्राह्मण के यहाँ देवी को भूखा रखकर टोडा के बाहर जाने का उपक्रम। जनता द्वारा अपार भेंट देना। चौरों द्वारा सारी सामग्री छीन लेना। चौरों द्वारा पीपा नाम सुनते ही पीपा के पैरों में पड़ना। वापिस टोडा में आना।

टोडा से द्यौसा अकेले ही श्रीरंग श्रावगी के यहाँ जाना। श्रीरंग श्रावणी अनंतानंद के शिष्य थे।[38] पीपा के भतीजा शिष्य थे। श्रीरंग ने अपनी व अपने पुत्र की बात बताई। इतने ही में एक कंडेरन व दो भंगन आईं। पीपा ने निकट बुलाकर बात की। श्रीरंग को बुरा लगा। पीपा को कामी तक कहा। पीपा ने दोनों को दीक्षा दी। श्रीरंग के मन के संशयों का उच्छेद किया। सभी में एक आत्मा होना समझाया। भंगनों ने भक्ति करनी प्रारंभ करदी। घर छोड़ दिया। बंजारे के साथ रहकर भजन करने लगीं।

श्रीरंग ने बिदाई में चारसौ टका दिये। तीसरे दिन दौसा से टोडा आ पहुँचे। रास्ते में ब्राह्मण मिला। उसको साधु बनाकर आश्रम में ले आये। सूरजसेन से धन दिलाकर उसकी मनसा पूरी की। घर भेजा। ब्राह्मण ने बेटी का विवाह सुकरतापूर्वक किया। टोडा में रहते हुए बहुत दिन होगये। अतः पीपा ने वहाँ से भी रमने की सोचकर पश्चिम दिशा की ओर प्रयाण किया। गाय के हत्यारे ब्राह्मण का भोजन कोई भी ब्राह्मण नहीं करते थे। पीपा ने उससे सामग्री लेकर साधु-सन्तों, ब्राह्मणों का भंडारा करा दिया। ब्राह्मण को जाति में स्वीकृत करा दिया। घूम-फिरकर पुनः टोडा में आगए। एकबार अकाल पड़ा। राजा सूरजसेन ने दरवाजे बंद कर दिये किन्तु पीपा के यहाँ कोई भूखा नहीं रहा। सन्त राघवदास दादूपंथी के भक्तमाल में इस दुष्काल का समय[39] सम्व्रत् 1520 लिखा है जो संगत नहीं लगता। पुष्कर के यात्रियों को कागज लिखकर सामग्री दिलवा दी। दस दिन बाद बनिया रकम मांगने आया किन्तु लिखा कागज कोरा निकला।

एक तेलन से राम-राम जपने को कहा। तेलन ने मना कर दी। पीपा ने कहा, पति के मरने पर सती भी राम-राम करती है। तू भी राम-राम कर। तेलन घर गई। पति मरा हुआ पाया। सती होने को तैयार हुई और जोर-जोर से राम-राम कहने लगी। पीपा ने कहा, पहले ही राम-राम कह लेती तो पति क्यों मरता। सती मत हो। राम राम रट। पति जिंदा होजायेगा। तेलन ने दीक्षा ली। राम-राम की रटन लगाते ही तेली जी उठा।

इधर पाँच गाँवों से पाँच निमंत्रण आये। आश्रम मे सन्त आगये। पीपा कहीं नहीं जासके। सभी जगह भगवान् पीपा का रूप धारण करके गये। दौसा में प्रवाद फैला कि पीपा मर गया। दौसा की दोनों भंगनें गुरु के मरने पर गुरुआनी सीता के दर्शनार्थ

टोडा आईं। यहाँ पीपा को जीवित देखा। तब उनकी श्रद्धा-भक्ति पीपा के प्रति और बढ़ गई। पीपा ने भंगनों के पतियों को समझाया और उनको पुनः घर में प्रविष्ट कराया। इन दोनों का नाम राही व रुकमणि था। पीपा ने इन जैसे अनेक अछूतों का उद्धार किया। टोडा में बैठे-बैठे ही पीपा ने 420 कोस दूर द्वारकाधीश के जलते चंदोवे को मसल कर उसकी आग बुझाई।

पीपा ने अंत में टोडा छोड़ दिया। गागरोन में गुफा बनाकर रहे। वहीं उनका शरीरपात हुआ। सीता का शरीरपात टोडा में पीपा की उपस्थिति में हुआ।

अनंतदास ने परचई में टोडा के राजा का नाम सूरजसेन लिखा है। इस नाम का पुष्टिकरण अभी तक टोडा के सोलंकियों का इतिहास प्रकाश में न आने के कारण नहीं होसका है।

सामान्य सा विचार 'सर्वे आफ खींची चौहान हिस्ट्री' में किया गया है। इसके लेखक प्रो. अख्तर हुसैन निजामी ने लिखा है कि वंशभास्कर में लिखा है कि टोडा के डूंगरसिंह सोलंकी पुत्र सेढू सोलंकी पर लल्लन पठान ने आक्रमण किया। पीपा ने लल्लन से युद्ध किया और उसको मारकर टोडा पुनः सोलंकियों को दिलाया। इधर वंशप्रशस्ति में रामवल्लभ सोमानी ने डूंगरसिंह को महाराणा कुंभा (1490-1525 वि.सं.) का समकालीन लिखा है।[40] संभवतः इन विवरणों में कहीं न कहीं विसंगति है क्योंकि कुंभा के पिता मोकल की पुत्री लालाँ राजर्षि पीपा की चौथी पीढ़ी के अचलदास की पटरानी थी। मोकल का जन्म 1452 वि.सं. का है।[41] मोकल की मृत्यु वि.सं. 1490 में हुई। तबही कुंभा गद्दी पर बैठा।[42] ऐसी स्थिति में कुंभा का जन्म अनुमानतः 1472-75 वि.सं. रहा होगा। 1472-75 में जन्मने वाले कुंभा के समकालीन व्यक्तियों की सहायता राजर्षि पीपा कभी भी नहीं कर सकते। इस सम्बन्ध में अभी भी गहन छानबीन की आवश्यकता है।

जबतक टोडा के सोलंकियों का प्रामाणिक इतिहास प्रकाश में न आ जाता, तबतक यह गुत्थी सुलझ नहीं पायेगी।

ऊपरलिखित यात्राओं का विवरण परचई के अनुसार संकेत रूप में है। परचई में कुल 758 छंद हैं। अतः उसको मूलरूप में यहाँ प्रस्तुत करना संभव नहीं है। पाठकों के लाभार्थ भक्तदामगुणचित्रणी टीका का मूलपाठ प्रस्तुत किया जारहा है। इसको पढ़ने से पीपा सम्बन्धी भक्तमालीय विवरण भलीभाँति जानने में आ सकेगा।

11. पीपा सम्बन्धी कुछ दर्शनीय-स्थल : गागरोन में पीपाजी का मंदिर, गुफा व विशाल छत्री गागरोनगढ़ की बस्ती के दक्षिण में बने हुए हैं। यहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक कृष्णा नवमी को विशाल मेला आयोजित होता है। राजर्षि पीपा का अंतिम समय यहीं व्यर्तात हुआ।

पीपावढ़ : द्वारका से 40 किलोमीटर दक्षिण में स्थित है। समुद्र में से वापिस आकर

पीपा व सीता इसी वृक्ष के नीचे आकर रुके थे।

बनारस का पीपा-कूप नरहरि मोहल्ले में है।

टोडा में पीपामंदिर सूरजसेन ने बनवाया था। बाद में जयपुर-सरकार ने जीर्णोद्धार करया। टोडा में ही सीता की समाधि है।

रचनाएँ : पीपा की रचनाओं का कोई एक संग्रह आज तक किसी को नहीं मिला। दादूपंथी सन्तों ने अनेक रचनाकारों की रचनाओं को अपनी पंचवाणी-पुस्तकों में लिखकर कालकवलित होने से बचाया। दादूपंथी विभिन्न पंचवाणी-पुस्तकों व संग्रह-ग्रंथों में मुझको 21 पद व 17 साखियाँ मिली हैं। इनको पाठांतरों साहित यहाँ प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक रचना के नीचे उसके प्राप्तिस्रोत को दर्शाया गया है। रचनाओं के पूर्व एक सारणी भी लगा दी गई है जिससे जानने में आयेगा कि कौन-सी रचना किस-किस ग्रंथ में उपलब्ध है। इन ग्रंथों के बारे में विस्तृत विवरण अन्याय रचनाकारों की रचनाओं के विवरण में आगया है। अतः यहाँ उसको पुनः लिखना पिष्ठपेषण है।

विचार : पीपा बहुत ही क्रान्तिकारी विचारक थे। उन्होंने पर्दाप्रथा का घोर विरोध किया। नारी-अस्मिता को स्थापित कर उसकी स्वतंत्रता की नींव डालकर उनको भगवद्भक्ति करने की अधिकारिणी घोषित किया। तेलन, कंडेरन व भंगनों को दीक्षित कर दलितोद्धार व हरिजनोद्धार का राजर्षि पीपा ने श्रीगणेश किया। शीलव्रत धारण करके गृहस्थ में ही रहकर भगवद्भजन करने का मार्ग प्रशस्त किया। अनेक राजपूतों को लड़ने-भिड़ने से विरतकर शांति से जीने का मार्ग अपनाने का रास्ता बताया। काटने वाली तलवार को त्यागकर जोड़ने वाली सूईं को अपनाने का उपदेश दिया। राजमान्य होते हुए भी कभी भी शासनतंत्र का इस्तेमाल नहीं किया। सदैव प्राप्त भिक्षान्न से ही जीवननिर्वाह किया। विकट से विकट स्थिति में भी भगवद्विश्वास को डिगने नहीं दिया।

संदर्भ व टिप्पणियाँ

1. चौहान-कुल-कल्पद्रुम; लेखक : देसाई लल्लुभाई भीमभाई, आबू, पृष्ठ 97 भाग 1।
2. उक्त, पृष्ठ 100 से 102 खिलचीपुर रियासत की ख्यातानुसार।
3. अचलदास खींची री वचनिका, शिवदास गाडण री कही, सम्पादक डॉ- शंभूसिंह मनोहर, पृष्ठ 81-83, भूमिका।
4. उक्त, पृष्ठ 26।
- Rajasthan through the ages 459-460 by Dr. Dashrath Sharma.
5. चौहान-कुलकल्पद्रुम, भाग 1, पृष्ठ 102-103।
6. उक्त, पृष्ठ 103-104; खिलचीपुर रियासत की ख्यात, हस्तलिखित में अचलदास का

मरना 1482 विक्रमसम्वत् में लिखा है जो भूल है। वचनिका व फारसी तवारीखों से 1480 विक्रमसम्वत् की ही पुष्टि होती है। देखें : अचलदास खींची री वचनिका, भूमिका, पृष्ठ 85।

7. चौहान-कुलकल्पद्रुम, पृष्ठ 103, भाग 1।
8. The survey of kheechi chauhan History, PP. 108 by A.H. Nizami and R.S. Kheechi.
9. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, प्रथमभाग, पृष्ठ 103।
10. अनन्तदास कृत पीपा की परचई, विश्राम 2 पूरा व विश्राम 3 के छंदांक 5 तक का विवरण।
11. उक्त, विश्राम 5 की चौपाई 12 से 18 तक।
12. उक्त, विश्राम 8 चौपाई 5 से 12 तक।
13. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, पृष्ठ 103, प्रथम भाग।
14. सर्वे ऑफ खींची चौहान हिस्ट्री, पेज 108
15. सर्वे ऑफ खींची चोहान हिस्ट्री, पेज 108
16. सन् 1251 से 1423 ई. तक। अचलदास खींची का मरना 1480 सम्वत्, 1423 ईस्वी सन् प्रसिद्ध है। देवनसी ने 1251 में गागरोनगढ़ फतह किया।
17. प्रस्तुत पदावली, पदांक 15 व पदांक 1।
18. प्रस्तुत पदावली, पदांक 1।
19. गुरु रविदासः साहित्यिक मूल्यांकन; सम्पादक डॉ. धर्मपाल सिंहल नामक पुस्तक में आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद का लेख 'सन्त गुरु रविदासः एक परिचय, पृष्ठ 193 से पृष्ठ 204 तक।
20. उत्तरीभारत की सन्तपरम्पराः आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ 139 प्रथम संस्करण।
21. हिन्दी-साहित्य-कोश, प्रभम भाग, पृष्ठ 705, लेखक बद्रीनारायण श्रीवास्तव व रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पृष्ठ 36।
22. नारायणदास नाभा कृत भक्तमाल, छप्पयांक 32 व भक्तदामगुणचित्रणीटीका पृष्ठ 154।
23. परचई, विश्राम 5, छंदांक 8-11।
24. अनंतदास कृत नामदेव की परचई, छंदांक 1।
25. रैदास की परचई; सम्पादक : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल।
26. सर्वे ऑफ खींची चौहान हिस्ट्री, पेज 107।
27. अनंतदास कृत पीपा की परचई 1/3; भक्तिदामगुणचित्रणी टीका; पृष्ठ 260; चौहान-कुलकल्पद्रुम 99 से 103 तथा सर्वे ऑफ खींची चौहान हिस्ट्री, पेज 111।
28. चौहान-कुलकल्पद्रुम, भाग एक, पृष्ठ 102-103।
29. सर्वे ऑफ खींची चौहान हिस्ट्री, पृष्ठ 111।
30. उक्त, पृष्ठ 111।
31. चौहान-कुल-कल्पद्रुम, पृष्ठ 103, भाग 1।
32. अनंतदास कृत पीपा की परचई, विश्राम 7 चौपाई 7 से 18। विश्राम 8 छंद 1 से 12।
33. चौहान-कुलकल्पद्रुम, पृष्ठ 103, भाग 1।
34. उक्तानुसार।

35. उक्तानुसार।
36. नाभाकृत भक्तमाल का छप्पयांक 58।
- राघवीय-भक्तमाल का छंदांक 159।
37. नरसीजी रो माहेरो : सम्पादक ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल।
38. नाभा कृत भक्तमाल। भक्तदामगुणचित्रणी टीका, पृष्ठ 156, मूल छप्पयांक 33।
39. राघवीय भक्तमाल, चत्रदासी टीका, छंदांक 163, पृष्ठांक 216।
40. सर्वे ऑफ खींची चौहान हिस्ट्री, पृष्ठ 112।
41. अचलदास खींची री वचनिका, भूमिका, पृष्ठ 62। शंभूसिंह मनोहर।
42. उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 1 पृष्ठ, 279।

राजर्षि पीपा की विभिन्न हस्तलिखित पुस्तकों में उपलब्ध हुई रचनाएँ

पद	496	गो.स.	र.स.	561	2	1817	34	3322
1. मनाँ भजिसि रे हरि चरण	1	9/30	22/22	1	1	-	12	-
2. पूजा कौण करूँ जगजीवन	2	14/9	107/5	2	2	-	3	-
3. तूँ मेरे तीरथ तूँ मेरे कासी	3	13/21	-	6	3	1	6	-
4. अनत न जाऊँ राजा राम की दुहाई	4	-	-	-	4	2	7	-
5. एक अचम्भा ऐसा देख्या	5	63/26	-	8	5	3	8	-
6. क्या मेरा क्या तेरा मना	6	-	-	9	6	4	9	-
7. माधवे नट विद्या मांडी	7	67/44	-	10	7	5	10	-
8. सु करि मेरौ मन अनत न जाई	8	79/11	-	11	8	6	13	-
9. तो जीजे जो गोव्यंद चरणा	9	8/30	-	12	9	7	16	-
10. भगति तेरी जीविन मेरी	10	75/24	-	4	10	8	15	-
11. तू मेरा तरवर मैं जन पाँखी	11	13/5	-	13	11	9	1	-
12. हरि का मरम न जाणैं कोई	12	13/19	-	14	12	10	2	-
13. जियरा करि रे कोई उपाया	13	104/4	-	15	13	11	4	-
14. मन रे कहा भूलो मतिहीणा	14	104/5	-	16	14	12	5	-
15. जो कलि नाम कबीर न होते	15	46/4	108/3	3	15	-	11	-
16. देखा भ्रमत भ्रमत तेरे हूँ सरणै आयौ	16	78/74	-	17	16	13	14	-
17. मन रे इहाँ उहाँ हरि सोई	-	-	-	-	-	-	-	✓
18. दास मैं दरबार तैरै जाचने आया	-	-	-	-	-	-	-	✓
19. भाई रे राम अमलि मेरा मन राता	-	8/45	-	-	-	-	-	-
20. काया गढ खोजतौं मैं नौनिधि पाई	-	13/22	7	-	-	-	-	-
21. देवा नटवर गति नाचि गए दुनिया में केते	-	-	5	-	-	-	-	-
साखी	**496**	**गो.स.**	**र.स.**	**561**	**2**	**1817**	**34**	**3322**
1. पीपा पारस परसताँ	1	25/3	-	1	1	1	10	-
2. पीपा पाणी रहणि बिणि	2	75/53	36/10	8	2	2	2	-

3. पीपा दास कहाइबौ कठिन है	3	15/5	-	10	3	3	4	-
4. पीपा भाव जु भगति में	4	15/51	-	-	4	4	-	-
5. पीपा दोइ न चाहिये भगत के	5	14/72	-	-	5	5	6	-
6. पीपा थोड़े अंतरे	6	66/14	-	2	6	6	7	-
7. पीपा परचै पवन कै	7	-	-	-	7	7	5	-
8. पीपा पाटण कारिवाँ	8	-	-	8	8	-	-	-
9. पीपा परमेश्वर तणा	9	64/65	48/8	3	9	8	3	-
10. पीपा धोखा नजरि का	10	86/57	-	4	10	9	1	-
11. पीपा माया नारी परहरौ	11	122/34	-	5	11	10	8	-
12. पीपा पर नारी परतखि छुरी	12	86/56 122/45	-	6	12	11	9	-
13. पीपा जे मन सुध ह्वै	-	26/90	-	-	-	-	-	-
14. पीपै परमारथ कथ्या	-	96/8	-	7	-	-	-	-
15. भूत दैत जौंरा भैरूँ	-	124/10	-	-	-	-	-	-
16. पीपा पाप न कीजिये	-	-	129/5	-	-	-	-	-
17. जहाँ पड़दा तहाँ पाप	-	-	-	9	-	-	-	-

राजर्षि पीपा गागरोनी की रचनाएँ

राग रामगिरी (1)

मनाँ भजिसि[1] रे हरिचरण।
परम पुनीत आरति हरण, और जँजाल सब तजिसि लोई ॥
[4]बेद पुराण जे कोटि सास्तर पढै, बिना भगवंत नहिं[3] मुक्ति[2] होई ॥टेक॥[4]
जिनि[5] भजे हरि चरण, जीते[5] च्यारौं बरण, जासकी जाति अछोप छीपा।
ब्यास में लेखिये सनक में पेखिये, नामा की नामना सप्त दीपा ॥
जाकै ईदि बकरीदि[6] गऊ रह बध करैं, मानियै सेख सहीद पीरा।
बापि वैसी[7] करी पूति ऐसी धरी, नाँव[8] नवखंड प्रसिधि[6] कबीरा ॥
[9]जाके कुटंब के[9] ढेढ[10] ढोर ढोवत फिरैं, अजहूँ वाणारसी आस पासा।
षटक्रम सहित विप्र दंडब्रत करैं, प्रगट नीसाण रैदास दासा ॥
[12]जपत जे नरा चरण कँवलापति, तास सम तुल्य नहिं आन कोई।
आप है एक अनेक ह्वै बिसतर्यौ [11]अंति एक को एक सोई[11] ॥
[13]दसूँ दिसि छाइ जस रह्यौ भरपूरि करि, कौंण मारग गये खोजो न पाऊँ[13] ॥
दास पीपौ कहै कठिण कलि काल में, भगत भगवंत भजि पार पाऊँ ॥1॥

इसका मूलपाठ ग्रंथांक 496, लिपिकाल सम्वत् 1660 से लिखा गया है। पाठान्तर गो.स., र.स., ग्रंथांक 561, 2, 34 से दिये गये हैं।

1. भजिसे (गो.स.) 2. जोग अरु जग्य जे कोटि तीरथ करै, तौ बिना रघुनाथ नहिं मुकति (र.स.) 3. ना (34) 4. रज्जब की सरबंगी में अग्रांकित पंक्ति और है "जपत जे जंन चरन कँवलापति, तास सम तुल्य नहिं और कोई। आदि ही एक अनेक ह्वै बिसतर्‌यौ, अंति भी एक को एक सोई। 5. भजि हरि चरन जीति (34); 6. बकरीदि अरु (गो.स.) 7 अैसी (34); 8 प्रथमि प्रसिद नवखंड (34); 9. जाकी जाति के (र.स.) 10. नित ढेढ (561); 11. अंति ही एक ह्वै रह्यौ सोई (561, 34); 12. रज्जब की सरबंगी में ये दोनों पंक्तियाँ ऊपर आगई हैं। 13. जिनकौ जस पूरि रह्यौ तिहूँ लोक में, कौन मारग गये खोज पाऊँ ॥ (र.स.)

(2)

पूजा कौंण करूँ जगजीवन, पाती कौंण चहोडूँ।
सर्व जीव में तूँ ही व्यापक[1], ताकूँ मैं नहिं तोडूँ ॥टेक॥
बिनसि जाइ जाकूँ[2] नहिं पूजूँ, अबिनासी नहिं पाऊँ।
बेदूँ थरपि देहुरै आण्या, ताकूँ मैं नहिं ध्याऊँ ॥
सालिगराम न पूजूँ स्वामी, यहु तो देव न होई।
सो पूजूँ जे रहै निरंतर, अबिगत लखै न कोई ॥
अलख निरंजन तूँ अबिनासी, तेरी गति किनहूँ न जाणी।
पीपा पूजि पूजि जग खीणा, कै[3] पाथर कै[3] पाणी ॥2॥

इसका मूलपाठ ग्रंथांक 496 से व पाठान्तर गो.स., र.स., ग्रंथांक 561, 2 व 34 से लगाये गये हैं।

1. बरतै (561, गो.स., 34); 2. ताकूँ (र.स., 561; जो दीसै सो बिनसि जाइगा 34); 3. को, को (34)

राग आसावरी (2)

(3)

तूँ मेरे तीरथ तूँ मेरे कासी।
सेइये[1] गोब्यंदराइ सकल निवासी ॥टेक॥
गगन गंगा भुवन गंगा। त्रिबिध[2] गंगा नाराइण संगा ॥
अठसठि तीरथ जो मन चंगा। राम के नाँइ पखालि ले अंगा ॥
पीपौ कहै जोगेस्वर[3] सोई। मुखि हिरदै जाके एकै होई ॥3॥

इसका मूलपाठ ग्रंथांक 496 व पाठान्तर गो.स., ग्रंथांक 561, 2, 34 व 1817 से लगाये गये हैं।

1. सेविए (34, 561) सेविए गोविन्दौ परम निवासी (34); 2. विविध (गो.स.); 3. जोगेसुर (34);

(4)

अनत न जाऊँ राजा राम की दुहाई।
काया गढ़ खोजताँ मैं नौ निधि पाई ॥टेक॥
काया देवल काया देव, काया पूजा पाती।
काया धूप दीप नैबेद[1] काया तीरथ जाती ॥
काया माहैं अठसठि तीरथ, काया माँहैं कासी।
काया माँहैं कँवलापती, बैकुण्ठ बासी ॥
जे ब्रह्मंडे सोई प्यंडे, जे खौजे सो पावै।
पीपा प्रणवै परमतत्त रे, सतगुरु मिलै लखावै ॥4॥

इसका मूलपाठ ग्रंथांक 496 से व पाठान्तर ग्रंथांक 2. 1817, व 34 से दिये गये हैं। यह पद गुरुग्रंथ में भी मिलता है।

1. नइवेद (2); अन्य ग्रंथों में पाठ समान है।

(5)

एक अचम्भा अैसा देख्या[1]। सो तत रे [2]काहूँ बिरलै पेख्या[3] ॥टेक॥
नाद ब्यंद थैं रहै नियारा[4]। सो[5] पद परसत[5] भया उजियारा।
त्रिकुटि मध्य जोति जे[6] कहिये। ताहूँ थैं अगम अगोचर लहिये ॥
विविध थान[7] त्रिदेव थैं रहिता। त्रिगुण अतीत निरंतर रमता।
जन पीपौ सतगुर बलिहारी। जाके सबदौं मिल्यौ है[8] मुरारी ॥5॥

इसका मूलपाठ ग्रंथांक 496 से व पाठान्तरपाठ गो.स., ग्रंथांक 561, 2, 1817 व 34 से दिये गये हैं।

1. देखा (34); 2. कही (34); 3. पेखा (34); 4. निनारा (34); 5. सो ततत 6. 'जे' नहीं है (34); 7. थान तू (2); 8. 'है' (461 व 34 में नहीं है जबकि 2 में 'हो' है)

(6)

क्या मेरा क्या तेरा मना, जैसे तरवर पंख बसेरा मना[1] ॥टेक॥
चंद न होता सूर न होता, होता दिवस न राती।
ब्रह्मा न होता सुद्र[2] न होता, तब करता कौंण भराँती ॥

माइ न होती बाप न होता, होता[3] कर्म[3] न काया।
हमें[4] न होता तुमे न होता[4], कहौ कहाँ थैं आया ॥
[5]वर्ण न होता विचार न होता, मोह न होता माया।
राजस तामस सातिग न होता, अविगत आप उपाया[5] ॥
खेचर भूचर सींगी मुद्रा, गुर परसादै पाया।
पीपौ प्रणवै परमतत्त रे, सब जग धंधै लाया ॥6॥

इसका मूलपाठ ग्रंथांक 496 से व पाठान्तर ग्रंथांक 561, 2, 1817 व 34 से दिये गये हैं।

1. 'मना' 34 में नहीं है; 2. रुद्र (2) वैसे पाठ रुद्र ही उचित लगता है। 3. करम न होती (34) 4. अम्हें न होता तुम्हे न होता (34); 5. ग्रंथांक 34 व 561 में दोनों पंक्तियाँ नहीं हैं।

(7)

माधवे नट विद्या मांडी। सब-जग राख्यौ[1] माया बांधी ॥टेक॥
ना कोइ पुरिख नहीं कोइ नारी। ना कोइ दाता ना कोइ भिख्यारी ॥
[2]ना कोई राँक नहीं कोइ राणा[3]। लघु[4] दीरघ झूठ करि जाना[4]।
प्रणवत पीपा सब जग पेख्या। बाजीगर अभिअंतरि पेख्या[5] ॥7॥

इसका मूलपाठ ग्रंथांक 496 से व पाठान्तर गो.स., ग्रंथांक 561, 2, 1817 व 34 से दिये गये हैं।

1. मेल्हा (561, 34, गो.स.) 2. नहीं (34); 3. भुवाला (34); 4. नहीं को साहिब नहीं को पाला (34); 5. देख्या (गो.स., 2, 34, 561);

राग गुंड (3)

(8)

सुकरि[1] मेरौ मन अनत न जाइ। तहाँ राखि जहाँ तेरे पाइ ॥टेक॥
अलख निरंजन निरमल हरी। तहाँ राखि जहाँ निरभै पुरी।
[2]सकल निरंतर सब घट स्वामी[2]। अंति कालि हरि अंतरजामी ॥
पीपौ प्रणवै परमनिधान। भक्ति च्यँतामणि[3] द्यौ[4] हरि दान ॥8॥

मूलपाठ ग्रंथांक 496, पाठान्तर गो.स., 561, 2, 1817 व 34 पर आधारित।

1. सुकरि जु (561, 34); 2. पीत पीतंबर गरुड़ागामी (34), 3. चिंतामणि (गो.स., 2,34,561); 4. मांगूँ (34);

राग टोडी (4)

(9)

तो जीजे[1] जो[2] गोब्यंद चरणा। नहिंतर[3] जनम वृथा[4] जगि भरणा ॥टेक॥
जा दिन [5]भजिसि न[5] गोब्यंद नामा। ता दिन प्राण पतन[6] करि रामा।
आपा उधारिले यह मत नीका। राम नाम[7] जपि[7] प्रणवै पीपा ॥9॥

मूलपाठ ग्रंथांक 496 व पाठान्तर गो.स., ग्रंथांक 561, 2, 1817 व 34 पर आधारित। 1. जीजौ (गो.स.) 2. 'जो' (गो.स. में नहीं है) 3. नहीं तो (2); 4. अबिरथा (561); 5. बिसरसि (34) 6. पनन (34), 7. भजन करि (34);

(10)

भगति तेरी जीवनि मेरी। अेकलैं आनँद होइ मंझा देवा ॥टेक॥[3]
देह की दुरमति और की आसा। सेइले गोब्यंद चरण निवासा।
[1]नारी को सेवग नरक दुवारै। आतम एक न ग्यान बिचारै ॥
[2]इहिं उनमान जपै जन पीपा। तार्‍यौ त्रिलोचन नामइयौ छीपा[2] ॥10॥

मूलपाठ ग्रंथांक 496 व पाठान्तर गो.स., ग्रंथांक 561, 2, 1817 व 34 पर आधारित। 1. हरि (34), 2. पंच पदारथ हीरै जड़िया। प्रणवै पीपा हाथि चड़ीया। (561, गो.स.); 3. ग्रंथांक 561 व गो.स. में टेक के पश्चात् अग्रांकित पंक्ति और है "राँक बापुड़े रतन पायौ। हेत करि करि हिरदै लायौ ॥ 4. ग्रंथांक 561 व गो.स. में 'देह की दुरमति और की आसा। सेइले गोब्यंद चरण निवासा, नहीं है।

राग सोरठ (5)

(11)

तूँ मेरा तरवर मैं जन [1]पाँखी। अंबरीष [2]ध्रू नारद साखी ॥टेक॥
जो तुम[3] गिरवर तो मैं मोरा। जो तुम[4] चंदा राम तो मैं चकोरा।
जे[5] तुम सरवर तो मै मंछा। जे[5] तुम गऊ राम तो मैं बच्छा ॥
जो तुम तीरथ तो मैं जाती। जे तुम देवा राम तो मैं पाती।
पीपौ प्रणवै अंतरजामी। मैं तेरौ सेवग तूँ मेरौ स्वामी ॥11॥

मूलपाठ ग्रंथांक 496 व पाठान्तर गो.स., ग्रंथांक 561, 2, 1817 व 34 पर आधारित। 1. पंखी (2, 561,34, गो.स.); 2. ध्रू (561); 3. तुम्ह (गो.स., 34); 4. तुम्ह (2, 34, 561, गो.स.); 5.जो (561);

(12)

हरि का[1] मरम न जाणैं कोई, जैसा भाव तैसी सिध होई ॥टेक॥
घर बैठा तीरथ कूँ धावै[2], तीर्थ जाइ पछितावै।
तिहिं तीरथ कूँ चलि मेरे जियरा, पुनरपि जनम न आवै ॥
तीरथ करि करि जगत भुलाया[3], खोज्या तिनि हरि पाया।
काष्ट[4] पखाण सबनि में केसौ, ऐसा त्रिभुवनराया ॥
विद्या अख्यर[5] देव दिजि पूजा, इहि बेसास विगूता।
पीपौ[6] कहै प्रगट परमेस्वर, जन जागै जग सूता ॥12॥

मूलपाठ ग्रंथांक 496 व पाठान्तर गो.स., ग्रंथांक 561, 2, 1817 व 34 पर आधारित। 1. को (34); 2. धवै (561) 3. भुलाना (561); 4. कष्ट (2, 561, 34, गो.स.); अखिर (34, 561); 6. पीपा (561);

(13)

जियरा करि रे कोइ उपाया। ताथैं[1] बैद मिलै राम राया ॥टेक॥
खणि खणि मूँली खइये। भ्रमि भ्रमि तीरथ न्हइये।
कोटि वैद संगि फिरिये। तऊ देखताँ मरिये ॥
[2]केई राजा केइ[3] राणा। केइ[4] पातिसाहि सुलिताना।
[5]बहु नाइक जो सरिये[5]। तऊँ देखताँ मरिये ॥
[8]ऊँचा कोटि मरोड़ा। तहाँ[6] नहीं धन थोड़ा।
दरि बांधि ले घोड़ा हाथी। तेरे संगि न आवै साथी[7] ॥[8]
पीपौ[9] प्रणवै अंतरजामी। तूँ जनमि जनमि मेरौ स्वामी।
मेटि जनम का पासा। तुम्ह ठाकुर मैं दासा ॥13॥

मूलपाठ ग्रंथांक 496 व पाठान्तर गो.स., ग्रंथांक 561, 2, 1817 व 34 पर आधारित। 1. जाथैं (561); 2. को (561) के (34); 3. के (34); 4. को (561); के (34); 5. बहु पाइक संगि फिरिये (561), बहु नाटिक जे करिए (34); 6. जहाँ (गो.स.); 7 साथा (गो.स.); 8. ग्रंथांक 561 में पाठ है। "ऊँचा कोट मरोड़ा। दरि बांधि ले हस्ती घोड़ा। तिन्ह सांचि सांचि धन धरियौ। तऊ देखतां मरिये। 9. पीपा (561);

(14)

मन रे कहा भूलौ[1] मतिहीणा।
तूँ काहू को[2] ना तेरा, ज्यूँ उपना त्यूँ खीणा ॥टेक॥

राजपाट अबला बहुतेरी, होते घोड़ा हाथी।
परमहंस जब दिया पयाणा, बिचरि[3] रहे सब साथी ॥
जे नर छाँह छत्र की चलते, दुनीं मान महिराणा।
नवणि करंते जालण लागे[4], जब तन भया बिराणा ॥
पीपौ[5] कहै पदारथ पाया, अंध न देखै कोई।
अंमृत नाँव राम का मीठा, मैं पीऊँगा रस सोई ॥14॥

मूलपाठ ग्रंथांक 496 व पाठान्तर गो.स., ग्रंथांक 561, 2, 1817 व 34 पर आधारित।
1. भूले (34); 2. कोई (गो.स.); 3. विरचि (2, 561), बीचि (गो.स.); 4 लामे (गो.स.); 5. पीपा (2, 561);

राग सारंग (6)

(15)

जो कलि नाम कबीर न होते।
तो लोक बेद अरु कलिजुग मिलि करि, भगति रसातलि देते ॥टेक॥
आगम[1] निगम [2]कहत ए पांडे[2], फल भागौत लगाया।
राजस तामस सातिग कथि कथि, [3]यूँ यहि जगत भुलाया[3] ॥
[4]बकता सुरता दून्यूँ भूले[4], दुनिया सबै भुलाई।
कल्पब्रिच्छ की छाया बैठे, तो क्यूँ न कलपना जाई ॥
सरगुण [5]कथि कथि मिष्ट खवाया, काया रोग बढ़ाया[5]।
[6]निरगुण नींब पिया नहिं निरगुण, यूँ अढ़की जीव बिकाया[6] ॥
अंध लकुटिया अंध [7]गही है[7], परत कूप कत थोरे।
अवरण बरण दुवै रस अंजन, आँखि सबनि की फोरै ॥
हम से पतित कहा[8] कहि रहिते[8], कौंण प्रतीति मनि धरते।
नाना बाणी[9] देखि सुणि श्रवननि[10], बहु मारग अनसरते।
[11]करि हरि भगति भगति कण लीना, त्रिबिध रहित थिति मोहे ॥
पाखँड रूप भेष [12]सब कंकर, ग्यान सूप करि सोहे।
तिरगुण रहित भगति भगवंतहि[13], बिरला कोई पावै ॥
[14]दया होइ जो कृपा नाथ की[14], तौ नाम कबीरा गावै।
[15]भगति प्रताप राखिबे कारनि, निज जन आप पठाया।
नाम कबीर साँच परकास्या[15], तहाँ पीपै कछु पाया ॥15॥

मूलपाठ ग्रंथांक 496 व पाठान्तर गो.स. र.स., ग्रंथांक 2, 561 व 34 पर आधारित।
1. अगम (34, 561, गो.स., र.स.); 2. कहत ए पंडित ((र.स., 561) की कहि

कहि पांडे (34, गो.स.); 3. यूँ यहु जगत भ्रमाया (561), इहिं बिधि भरम भुलाया (34), इनहीं जगत भुलाया (गो.स.); 4. कथता बकता दूवै भूला (34); 5. पढि पढि मिष्ट खुलाया, काया करम बढ़ाया (र.स.); 6. निर्गुण नींव पिया नहिं गुरु गमि, ताथैं आढै जीव बिकाया (गो.स., 34 में 'ताथैं' नहीं है), निरगुण नींव न पीया गुरमुखि, यौं अढ़की जीव बिकाया (र.स., 561); 7. गहै जब (र.स., 561); 8. कहौ क्यूँ होते (561) कहो क्या करते (र.स.); 9 बरन (र.स., 561); 10. श्रवणौं (र.स., 561); 11 हर (34); 12. सोइ (र.स.), 13. भगवंता (र.स., 561); 14. सोइ कृपा करि देहु कृपानिधि (र.स., 561); 15. अपनी भगति काजि हरि आपै, निज जन आप पठाया। नाम कबीर साँच परकास्या (र.स.) ..... 'भगत भेष धरि आया। राम सु नामा कृष्ण कबीरा (561, 34);

राग धनाश्री (7)

(16)

देव भ्रमत[1] भ्रमत[1] तेरे हूँ सरणैं आयौ।
सरणाई बिजै पंजर राखिले रमइया राइ ॥टेक॥
लोह को संकल पाइ तूटै हो घण चै घाइ।
मोह को संकल कैसे छूटै हो रामइया राइ ॥
देखी विद्या देख्यौ दान, देखी काया क्रितम तन।
साध संगति बिनि मेरौ, कहीं न मानै मन ॥
देख्यौ पुन्य देख्यौ पाप, सकल जग देख्यौ सन्ताप।
प्रणवंत[2] पीपौ, नरहरि उधारीलै आपैं आप ॥16॥

मूलपाठ ग्रंथांक 496 व पाठान्तर गो.स., र.स., ग्रंथांक 561, 2, 1817 व 34 पर आधारित।

1 भ्रमतौ भ्रमतौ (561); 2 प्रणवैं (561)

(17)

मन रे इहाँ उहाँ हरि सोई।
पारब्रह्म का मरम न पाया, बहुत फिरै क्या होई ॥टेक॥
तन थाका जे तीरथि पवै, ते मन मूरिख कहिये।
नवणि नवता बोलै नाहीं, परमारथ का लहिये ॥
अठसठि तीरथ जे नर न्हावै, स्वाद न पाया मीठा।
पीपौ कह परमेसुर प्रगट्यौ, घरि ही बैठा दीठा ॥

इसका मूलपाठ सिटीपैलेस, जयपुर के ग्रंथांक 3322, लिपिकाल सम्वत् 1717 से लिखा गया है।

(18)

दास मैं दरबार तेरे जाचनै आया।
भगति को दान दीजै, जादौ के राया ॥टेक॥
प्रथमि पांडवा जाच्यौ, भीषम भिख्यारी।
भगति को दान दीजे, देव मुरारी ॥
खीरसागर सु जाके, चरण निवासा।
धू प्रहलाद वभीषण, उधौ नारद खवासा ॥
लाख माँहे कोटि बारै, बैंकुठ राया।
दास पीपो द्वारै ठाढौ, दरसन दे राया ॥

इसका मूलपाठ राजस्थान-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, जयपुर, पुरोहित-संग्रह, ग्रंथांक 12, लिपिकाल 1741-1743 से लिया गया है।

राग गौड़ी (3)

(19)

भाई रे राम अमलि मेरा मन राता, बिसरौं तो बायड़ आवै।
आवागवन विथा मेरे तन की, हरि बिन कौन छुड़ावै ॥टेक॥
जोनी फिरै तोहि नहिं पूजौं, जपौं अजोनी संभा।
चंद सूर दोइ दीपक जोया, गगन रच्या बिन थंभा ॥
मनि हरि जान्या हरि मन जान्या, पूरब प्रीति सगाई।
हरि रँग राच्य रह्या मेरा मन, सो रँग कबहुँ न जाई ॥
मन की चिंता सबही डहक्या, भरम भूत होइ लाग्या।
पीपौ कहै सकल जग सोवै, हरि सुमिरै ते जाग्या ॥8/45॥

इसका मूलपाठ सरबंगी-सरह-चिंतामणि, सम्वत् 1684 से लिया गया है।

राग आसावरी (2)

(20)

काया गढ़ खोजताँ, मैं नौनिधि पाई।
अनत न जाऊँ सजना, राम की दुहाई ॥टेक॥

काया देवल काया देव, काया पूजापाती।
काया धूप दीप नइवेद[1], काया तीरथ जाती ॥
काया माँहैं अठसठि तीरथ, काया माँहै कासी।
काया माँहैं कँवलापती, बैकुंठ बासी ॥
जै[2] ब्रह्मंडे सोई पिंडे[3], जो खोजै सो पावै।
पीपौ प्रणवै परमतत्त रे, सतगुरु मिलै[4] लखावै ॥13/22॥

इसका मूलपाठ सरबंगी-सरह-चिंतामणि, सम्वत् 1684 से तथा पाठान्तर ग्रंथांक 561, सम्वत् 1785 से दिये गये हैं।

1. नैंबेद 2. जो 3. प्यंडे 4. मिलै त

राग गौडी (3)

(21)

देवा[1] नटवर गति नाचि गए दुनिया में[2] केते।
भूपति[3] भोवाल ग्वाल[4] मींर मलिक होते ॥टेक॥
जाकै बाइ आनि तेज पवन[5], चलते[6] दल भारी।
[7]लंकापति हारि गयौ[8], रावण सो[9] अहँकारी ॥
ममिता [10]गति वोट कीन्हीं[10], खेल पसार्‌यौ माया।
[11]भरम जड़ी[11] बाइ डौरू, बाजीगर बाया ॥
लखाँ खोहणी खीजि गए, कैरों पांडौं लड़ते।
बसुधा [12]किनी न जीती पीपा, दोऊ गरब[12] करते ॥561/5॥

मूलपाठ ग्रंथांक 561 पर आधारित व पाठान्तर सिटीपैलेस के ग्रंथांक 3322 लिपिकाल 1717 के आधार पर।

1 लोका 2. महि 3. भोपति 4. गूवाल 5. पुंज 6. चलता 7. सोई लंकापति 8. गये 9. 'सो' नहीं है। 10. ममिता की वोट गहै 11. भरमी जरी 12. कहू न जीती पीपा, ये गरब दोउ गलते।

साखी

1. पीपा पारस परसताँ, लोहा कंचन होइ।
   सिध के काँठै बैसताँ, साधिक भी सिध होइ ॥1॥
2. पीपा पाणी रहणि बिणि, रहै न ऊँचै ठाइ।
   रामभगति निज दास कूँ, जतन करंताँ जाइ ॥2॥

3. पीपा दास कहाइबौ कठिन है, मन नहिं छाँडै मानि।
सतगुरु सूँ परचौ नहीं, कलिजुग लागौ कानि ॥3॥
4. पीपा भाव जु भगति में, बुधि सो कलि का देख।
भुरकी नाखी भरम की, पड्या भगति में भेख ॥4॥
5. पीपा दोइ न चाहिये भगत के, एक ऊँट र सालिगराम।
जहु तो तोड़ै पीपलाँ, वहु तुलसी का पान ॥5॥
6. पीपा थोड़ै अंतरै, घणी बिगूती लोइ।
महामाइ मारया घणा, तार्‌यौ नाहीं कोइ ॥6॥
7. पीपा परचै पवन कै, केता मिलैंगा आइ।
सबही परचा भागिसी, जब पवन काया थैं जाइ ॥7॥
8. पीपा पाटण कारिवाँ, पंच चोर दस द्वार।
जमराणौं गढ़ भेलसी, वोल गिलैगो पार ॥8॥
9. पीपा परमेस्वर तणा, मता न जाणैं कोइ।
आरँभिया यूँ ही रहै, और अच्यंता होइ ॥9॥
10. पीपा धोखा नजरि का, जती सती कूँ होइ।
मन अरु नैंण बिगूचताँ, बिरला राखै कोइ ॥10॥
11. पीपा माया नारी परहरै, चित सूँ धरै उतारि।
ते नर गोरखनाथ ज्यूँ, अमर भया संसार ॥11॥
12. पीपा पर नारी परतखि छुरी, बिरला बंचै कोइ।
'ना ऊँ पेटि संचारिये, सोर सोना की होइ' ॥12॥
13. पीपा जे मन सुध है, तिनसूँ मिलिये धाइ।
मनि द्रोही कपटी हुवै, तिनसूँ मिलै बलाइ ॥26/90॥
14. पीपै परमारथ कथ्या, सुखसागर का मूल।
स्वारण सूकौ रूँखड़ौ, छाँह बिहूणौं सूल ॥96/8॥
15. भूत दैत जौंरा भैरूँ, देवी तुमहि बतावै।
पीपा मेरे रिधि है हरि, बिनि सिधि न पावै ॥124/10॥
16. पीपा पाप न कीजिये, तौ पुंनि किया सौ बार।
जे कछु लोभ न लेण का, तौ दीन्हौं बार हजार ॥129/5॥
17. जहाँ पड़दा तहाँ पाप, बिण पड़दै पापै नहीं।
जहाँ हरि आपै आप, पीपा तहाँ पड़दौ किसौ ॥561/9॥

साखियों के पाठान्तर सरबंगी-सरह चिन्तमणि से दिये गये हैं।
12/1 नां वहि पेट संचारिये, जे रसना की होइ'' अन्यत्र पाठ समान मिला है।

भक्तमाल की भक्तदामगुणचित्रणी टीका में राजर्षि पीपा
अथ पंचत्रिंशो रचनावृंद
मूल

पीपा प्रताप जग वासना नाहर कौं उपदेश दियौ ॥
प्रथम भवानी भक्त मुक्ति माँगन कौं धायौ ।
सत्य कह्यौ तिहिं शक्ति सुदृढ़ हरि शरण बतायौ ॥
श्रीरामानँद पद पाइ भयौ अति भक्ति की सीवाँ ।
गुण असंख्य निर्मोल सन्त धरि राखत ग्रीवाँ ॥
परसि प्रणाली सरस भई सकल विश्व मंगल कियौ ।
पीपा प्रताप जग वासना नाहर कौं उपदेश दियौ ॥58॥

टीका, चौपइया छंद

अब सुनिये पीपा की गाथा जिस गुण सुभग अनंता ।
प्रथमहि पीपा गागरूण को नृप खीची कुलवंता ॥
देवी को सेवक दृढ़ भारी धर्म नेम हू ठानै ।
भूखां कूँ भोजन देवै पुनि हरि की भक्ति न जानै ॥1॥
एक बार भल सन्त पधारे पीपा के दरबारा ।
तिनकूँ सीधा दीधा लीधा कीधा पाक सुहारा ॥
हरि को भोग लगाय रसोई सन्तनि रुचि करि पाई ।
नृप को अन्न अंग सन्तनि के लग्यो बुद्धि पलटाई ॥2॥
मनहुँ दूध में ज्यावन लागा रूपक जरी कथीरा ।
त्यों पीपा की मति रति हरि सूँ जगी सन्त करि सीरा ॥
तिहि निसि पीपा स्वप्ना देखा काल कराल डराना ।
महिष रूप ह्वै याकूँ मारा सोवत यहू जगाना ॥3॥
स्वप्न त्रास संभारि कंप तन रोवत जोवत रामहिं ।
तिहि अवसर देवी चलि आई जाकूँ सेवत धामहिं ॥
पीपा सूँ बोली क्यूँ रोवत की दुख तोहि पराना ।
हौं देवी तेरी नित सेवी तुष्ट भई वरदाना ॥4॥
माँगि चहै जो सुत वित संपति किधौं सत्रु जय लेई ।
कहि पीपै स्वप्ना में मोकूँ माहिषासुर दुख देई ॥
काल रूप मोकूँ धर पटका बहु विधि कियो बिहाला ।
सो भय लखि मो मन अति कंपत तन बल तेजहिं टाला ॥5॥

तोकूँ उहि दीसत किधौं नाहीं देवी कहि नहिं दीसा।
पुनि पीपा कहि उहि दुख मेटो जो तूँ देवी ईसा॥
सो भय मो मन धसा न निकसत अजहू डरपत भारी।
और कछू नहिं चाहत संपति पुत्र राज दुखकारी॥6॥
यहाँ पुत्र सुख विष सम लागत मोहिं मुक्ति दे माई।
देवी अचरज धरि कहि पीपा ऐसे कहा कहाई॥
तिय सुत राज द्रव्य सुख भोगहु मुक्तिहिं कहा कराई।
पीपौ कहै मुक्ति ही चाहौं भोग रोग दुखदाई॥7॥
जौ तूँ मात तोष भइ साँची कहिये मति डहकावै।
मुक्ति देहु किधौं मुक्ति मार्ग कूँ करि उपकार बतावै॥
तब देवी हू साँची भाषी मुक्ति नहीं मम पासा।
मुक्ति चहै तो सन्त संग करि धारहु राम उपासा॥8॥
मुक्ति करन कूँ राम रामचर और देव हु न कोई।
सब भय हरन सरण रघुवर को ता सम और न होई॥
सकाम सुर नर सकाम सेवत प्रभु सेवक इक धर्मा।
काल पास में सब ब्रह्मंडा जिन का सकाम कर्मा॥9॥
सुनि पीपौ देवी के बचना साँचा मन बिलखाई।
बनिक जहाज भरी ज्यों खेपहि लूटत मुरछा पाई॥
पीपौ कहै बरस द्वादस लगि देवी तोकूँ सेई।
मुक्ति चही तब नहीं कही तव सेवा के फल एई॥10॥
अब बताय मैं को गुरु ठानौं जाकरि मुक्तिहिं पइये।
तब देवी कहि रामानंदहि करि गुरु कासी जइए॥
यहि कहि देवी गई ठिकाने पीपौ मन पछिताई।
बड़े पाप हम कीन्हा पूरब ताते भक्ति न पाई॥11॥
किंवा सन्त सदन पधराय न सेवा नीकी ठानी।
धरि अभिमान बड़ा तन कुल को लोक लाज मन आनी॥
अथवा सालग्रामहिं पाथर माना मैं भरमाना।
किंवा हरि हरिजन की गाथा सुनी न मन रुचि दाना॥12॥
कै हरि चरणोदक भुकसेषहिं लियो न कियो अभावा।
कै हरि गुणगण गान न ठाना धरि मन अभिमति भावा॥
कै सन्तनि की निंदा ठानी हरि की संक न मानी।
ताते भक्तिहीन मैं जाता महाराज अभिमानी॥13॥
ऐसो सोचत भयो प्रभाता पीपा मौन गहाई।

उठा नहीं दुर्बल तन पोचा तब कुल खबरि कराई ॥
देखि कुटुंब सोचबे लागा भागा इत उत फिरई।
भोपा वैद्य जरी करवावत अस जानत नृप मरई ॥14॥
कोउ कहै इस राक्षस लागा कोउ कहि मूठ चलाई।
बहु उपचार करै नर मूढ़ा कोऊ रहसि न पाई ॥
पीपै कहै सुनहु रे लोका रोग न देह हमारे।
हरि की शरण गहै नर नारी नातर जमचर मारे ॥15॥
एही भय मेरे मन उपजा भजिहौं चरण मुरारी।
दीनबंधु अघ हरण तरण भव शरणपाल सो भारी ॥
अस कहि पीपा होय सचेतन कासीपुरी सिधावा।
सत असवार पंचसत प्यादा ले पथि धन बहु जावा ॥16॥
रामानंद ठिकाना सोधा गए द्वार अटकाए।
द्वारप स्वामी पास जनाई इक नृप दरसन आए ॥
पछिम देश गढ़ गागरूणपति तव सिष होबे आवा।
स्वामी कही कहौ तासूँ नहिं भूपहि सिष्य करावा ॥17॥
कही आय नहिं करै नृपहिं सिष तब नृप बात सुनाई।
देवी सिक्षा कहि निज मन रुचि नहिं गुरु और कराई ॥
फिरि स्वामी पै कहि सो बाता तब स्वामी फुरमाई।
जो मम सिष होवै तो तू निज दे सब माल लुटाई ॥18॥
मूँड मुड़ाय रहो हम पासा जो मन मुक्तिहिं भावा।
एही कही गही झट पीपा सबही माल लुटावा ॥
मुख बिलखाय गए घर संगी पीपै गुरु पद चाहा।
तब स्वामी फिरि औरहि कसनी दिखवा रति अवगाहा ॥19॥
कहि पीपा कूँ अंध कूप में गिरिये पीछे तोही।
करों सिष्य जो जीवत रहई नातर दोष न मोही ॥
सत्य प्रीति गुरुपद पीपा की कूप परन कूँ जावा।
जना चारि राखण पीपा कूँ स्वामी संग पठावा ॥20॥
साचे मते परन कूँ लागा कर गहि पीछा लाए।
पीपा कही परूँ मति फेरो गुरु अज्ञा घटवाए ॥
जो कूपहिं गिरि भला होत है तबही गुरु फुरमाई।
अरु पीपौ धर पर्यो परन कूँ तब तिनि गुरु गिर गाई ॥21॥
स्वामी तोहिं बुलावत चलिये चाल्यो गुरु पै आवा।
लाग्यो चरण धर्यो सिर कर प्रभु सिक्षा मंत्र सुनावा ॥

भजन रीति अरु सन्त प्रीति विधि सेवा करन सिखावा।
माला तिलक प्रसाद चरणजल लेय भक्ति पण पावा ॥22॥
दिन दस राखि ताहि स्वामी गृह जावन अज्ञा दीन्हीं।
पीपौ कहै नहीं अब जाऊँ बहु विधि विनती कीन्हीं ॥
फिरि स्वामी कहि जाहु गेह तुम सन्तनि सेव कराऊँ।
रहो बरस लगि सरस भक्ति लखि हम ही तव गृह आऊँ ॥23॥
गृह में भजन और जन सेवा दूना लाभ लहाई।
मानो हुकम हमारो पीपा तब मानी गृह जाई ॥
आवा गेह बधाई बाँटी सब रानी रजधानी।
पीपौ लग्यो भक्ति गृह करिबे अति रति हरि मति सानी ॥24॥
अच्युत गोत्री सेवत पीपौ तन मन धन तिय जुक्ता।
प्रणय डोरि अंचित हरिदासा आवत द्वारे मुक्ता ॥
तिनसूँ उठि आदर करि मिलई चरण धोय जल पीवै।
आसन देकरि धूप दीप स्रजि चंदन चरचै ग्रीवै ॥25॥
करि आरती बीजना चामरि अरपै पक्व प्रसादा।
भोजन विविध करावै मन रुचि बीरी अरपै स्वादा ॥
कोमल तल पहि सयन करावै अपने महलनि माहीं।
प्रेम भाव सूँ सब सन्तनि कूँ सेवत रुचि उपजाहीं ॥26॥
विदा होय तब सब सन्तनि कूँ बसन भेंट धरवाई।
अस अति भक्ति बढ़ी पीपा की भक्तनि महिमा गाई ॥
रामानंद सुनी कासी में पीपा भक्ति कराई।
ऐसे द्वादस मास विदीता पीपा अरजि लिखाई ॥27॥
स्वामी पासहिं पत्र पठायो कहि पालहु निज बानी।
हुकम करो तो मैं चलि आऊँ नातर देहु दिखानी ॥
तब स्वामी पत्री सुनि चाले लखि रति पीपा गेहा।
चत्वारिंश भक्त पथि लीन्हा जेतक राम सनेहा ॥28॥
मुख कबीर रयदास जिनहुँ में स्वामी संगति होई।
सनै चलत मग राम भजत भू पावन करता सोई ॥
जहि तहि पूजा लगत जनन की दुनिया दरस कराई।
कबीर की जात्रा अति लागै जो सब जग प्रगटाई ॥29॥
अस द्वै मास मार्ग में बीता पीछे नेरा आवा।
खबरि मँगाई पंचक्रोश लगि पीपा सनमुख जावा ॥

स्वामी के पद परस प्रणामा करी भरी मन आसा।
कबीर अरु रयदासहिं भेंटा सब सन्तनि पद पासा ॥30॥
चले नगर स्वामी सिविका चढ़ि पीपा चमर ढुरावै।
रथनि माँहिं पुनि और सन्त चढ़ि चाले हरि गुण गावै ॥
सब पुर लोक दरस कूँ धावा राजा गुरु पद भावा।
ताल मृदंग बजावत गावत हरि जस मोद बढ़ावा ॥31॥
मंगल कलस विचित्र स्वामि कूँ बंदित तिय जस गाई।
पुर ढिग उतरि चले मग पग तल भूमि वसन करि छाई ॥
अति उच्छव करि श्री गुरु को नृप निज मंदिर पधराए।
नृप बहुलाश्व कृष्ण ज्यों माना तिन यहु गुरुहिं लड़ाए ॥32॥
गुरु पद क्षाल चरणजल सिर मुख धारि गेह छिरकाई।
रानी द्वादस बोलि सन्त गुरु चरणनि आनि नमाई ॥
कबीर अरु रयदास सबनि को कीन्हा अति सनमाना।
सन्तनि हुते चौगुनी भाँती श्री गुरु अरचा ठाना ॥33॥
धूप दीप आरती प्रसादा मृगमद अगुरु कपूरा।
सब विधि ठानि मानि गुरु आगम आज धन्य दिन सूरा ॥
बहुत बधाई बाँटी पीपै गुरु दरसन मन हरषा।
भोजन विविध रचा गुरु कारण व्यंजन रस रुचि सरसा ॥34॥
आसन सज्या सब रुचिदानी ठानी अति मनुहारी।
हरि गुरु हरिजन सेव मुक्तिप्रद वेद पुराण उचारी ॥
ऐसे स्वामी दिन दस बीसा रहे प्रीति रस रागी।
पुनि पीपा सूँ कही जाहिंगे सुरति द्वारिका लागी ॥35॥
तुम गृह रहौ कि होहि अतीता दोऊ नीकी बाता।
सन्त सेव हरि भजन गेह में दोनहु लाभ लहाता ॥
गेह तजे बिन नेह न मिटई दोऊ विधि हम गाई।
मन मानै सो कीजै पीपा तब गुरु पग लगि धाई ॥36॥
मैं हूँ चलिहौं गुरु कहि चलिये चाला स्वामी संगा।
तब रजधानी रोवन लागी नृप हित मोहि प्रसंगा ॥
पुनि पीपा की रानी बोली हम ही संगति आवैं।
निज निज रथ चढ़ि भई चलाने हम पति बिन न रहावैं ॥37॥
रानिनि बरजी अरजी करि पति गरजी मन नहिं मानी।
तब स्वामी कहि पीपा संगति जो तुम चालत रानी ॥

पीपा करै सोउ तुम कीजै कही करहिंगी देवा।
तब स्वामी कंबल मँगवाए बीच फारि ते लेवा ॥38॥
ठानि मेखला प्रथमहि एका पीपा के गल धारी।
पुनि रानिनि सूँ कहि यहि धारो झट पट भूषण डारी ॥
हटी नटी कपटी रति रानी रोय गोय मुख लाजी।
तब छोटी तिय सीता मोटी प्रीति कसौटी साजी ॥39॥
कहि मैं पहिरूँ कंबल मेखलि पटहीं सकल उतारा।
तिस गल कंबल डारी तबही पीपा कूँ न सुहारा ॥
तब स्वामी कहि तिय सूँ कंबल डारि नगन ह्वै नाचो।
तो पीपा की संगति देऊँ तेरो मन है साँचो ॥40॥
तब तिय नगन मगन मन सिसु ज्यों नची लगन जिस साँची।
स्वामी रीझि ताहि झट पट दे मिलि पुत्री कहि बाँची ॥
कहि पीपा सूँ लीजे संगा पीपा नटा असंगा।
प्रभु तिय जती संग नहिं सोहै करै भक्ति में भंगा ॥41॥
जथा दुर्ग ढिग सिखरी खोटी बैरागी ढिग रंडी।
अब तो सब तुम भले कहत हो पीछे तुम ही भंडी ॥
तब स्वामी निज सपथ दिवाए धर पीपा मम बानी।
याते तेरी भक्ति बढ़ैगी कबहु न परिहै हानी ॥42॥
एही हुकम हमारा मानहु मानी पीपा दासा।
लई संग पीपा जुत स्वामी चाले नगर उदासा ॥
अगले पैतहि कीन्हा डेरा तहि इक ब्राह्मण आवा।
जरठ बधिर जड़ सो पीपा को कुलगुरु रारि बढ़ावा ॥43॥
पीपा नृप चलि घर कूँ पीछा नातर तो सिर मरिहौं।
पीपौ कहै मरै मति ब्राह्मण मैं पीछा नहिं फिरिहौं ॥
लीजे ग्राम तोहि लिखि देऊँ वृथा झोरि नहिं कीजे।
सो जड़ पर की बात न सुनई आप बकै बहु खीजे ॥44॥
समझाये समझै नहिं मूरख सो विष खाय मराना।
तब पीपा अघ मानि विप्र पथ मरन मनोरथ ठाना ॥
पीपौ कलपत बरजत स्वामी मन में सांति न आवा।
तब स्वामी निज पदजल द्विज कूँ प्यायो तुरत जिवावा ॥45॥
द्विज उठि जानी आई निद्रा गयो गेह नहिं बोला।
निरखि प्रभाव हरषि मन पीपा पुनि उपदास कलोला ॥

करी आरती स्वामी की तब सब जन अदभुत माना।
पुनि आगे कूँ कर्यौ प्रयाना मास साठ द्वै जाना ॥46॥
पीछें गए द्वारिका सन्ता जहिं रणछोड़ बिराजा।
कीन्हो दरस सरस सुख पायो सबही सन्त समाजा ॥
रहे छमास पुरी में स्वामी इक दिन बचन उचारा।
कहो कबीर कहो रयदासा पुरी सप्त जग सारा ॥47॥
किधौं बिसेष किधौं सम सबही तब रयदास बखानी।
मथुरा अधिक कहत सब ग्रंथा तब कबीर कहि बानी ॥
सकल पुरी हमकूँ सम दीसत सबमें एकहि रामा।
जा बिन नहीं कतहुँ घर खाली पूरण राम विरामा ॥48॥
पीछे स्वामी कासी जावा पीपौ रह्यौ तहाहीं।
अज्ञा माँगि तिया पति दोई इक दिन मता उपाहीं ॥
कहत कनक की पुरी द्वारिका सोहै सिंधु मझारा।
अजहूँ कृष्ण रुकमणी जामें बसत सहित परिवारा ॥49॥
आपनि सिंधु परहिं हरि देखहिं अस मत करि द्वौ गिरिया।
परतहि पानी जानी पीछे थल ही थल अनुसरिया ॥
एक कोस गत जबही देखी पुरी द्वारिका रूरी।
द्वै जन इनके सनमुख पठए हरिजी आसा पूरी ॥50॥
जाय मिलाए रुकमणिकंतहिं दरस सरस रस चाखा।
षोडस सहस एक सत आठा सब हरि मंदर झाखा ॥
पुत्र पौत्र सनुखा सब देखी सब परिवार निहारा।
कंचन खचित मणिनि के मंदर सुंदर पुरी बिहारा ॥51॥
निरखि हरषि पीपा मन लीपा हरिपद सीता जुक्ता।
रहे सप्त दिन बल भइया पै महाप्रसादहिं भुक्ता ॥
स्वादु पाय पीपै मन जानी भूमि अन्न यहु नाहीं।
हरि प्रसाद यहु जोग कला को भा प्रकास मन माहीं ॥52॥
कृष्ण बिदा पीपा कूँ दीन्हीं पीपौ नाहिन जाई।
दरसन गरजी अरजी ठानत सबके सदन फिराई ॥
राम प्रद्युमन ऊषापति पै कहत मोहिं इत राखो।
कहि उद्धव अक्रूरहिं हरि सूँ तुम मम अरजी भाखो ॥53॥
सीता कही रुकमणी रानी हमकूँ रखो समीपा।
ऐसे अरजि करी दिन द्वै लगि नव दिन रहियो पीपा ॥

निश्चय कृष्ण कही पीपा सूँ अब तुम भूमिहिं जइये।
मैं तेरे हित यहु लीला करि दरसन तोहिं दिखइये ॥54॥
अरु तुम मोकूँ ध्यावहु जबही दरसन तोहिं दिखाई।
करो भक्ति मेरी जग माहीं बहुला परचा पाई ॥
तोसूँ भलो होयगो जग को तूँ मम भक्त करारी।
जो तुम भू में जैहो नाहीं तो पण घटै हमारी ॥55॥
कहिहैं पीपा भक्ति करंता सिंधु बूड़ि मरि जावा।
और सन्त मम संसय करिहैं अभक्त अपजस गावा ॥
ताते तुम जावो सुख पावो करिये पर उपकारा।
सर्वरूप मोकूँ तुम जानो नेकु न दूरि विचारा ॥56॥
तब पीपै मानी हरि बानी चल्यो कृष्ण पहुँचावा।
लखि बिन जल मग पीपा पूछत प्रभु जल कहाँ गमावा ॥
हरि कहि मेरी सक्ति अधीना पंच तत्त्व भरपूरा।
चहौं जहाँ सो प्रगट करूँ नहिं चहौं करूँ तब दूरा ॥57॥
ऐसे चरचा करत दूरि लगि हरि आवा जन संगा।
अरु निज छाप पापहर दीन्हीं करो ताप अघ भंगा ॥
ले मुद्रा दंपति जल बाहर आवा हरि फिरि जावा।
दिव्य रूप दंपति जन दीसत हरि प्रसाद जिनि पावा ॥58॥

दोहा

पीपा दीपा मणि जगत, सीता सीता धार।
जग तम अघहर भक्त जुग, प्रगट भए भू चार ॥59॥
इतिश्री मद्भक्तदामगुणचित्रणी टीकायां पीपा भक्तस्य
कनक द्वारिकेश दर्शनोनाम पंचत्रिंशो रचनावृंद ॥35॥

अथ षटत्रिंशो रचनावृंद
चौपइया छंद

जब पीपा बाहर कूँ आवा धावा दरसन लोका।
पूछत कुशल चकित मन सबही नर नारी पुर ओका ॥
कैसे नव दिन जल में रहिया तिय जुत दिव्य स्वरूपा।
निद्रा भूख न व्यापी तुमकूँ जीवित रहे अनूपा ॥1॥
भैरव झाँफ इहाँ नर परई जीवत कोउ नहिं आवहि।
तुम अति मनुष सिद्ध तन दीसत कहो भेद निज पावहि ॥

तब पीपै तिनसूँ सब वरणा जैसा हरिपुर दरसा।
हरि की कृपा मिलन सब जन को सुनि सब जन सुख परसा ॥2॥
पुनि हरि छाप दिखाय दई कर पंडनि के अघहंता।
तब पीपा की महिमा लखि पुर कीरति बढ़ी अनंता ॥
दिन दस तिय जुत तहाँ रहाना पुनि देशहिं उलटाना।
सष्टि कोस आवा मग गहवर वन में तुरक मिलाना ॥3॥
कछू देश को सूबा सोई तापै बहु असवारा।
तिहि पीपा कूँ तिय जुत देखा सीता रूप अपारा ॥
बोल्यो यवन सिया पै लोभा भगे कहाँ ते दोई।
मुड़िये किसकी तिय हरि लायो नहिं यहु तेरी जोई ॥4॥
साँच कहो नहिं मारूँ तोकूँ पीपै कही बिचारी।
करैं वंदगी साहिब की हम फकीर यहु मम नारी ॥
तब खल कही मोहिं तिय बेचो चाहे सो धन लीजे।
राजकुमारि पदमनी सम यहु तोपै सोभ न दीजे ॥5॥
कही भक्त तिय सरण राम के हम कस बेची जाई।
जोर करो तो तुम ही जानो हम दुर्बल हरि गाई ॥
तब खल हारी सीता नारी रामहिं भजत सकंपा।
मग तजि नारी लई किनारी जिस मन झषधुज चंपा ॥6॥
लग्यो प्रबोधन सिय कूँ कामी चलि तिय तुम मम संगा।
मम नारिनि में तोहिं बड़ी करि दैहों सुख रस रंगा ॥
की मुड़िया के संग फिरै तू भीख माँगि करि खाई।
सुंदर तिय तू आव हमारे सबही भोग लहाई ॥7॥
मुड़ियो भोग मर्म नहिं जानै मैं सब भोग प्रवीना।
आव रमण करि जो नहिं मनिहो तो तव नाकहि छीना ॥
सुनि सीता डरपी हरि अरपी भरि सुर राम पुकारी।
धरि तन काल कराल राम प्रभु भक्त सुखद खरहारी ॥8॥
पटकि पछार्‌यो यवनहिं तबही भीतर मार लगाई।
सब तन धातु चली कामी की सत गत खेत पराई ॥
सीता सीता सम सतभीता सीताराम उधारी।
सीता सीता सम तहिं बीता वरष तुरत यहु तारी ॥9॥
भक्त अधिकता राखत राघव जहि तहि ग्रंथ भनाई।
दुष्ट गिर्‌यो जब सीता तबही मग पीपा पै आई ॥

खल संगिनि कूँ कही जाहु रे देखहु स्वामि तिहारा।
तिन झट दौरि पठानहिं देखा पर्‌यो धरणि बेसारा ॥10॥
हाय इलाह करत सब रोवत कहत जुलम किन कीन्हा।
किंवा मुड़िये कला दिखाई किधौं तिया विष दीन्हा ॥
कहि मुड़िया कूँ जान न दीजे तुरक सुरक मन भीता।
पुनि पठान हू भयो सचेतन कंपत ज्यों मृग चीता ॥11॥
उठा पीय जल कहत पथिनि सूँ मैं अति भयो बिहाला।
एक सकस तब आवा मोपै जब तिय कूँ कर घाला॥
मोहिं पछारा अंतर मारा पर्‌यो बीजुली जैसे।
तिय कर परस करन नहिं पायो इनके रक्षक ऐसे ॥12॥
अब नहिं ऐसा काम करूँगो पर तिय देखि डराई।
चलो अतीत चरण मैं लागौं तब पीपा पै जाई ॥
दंपति के पग लग्यो पठाना धन पट पाट चढ़ावा।
धरक तुरक मन सुरक सुरक करि विनती वचन सुनावा ॥13॥
क्षमा करौ यहु मेरी माता भूलि कुरुष मन ठाना।
तब पीपा कहि मति भय मानहु हम नहिं रोष धराना ॥
तव अनीति को तुम फल पायो साहिब मार जताई।
भेंट धरी सो लीजे तुमरी संग्रह हम न कराई ॥14॥
फिर पठान पद लागि कही प्रभु चलिये मेरे ग्रामा।
हुकम तिहारे चलिहौं स्वामी जीवन लगि विश्रामा ॥
पीपा नटा कही तुम जावहु मति कहुँ ऐसी करिये।
यवन नमन करि गमन कियो तब पीपा सियहिं उचरिये ॥15॥
देखा सीता ऐसा भीता उपजत पर धर माहीं।
अब जो यवन तोहिं ले जातो मेरो बल कछु नाहीं ॥
अबहूँ घर कूँ जाहु सयानी सुनि निर्भय सिय भाषी।
अजहुँ कहा डर पावत स्वामी हरि विश्वासहि नाखी ॥16॥
रघुवर सदा संग रखवारो राखी मोहिं न देखी।
तब पति कही सही दृढ़ तूँ ही हरि विश्वास विसेषी ॥
फिर दंपति आगे कूँ चाले चालत दुबटा आवा।
जानत ही सूधा मग छाड़ा बंके मारग जावा ॥17॥
जामें कंटक वृक्ष लता बहु डगर खबर नहिं पावै।
पीपा के मन तीव्र विरागा राम भरोसे जावै ॥

सीता को पग भागत काँटा झाँटा आँटा परई।
दृढ़ पतिव्रता जात पिय संगति कछू न मन दुख धरई ॥18॥
तिहि बन में इक सिंह रहाई दुसह अजय बटमारा।
ताकी तिया तबहि सिसु जाया लागी भूख अपारा ॥
सिंह पास तिहि सैन जताई मृगपति चल्यो सिकारा।
बास लेत पीपा के सनमुख आयो ताही बारा ॥19॥
निकट आय पीपा की छाया नाहर सीस परानी।
भूल्यो क्रोध तामसी मृगपति नमन भक्त पद ठानी ॥
पीपै मृगपति सिर कर धार्‌यो तिलक माल पहिरावा।
कीन्हो सिष विष टार्‌यो मन को सिक्षा मंत्र सुनावा ॥20॥
अब मति मारै मानुष सुरभी तोकूँ राम दुहाई।
और जीव की तुम ही जानो यहु मम सीख मनाई ॥
मानी सीख सिंह सिंहनि द्वौ व्यरथा हिंसा त्यागी।
समरथ गुरु अस पीपा स्वामी जिस मति हरि अनुरागी ॥21॥
जिस बस राम धाम सब जग को कहा सिंह की बाता।
जैसो पीपौ तैसी सीता निर्भय मन मग जाता ॥
ऐसे बिचरत दंपति हरिजन पावन करत जहाना।
ग्राम धनौरा पीपा जावा जहाँ विष्णु को थाना ॥22॥
सेषसायि की मूरति जामें सूरति पाक रहाई।
तापै भेंट करन कूँ पीपा रंगित छरी मँगाई ॥
पंच गंछका तबही आवा छरी भार तिन पासा।
उनपै माँगी हरि के लेखे किंवा मोलि प्रकासा ॥23॥
तोहू ते मूरख नट जावा हठा सठा नहिं मानी।
तितही बंश छरी की भारी धरी खरी हरि धानी ॥
ते मूरिख जल पीवन जावा हरिजन हुकम गमाई।
भार पास केऊ न रहाना पीपा कला दिखाई ॥24॥
बंश छरी के भारा सबही पीपै कर सूँ छीया।
कहि प्रभु भेंट लेहु अस स्मरण तीन बार जन कीया ॥
तबही हरित भये सब बंशा गंछनि आय निहारा।
हाथ अठारा बाँस बढ़ारा सब मन कौतुक धारा ॥25॥
गंछा डरपा सरपा दूरिहि लखि पीपा को परचा।
सबही ग्राम निरखि पीपा की ठानत महिमा अरचा ॥

भलो मंत्र तुम जानत स्वामी करूयो हरा सब बंशा।
जानी स्वामी जगत सकामी परचा करत प्रसंशा ॥26॥
साधु भाव नहिं जान तहाँ ते चले बड़ाई त्यागी।
अस बिचरत आँवा में जावा भक्त द्वार अनुरागी ॥
सो चींधर बोदी गुदराना पै सन्तनि कूँ सेवै।
अति रति ठानि सन्त हित तन धन तिया सहित सिर देवै ॥27॥
तिहि पीपा कूँ निरखि हरष करि आदर गृह बैठारा।
पै न अन्न तब तिय को लहँगो बेचि रसोई धारा ॥
जीरण सारी दिखत उघारी तब तिय कोठे गोई।
पीपौ सीता मरम न जानैं अदभुत चींधर दोई ॥28॥
सीधो दीधो अति श्रद्धा सूँ सीता करी रसोई।
भोग भयो पीपा कहि तासूँ आवहु असन करोई ॥
उन कहि पावहु पहिले तुम ही पीछे हमहु लिवाई।
पुनि पीपै हठ ठानि बुलावा तिय कूँ बोलि मँगाई ॥29॥
सीता जाय गेह में हेरी तिय कोठा में नाँगी।
देखि कही क्यूँ नाँगी तिय तब भणी सन्त अनुरागी ॥
की पूछी ओछी यहु बातहिं सन्त सेव मन भाई।
चलत गुदर ऐसेहि कबहुँ तन ढका उघारा बाई ॥30॥
सुनि चक्रित ह्वै सीता तबही आधा निज पट फारा।
दियो ताहि बाहर ले आई चहुँ मिलि कीन्ह अहारा ॥
निशि ते सूता बाहर भीतर पीपो सीता दोई।
बलताए लखि अदभुत चींधर रीति सराहत सोई ॥31॥
सीता कही स्वामि चींधर को दरिदर दूरि करीजे।
स्वामी कही नहीं धन मोपै तोपै है तो दीजे ॥
सिय कहि हुकम देहु प्रिय दीधा कीधा प्रात उपावा।
पर उपकार धारि मन सिय तब सुंदर रूप दिखावा ॥32॥
गनिका होय जाय खलहनि ढिग बैठी आपा मारा।
बड़ी सिद्ध सीता तन रचिया अदभुत रूप अपारा ॥
गोधूं शुद्ध करत हुत लोका धरि सब सिय पै आवा।
पूछी कौन कही सिय गनिका भरुवा पतिहिं बतावा ॥33॥
निरखि सिया कूँ सब नर लोभा छोभा मनहि गमारा।
मोहित भए सिया दृग रंजित लावत वित्तहि सारा ॥

गोधूँ लाय सिया ढिग धरई मण सत पंच बढ़ाना।
मुहर रुपइया पट भूषण सब धरत सिया ढिग आना ॥34॥
जो कर परसै ताहि सिया तिस माता रूप दिखाया।
पीपा दूरिहि देखि चोज कहि, धन्य धन्य मम दाया ॥
पुनि पीपा कूँ सिया बुलावा द्रव्य अन्न दिखलावा।
सो सब चींधर भक्त गेह कूँ पठयो मन सुख पावा ॥35॥
अस पर उपकृति सीता पीपौ जिनि हरि पद मन दीन्हा।
लोकलाज सब त्यागी हरि हित पर उपकारहिं कीन्हा ॥
ता पीछे टोडा में जावा रहत एक गृह सूना।
तामें रहा सिया जुत पीपा सुमरत राघव लूना ॥36॥
लोगनि दिन दस प्रति दिन सीधा दीधा कीधा पाका।
ता पीछे काहू दिन आवै जावै कबहू फाका ॥
पीपौ काहू जाचत नहिं अन हरि हित दीयो लेई।
एक बार दिन दोय व्यतीता भोजन हीन रहेई ॥37॥
तीसर दिन पीपौ गत न्हावे ताली तट धन देखा।
निसि सो बात कही सीता सूँ आज द्रव्य हम पेखा ॥
सौच काज मृद खोदत चरवा उघर्‌यो ताली पासा।
समी मूल ढिग ढँकि मैं तजिया हुत काहू को न्यासा ॥38॥
सिय कहि भली करी तजि आया अपने दाम न कामा।
राम प्रीति देवै सो लीजे तज्यो राज निज धामा ॥
तबही तहाँ चोर घर पीछै सुनत जेहि नृप चारा।
सिय पीपा तन सुनि धन जुत लखि नृप पठ्या हलकारा ॥39॥
ते लखि भूखे इनकूँ धन सुनि चाले तबहि तलाई।
देखा तत्र पात्र मृतिका को भीतर सरप भराई ॥
चोरनि जानी करी मसकरी मुड़िये अपनी भारी।
ताते तापै दीजे डारी चोरनि बात बिचारी ॥40॥
आए छानि उकासि डारि धन भागि गए हतभागी।
पर्‌यो मुहर जुत चरवा घर में भक्त भाग को सागी ॥
सीता कही कहा किन डारा दीपक जोय निहारी।
बिखरी मुहर पंच तोले की गणी सप्त सत सारी ॥41॥
सेर पंच ताँवे को चरवा गरवा दरवा हरि जी।
सिर सरजी गरजी बिन पाई पाई तरजी गरजी ॥

प्रात भये पीपै सन्तनि कूँ बोलि रसोई ठानी।
सो धन सबही पंच दिवस करि सन्तनि पायो जानी ॥42॥
करत अचंभा पुर नर नारी यहु धन कित सूँ लावा।
इतना भक्त बुलाय जिमावा ताको भेद न पावा ॥
वेई चोर आय पीपा पै सोई बात सुनाई।
आधी निसि स्वामी तव घर में पर्‌यो कहा कछु पाई ॥43॥
स्वामी कही लही मुहरनि कूँ ताकी यही रसोई।
चोर चरण लगि तब तिहि बातहि कही आदि ज्यों होई ॥
पुनि चोरनि राजा सूँ भाखा सोई बात अचंभा।
ग्राम नाम सुनि पीपा को नृप आयो दरस अथंभा ॥44॥
लग्यो चरण पीपा के सोई सूरजसेन नृपाला।
चरवा बोध सुनत नृप के मन उपजी प्रीति रसाला ॥
करी अरजि नृप निज सिष होबे तब पीपै यहु गाई।
मम सिष होबो बहुत कठिण मैं करिहूँ मो सो भाई ॥45॥
नृप कहि चाहो जैसो कीजे दीजे दिक्षा देवा।
पीपै कही लाव सब संपति सबही मोहिं चढ़ेवा ॥
अरु सब रानी दीजे मोंकूँ तब नृप घर कूँ जावा।
सब संपति आनी रानी सब पीपा चरण चढ़ावा ॥46॥
तब पीपै नृप कूँ दे दिक्षा सिक्षा मंत्र सुनाई।
रानी संपति पाछी दीन्हीं पुनि यहु सीख बताई ॥
मेरी जानि संपदा रानी राखो तुम ही पासा।
सन्तनि सूँ परदा मति करये तिय जुत करो उपासा ॥47॥
नृप कहि तुम ही राखो स्वामी तिय जुत माल तिहारा।
पीपै सोंसि दिवाय आपनी धन तिय नृप कर धारा ॥
तब नृप कछुक द्रव्य महिषी गो घोरा भेंट रखाई।
ले दिक्षा नृप गयो गेह निज गुरु की सेव कराई ॥48॥
सूरजसेन सुलंक्षी राजा सन्त सेव कूँ ठानै।
नाना साक पाक सनि मेवा असन बसन करि मानै ॥
भक्तिहीन नृप भ्रात कुटंबी ते पीपा सूँ लरई।
कहत हमारो भूप बिगारो मुड़िया नृप गृह फिरई ॥49॥
मंद भाग्य ते भक्ति अरुचि मन हरिजन सुखद न भावै।
पुरा पुन्य अघ अंत होनि बिनु यहु रुचि कैसे आवै ॥

नृप दत घोरा सब दे डारा पीपै एक रखावा।
सोऊ सहजहि गेह रहाई तिहि चढ़ि जावै न्हावा ॥50॥
आप न्हाय घोरा कूँ तित ही घास चरण तजि आवै।
सूनो बाजि चरै लोकनि के परे खेत कूँ खावै ॥
खायो खेत दोय दिन जाको तिहि यहु बात जनाई।
नृप के भ्रात दुष्ट सुनि पहुँचे तिनि हय बाँधि धराई ॥51॥
नहिं पीपा के हय को सोका सहजै बरतै सोई।
उन हय दियो न माँग्यो पीपै तब इक अदभुत होई॥
चारि कपाट दाट में घोरा बाँध्यो हरि उचकायो।
पीपा के घर बाँधा आनी काहू मरम न पायो ॥52॥
फिरि त्योंही हय खेतहि खायो फिरि त्योंही तिन बाँधा।
अति चौकस करि हय कूँ गाढ़ो समुझत नाहीं आँधा॥
फिरि हरि त्योंही हय कूँ आन्यो चारि दिवस लगि गोई।
पीछे हारि रहे नहीं बंधा पै उर बोध न होई ॥53॥
इक दिन निसि तसकर पुर आवा चारि जना पुर फिरिया।
कितहू घात लगी नहिं तिनकी तब पीपा घर सरिया॥
तहाँ न अटक पटक चौगाना निरखी महिषी झोटी।
हुती पचीस दूझती सबही घेरी तजी न खोटी ॥54॥
तब पीपै उठि पाड़ी छोरी घेरि संग तिनि लागा।
कही लेहु पाड़ी कूँ संगति दूध काज अनुरागा ॥
भगे चोर डरि स्वामी भाखत मति डरपो हौं पीपा।
सुनि तसकर बसचर ज्यों आवा पीपा चरण समीपा ॥55॥
पग लगि चोर कही हम चूका तुम्हरि भैंस न जानी।
कहि पीपा ले जावहु तुम ही दुस्कर चोरी ठानी ॥
चोरनि कहि प्रभु भैंस न लीजे और कछू फुरमावो।
पीपै कही करो हरि भक्तिहि नर तन अरथ लगावो ॥56॥

दोहा

तब चोरनि दिक्षा लई, धरि पीपा को बोध।
सन्त सेव ठानी सदा, भयो जड़नि मन सोध ॥57॥

इतिश्री मद्भक्तदामगुणचित्रणी टीकायां पीपा भक्त प्रभाव
वर्णनोनाम षटत्रिंशो रचनावृंद ॥36॥

अथ सप्तत्रिंशो रचनावृंद
चौपइया छंद

एक बार पर ग्राम महोच्छव पीपा न्योता जावा।
पाछे एक भक्त सीता पै आवा बचन सुनावा ॥
हौं चींधर सेवत सन्तनि कूँ गृह में परिजन भूखा।
ताते मोहिं कछू धन दीजे तुम हारण पर दूखा ॥1॥
तब ताकूँ सिय नृप दत महिषी घोरा सब दे डारा।
अरु सिय निज भूषण सब दीन्हा लीन्हा भक्त सिधारा ॥
ता पीछे पीपा जू आया सीता सो सब गाई।
सुनि पीपा कहि दियो भले धन हरि को हरिजन खाई ॥2॥
संपति दई सुनी नृप सूरज सिय कूँ भोली जानी।
सब धन दीयो भक्त एक कूँ फेरि धर्म किमि ठानी ॥
कृपण नृपति मन संका धारी गुरु तो वित्त लुटावै।
तब नृप मुख सूँ प्रीति न तोरै मन में दाय न आवै ॥3॥
धन सूँ टहल करै नहिं गुरु की वाचा राचा रहई।
पीपौ सीता बड़े उदारा सन्त सेव निरबहई ॥
कबहूँ बेचै थारी गड़वा कबहूँ बसन बिकाई।
आवै सन्त अनंत सबनि कूँ अति रति असन दिवाई ॥4॥
तब इक बनिक कही पीपा कूँ मोपै काढ़ो लीजे।
भक्तनि हित क्यूँ करो कलापहि लो धन उपजत दीजे ॥
दीन्ह रुपइया बनिक चारि सत साखी पत्र लिखावा।
गत षट मास बनिक धन माँगा पीपै धीर सुनावा ॥5॥
अब नहिं दाम भेंट जब आवै दैहों धीर रहीजे।
बनिया कनिया राखत नाहीं लरि पीपा सूँ खीजे ॥
तब पीपा कहि कब हम लीन्हा दीन्हा तुम कब दामा।
लावो साखी कागद लायो पंच नरनि में नामा ॥6॥
काढ्यो पत्र जत्र नहिं अक्षर हरी करी जन बानी।
भक्तपाल गोपाल विरद नित झूठी साँची ठानी ॥
सब पंचनि मुख झूठो भाख्यो बनिक भनिक मुख गोवा।
देखि खिसाना बनिकहि पीपा तब मन करुणा भोवा ॥7॥
कही लियो धन काढ़े याको अब हम सुमरण आवा।
क्यूँ रे बनिक होत अब तातो तुम ही पहिले गावा ॥

उपजत उपजत दीजो स्वामी आतुर मैं न करावा।
तू क्यों गर्व करे धन हरि को हरिजन भोग लगावा ॥8॥
तब सो साह स्वामि पद लाग्यो कहि तुम समरथ सन्ता।
मैं अस कला न लखी तिहारी धन मद करि दृग हंता ॥
तुम दयालु झट तोष पोषप्रद पुनि मम लाजहि राखी।
धन को तो कुछ नहिं अटकावा दुर्लभ साँची साखी ॥9॥
मिटा सोक बनिया सुख पाया छाँड़ी धन की आँटी।
पुनि पीपा कूँ भेंट चढ़ाई गेह बधाई बाँटी ॥
अस पीपा को सुजस बढ़ानो बनिकहि सबल हराया।
जास स्वभाव सरल उपकारी जोरत नहिं गृह माया ॥10॥
पुनि आयो पुर इक बनिजारो खैला मोलि लिवाई।
पूछत फिरत हथाई जाई जहि सूरज के भाई ॥
तिनि कहि जाहु भक्त पीपा के घर बहु खैला गाई।
चाहो जिता लेहु ताही पै पहिले दाम गहाई ॥11॥
बहकायो दुष्टनि बनजारो आयो पीपा गेहा।
कही मोल वृष दीजे स्वामी लीजे दाम हु एहा ॥
खैला गाय बहुत हैं तुमरे पुर के नरनि बतावा।
हँसे बचन सुनि पीपौ सीता याहि काहु डहकावा ॥12॥
तब बिचारि दंपति जन मिलि कै नाहीं हाँ हाँ ढारी।
सारी संपति हरि के गेहा नाहीं नाहिं उचारी ॥
हाँ हाँ कहत अनृत पुनि होई ताते मध्य निबहिये।
कहि पीपा सेवक बनिजारे केतक खैला चहिये ॥13॥
केतक दाम राम कूँ दैहो तब बनिजारा बोला।
चहत सप्त सत खैला लीजे दाम पला ते खोला ॥
साटी दिया सप्त सत रुपया लेकर पीपै भाखा।
खैला औरहि ठौर रहत है चरबे दूरिहि राखा ॥14॥
तीसर दिवस आय तुम लीजे जितने उनहि मँगावहिं।
मन में भावै तैसे रखिये ताछ ताछ के आवहिं ॥
बनिजारो गत तबही पीपै दाम बटाय मँगावा।
सीधा लीधा दीधा न्योंता जेमनि सन्त बुलावा ॥15॥
ताही दिन सो करी रसोई पुनि बनिजारौ आवा।
बैठे सन्त राम गुण गावत पीपै वचन सुनावा ॥

हे बनिजारा देखि सन्त सब खैला मेरे ऐसा।
लेहु चहै सो सोधि और नहिं मेरे गो वृष भैंसा ॥16॥
तब पीपा की वाणी सुनि करि नायक की मति सुलटी।
चरण लागि पीपा सूँ भाखी प्रभु मति मानहु उलटी ॥
मैं भूला लोकनि डहकाया तुम पै खैला चाहा।
भली करी मेरो धन खरच्यो सन्तनि के मुख वाहा ॥17॥
तुम हो सन्त बड़े उपकारी मैं जानत तव नामा।
गागरूण को राजा पीपौ तजि आए धन धामा ॥
औरहु टहल मोहिं फरमावो तब पीपै फुरमाई।
लावहु सेवक झट पट सुंदर दे सन्तनि पहिराई ॥18॥
तू बड़भाग धन्य धन तेरो सन्त प्रीति उपजानी।
तब बनिजारो झट पट लायो सुनि पीपा की बानी ॥
सन्त जिमाय दिये पट पहिरण लोकनि कौतुक देखा।
अस प्रताप समरथ पीपा को जाकी भक्ति विसेषा ॥19॥
एक बार पीपा पर ग्रामहि गयो महोच्छव होता।
पीछे ते गृह सन्त एक सत आए भूख उदोता ॥
सीता सोची कछू न घर में तब ऊधारै जाई।
बहु घर डोली कहूँ न मिलिया तब इक बनिक बुलाई ॥20॥
सो कामी कहि क्यूँ डोलत सिय कही चहत मम सीधा।
कही बनिक इक निसि तन दे तो ले तो सीधा दीधा ॥
राम दुहाई बचनबद्ध करि सिय सब सौजिहिं लाई।
करी रसोई भक्तनि जबही पावा पीपा आई ॥21॥
पूछी तिय सूँ पति सीधा हित तब सिय सत्य सुनावा।
इक निसि तन विक्रय करि लाई सुनि पीपा सुख पावा ॥
कही धन्य तिय तूँ उपकारी तन को गर्व निवारी।
दुख सुख अगण सन्त सब पोषत बढ़वत भक्ति हमारी ॥22॥
भई निसा तब सिय मंडन करि चली बनिक के गेहा।
तिहि अवसर निसि तम अति उमगा उमगा बरसत मेहा ॥
तब कहि पीपा अस कस चाली भीजहि पट पग कीचा।
बनिक न रीझहि हौं ले चालौं अस कीन्हो मन नीचा ॥23॥
कंध चढ़ाय उढ़ाय कंबली बनिया हाट उतारी।
पीपौ हाट ओट लुकि बैठो भीतर सिया पधारी ॥

मग हेरत हुत बनिया कामी देखि सिया कूँ जबही।
मदन अनल में सीत पर्यो घन ज्यों मति पलटी तबही ॥24॥
ज्यों हरिगंध लगत गज भागत त्यों बिट झषधुज भागा।
सीता चरण पर्यो उठि बनिया माता कहि अनुरागा ॥
बिन पट भीजे भीजे पग बिन कैसे आई माता।
सिय कहि स्वामी लाए कहि कित कही बहिर बिट जाता ॥25॥
निरखि स्वामि कूँ चरण लग्यो बिट कंपत तन मन भीया।
कहि स्वामी मति डरो करो मन इच्छा तुम धन दीया ॥
तब बिट लाज भार भर दृग झर करि विनती अस गावा।
प्रभु मैं भूलि गारि माता कूँ दीन्हीं ज्यों सिसु भावा ॥26॥
अब तुम मोहिं करहु सिष स्वामी बकसो चूक हमारा।
तब दे मोद बनिक कूँ पीपौ सिय जुत गेह सिधारा ॥
प्रातहि बनिक भेंट ले आयो भयो सिष्य पीपा को।
मार चार सो टारि मार पुनि गुरु सेवा करि पाको ॥27॥
ऐसी भक्ति करी पीपा जू मन अभिमान निवारा।
जथा धर्म गृह आश्रम नारद सप्तम माहिं उचारा ॥
धीर बीर समरथ बिन ऐसी कौन नरनि सूँ होई।
लोक लाज कुल कानि निवारै धारै ऐसी सोई ॥28॥
सुनहु और इक बार चारि नर कामी भेष बनावा।
माला तिलक चिलक करि तन पर पीपा के गृह आवा ॥
आदर करि पीपौ बैठारा ते बैठे तहँ बोला।
पीपा हम आसा करि तेरी आए तिय हित लोला ॥29॥
तुम उपकारी अरपत नारी सब सन्तनि के पासा।
अब हम ही कूँ दीजे नारी कीजे पूरण आसा ॥
तब पीपा जू जानि लिये ते आए स्वाँग बनाई।
तोहू आप धर्म नहिं छाँडा तिनकी गिरा मनाई ॥30॥
लीजे तिय तुम ही की दासी नाम हमारा धारा।
पीपै कहि सिय सूँ उठि प्यारी करो सेझ संचारा ॥
सीता भीतर जाय बिछाई सय्या मा गहिराई।
स्वामी उन सूँ कही जाहु गृह कीजे जो मन भाई ॥31॥
गयो तहाँ इक खरे तीनि जन सिंहनि भीतर देखी।
भक्त सती को धर्म राखिबे हरि दिखई हरि वेषी ॥

देखि भग्यो सो मिलि चारिहुँ ते पीपा सूँ कहि खीजा।
कपटी भक्ति करत हो पीपा ऐसे ही जग धीजा ॥32॥
तिय को मिस करि बाँधि सिंघनी गृह में मनुष मरावै।
तिनको धन ले भक्त जिमावत वे तेरो जस गावै ॥
ऐसे ही विख्यात भयो तूँ तब हँसि पीपा भाखी।
यहु तो खोट तिहारो है हरि आडी बाघनि राखी ॥33॥
हृदय तिहारे काम कलपना जाकरि सिंघनि दीसा।
मैं तो सुख हित तिया दई पै और ठई जगदीसा ॥
चलो दिखाऊँ कहाँ नाहरी गए कछू नहिं देखी।
सीता हूँ कूँ बैठी हेरी तब समुझे ठग वेषी ॥34॥
लगे चरण पीपा के चारी विनती करी क्षमावा।
हम अपराधी तुम पूरा जन मरम नहीं हम पावा ॥
दीजे दिक्षा हम करि सिक्षा तब पीपौ सिष कीन्हा।
मंत्र सुनाय भक्ति उपजाई तिन कपटहि तजि दीन्हा ॥35॥
सिय पीपा पद लगि ते जावा जग में जस विसतारा।
पुनि इक स्वामी भक्त मदनचर आयो पीपा द्वारा ॥
ताकूँ पीपा उठि आदर करि मिलि करि गृह बैठावा।
तिहि पीपा की प्रीति देखि करि लंपट बचन सुनावा ॥36॥
एक निसा पीपा तव नारी मोहिं रमण कूँ दीजे।
पीपा कही लेहु सुख करिये मेरी संक न कीजे ॥
पुनि सिय सूँ कहि एक निसा यहु भक्त कहै सो करियो।
पीपा निसि गृह रह्यो अचिंता सब हरि अर्पण धरियो ॥37॥
सिय सूँ भक्त कही मम संगति भागो भागी संगा।
सब निसि सिया चलाई मूरख नहिं जानत हरि रंगा ॥
प्रात भये नहिं चलत चलाई जाके पति की बाचा।
कामी करत लुरखरी चालहु जथा श्वान मत काँचा ॥38॥
सीता थकी तहाँ ई बैठी सो मुख बिलखा जावा।
तहाँ निकट इक ग्राम गयो सो जहाँ भक्त गृह आवा॥
हरि की कला तहाँ सिय देखी ताकूँ इन बतलाई।
भली भई तूँ आगे आई मेरे मन अति भाई ॥39॥
और लोक बैठे ते बोला तू कासूँ बतलावै।
हम कूँ इहाँ कछू नहिं दीसत तोहि कहा दिखलावै ॥

तबही सिया लोप ह्वै जाई सोइ औरहि घर जावा।
तित ही सिया प्रगट तिहि देखी फेरिहु तहाँ छिपावा ॥40॥
ऐसे घर घर सिय कूँ देखी जाचत अकलि गमाई।
फिरि सो मूढ़ सिया पै आयो जत्र गयो छिटकाई ॥
पर्‌यो चरण सीता के ढौरा जब सिर लकटी लागी।
कंपत तन मन निर्मल ह्वै कहि माता हौं सुत रागी ॥41॥
चलो मात पहुँचाऊँ तोकूँ तेरे स्वामी पासा।
सुद्ध भाव लखि सिय पथ ताके आई स्वामि निवासा ॥
पीपा के पद लग्यो भक्त सो विनती भाखि सुनाई।
लेहु स्वामि यहु तेरी नारी मेरी है यहु माई ॥42॥
पीपा मैं तव परचा देखा अब मम कुमति नसानी।
मन बच क्रम जो हरि सरणागत सब हरि अरपण ठानी ॥
ताकी वस्तु राम रखवारे ले अस है नहिं कोई।
तुम हो दंपति विष्णु पारषद भक्ति बढ़ावन लोई ॥43॥
मूढ़ लोक यहु भेद न जानत निंदा बंदा करई।
अस कहि भक्त रह्यो जब पीपौ बैठ भाखि आदरई ॥
रह्यो भक्त पीपा गृह कउ दिन धार्‌यो दृढ़ उपदेसा।
पीछै बिचर्‌यो करत बड़ाई पीपा की सब देसा ॥44॥
तब पीपौ सिय को पतिव्रत लखि लग्यो सिराहण नारी।
धन्य धन्य सिय तूँ गुणखानी हरि हरिजन कूँ प्यारी ॥
अति पतिव्रत पति गिरा निबाहत सुख दुख गणत न काई।
बिन पति अरति रहनि नहिं पतिव्रत पतिव्रत हुकम बहाई ॥45॥
ज्यों हरिचंद्र भूप के तारा दमयंती नल गेहा।
त्यों ही आजु हमारे देखी सीता पति गति नेहा ॥
पति गिर सुनि सीता सकुचानी बानी मधुर उचारी।
स्वामी ऐसी कहा कहत हौ हौं तो दासि तिहारी ॥46॥
मैं तव शरण सदा सुख पावत क्यूँ नहिं हुकम बहाई।
पै कुठि रत पति कूँ जो सेवै सो पतिव्रता कहाई ॥
वृद्ध बाल रोगी जड़ मूरख रूपहीन कुलहीना।
अंध काण पर तिय रत कोढ़ी अमली पौरुष क्षीना ॥47॥
बिन समरथ लापर सठ मूका अस पति रति करि सेवै।
अवगुण कछू न मन में धारै सो पतिव्रत पद लेवै ॥

अहो स्वामि तुम समरथ पति अति सब गुण कला निधाना।
मोकूँ मतै सराहौ प्रभु मैं तिया जाति मद खाना ॥48॥
विद्वत तियहि न मान चढ़ावै लघु मति तिय गरबाई।
अलप पिठर में जैसे तंदुल बहुत भरत उबकाई ॥
ढोल ढोर तिय मूरख सारा ए सब ताड़न जोगा।
बिन ताड़न रसदायक नाहीं कहत वेद अरु लोगा ॥49॥
अस तिय वचन सुनत पिय मोदा सतपति सततिय दोई।
औरहु कथा सुनो पीपा की समरथ गुरु है सोई ॥
सूरज नृप को भाव घटानो सुनि सीता की बाता।
सिष की प्रीति बढ़ावन धर्महिं पीपौ नृप गृह जाता ॥50॥
द्वारि रहे निज खबरि जनाई नृप कूँ द्वारप जावा।
नृप कहि पठई आवहु तुम ही हौं पूजा उरझावा ॥
सुनि पीपौ कहि झूठो राजा कपटी पूजा करई।
निज बैठो मोची गृह जूती जीन करन मन फिरई ॥51॥
यहु गुरु गिरा सुनी नृप दौरा पीपा के पग लागा।
कीन्ह दंडवत विनती मुख सूँ डरत जथा सर कागा ॥
स्वामी हौं चूका पूजा में आतुर मुहिम चलाना।
तातें मन मोची घर जावा लेन जीन पदत्राना ॥52॥
तुम प्रभु समरथ मन की जानत तुम सूँ कछू न छानी।
हम सिसु ज्यों तुम पिता क्षमा करि सिसु के अगुण अमानी ॥
सब गृह घर परिवार तिहारो बिन पूछे चलि आवौ।
हम तव दास मोल बिक जावैं जो तुम हाट बिकावौ ॥53॥
तुम निसंक मम गृह पग धारो तुम हम परदा नाहीं।
तुम गुरुदेव कृपा ही कीजो जो हम चूक कराहीं ॥
अस मुख बाचा भीतर काँचा पीपै जानि बखानी।
दिन द्वै पाक करन कूँ दीजे तेरी बंध्या रानी ॥54॥
मन ऊपरि सूँ कहि नृप लीजे तुम ही जाय बुलाई।
पीपौ गयो रावला माँहीं नृप मन संका आई ॥
चल्यो बरजबे नृप भीतर तब पीपौ नाहर होवा।
देखि भग्यो नृप आय सभा में फिरि पीपा कूँ जोवा ॥55॥
इत पीपा उत नाहर देखा अदभुत लखि नृप डरिया।
फिरि नृप डरत गयो रनिवासा और कला गुरु करिया ॥

बंध्या तिय ढिग बाल रूप धरि पीपा सयन करावा।
सूरज निरखि लग्यो गुरु चरणनि कंपत अस्तुति गावा ॥56॥
प्रभु तुम ईशदत्त शुक नारद कपिल भरत मुनि रूपा।
मैं मूरख तव कला न जानी परम मराल स्वरूपा ॥
हम समझत निज बुद्धि प्रमाणहिं तुम अगाध मति धीरा।
ज्यों सिसु कुमति करै ताहू पितु देय सुमति करि पीरा ॥57॥
तब पीपौ निज रूप प्रगट ह्वै नृपहि खीजि समझावा।
कहाँ गई उहि प्रीति तिहारी जब सिष होबे आवा ॥
तियनि सहित धन अरपि सन्त सूँ परदा तजि मन दीन्हा।
अब धरि श्रवण बात मूढ़नि की भक्ति भाव हत कीन्हा ॥58॥
जो गुरु विदुष अविदुष हु होवै तोहू गुरु हरि रूपा।
ऐसे लखि सिष करै वंदगी तजि सब अवगुण कूपा ॥
पच्छिम दिन की छाया ज्यों नित प्रीति करै अधिकाई।
टेक धरी न तजै ज्यों पाहन रेख सेष घर न्याई ॥59॥
अचल वाहला ज्यों न करै रति प्रथम पूर झट रीता।
अस समरथ गुरु पीपौ सिष कूँ बोध कर्यो पुनि प्रीता ॥
पीपौ गयो भूप फिरि तैसे करी प्रीति गुरु सेवा।
और सुनहु पीपौ गत न्हावा तित आयो भूदेवा ॥60॥
मगवह तो पीपा पै कहि मैं निर्धन दीजे दाना।
तबही तेली को सुत वृषभहि आयो नीर पिवाना ॥
ताके कर सूँ वृष रसना गहि द्विजहिं दियो पकराई।
गयो विप्र सो तेली सुत हूँ जाय पिता सूँ गाई ॥61॥
तेली जाय भूप सूँ भाखी वृष निज घर की बाता।
नृप कहि जाय स्वामि पै कहिये फिरि तूँ मोपै आता ॥
तोहि मोलि वृष मैं ले दैहौं उनपै उत्तर लहिये।
तब तेली पीपा पै आवा बहुत दीन ह्वै कहिये ॥62॥
प्रभु हौं अधन उधारा लायो वृषपति माँगत दामा।
परिजन भूखा नहिं देबे कूँ सो पकरत मम जामा ॥
पीपै कहि काहे कूँ कलपत वृषभ बँध्यो तव गेहा।
तेली गयो गेह तब हरि जी वृष रचि दीन्हो तेहा ॥63॥

गीतक छंद

वृष बन्यो तैसो रूप आकृति सदृस और न जानिये।

प्रभु भक्त बानी सत्य ठानी निरखि सो निज मानिये ॥

फिरि नाहिं तेली बात ऐली जगति सुजस बखानिये।
पीपा प्रताप अमाप को कवि करै सब गुण गानिये ॥64॥

इतिश्री मद्भक्तदामगुणचित्रनी टीकायां पीपा
भक्त प्रताप वर्णनोनाम सप्तत्रिंशो रचनावृंद ॥37॥

अथ अष्टत्रिंशो रचनावृंद
चौपइया छंद

एक दिवस पीपा के गेहा बहुला सन्त पधारा।
आदर करि स्वामी बैठारा गावत हरि गुण सारा ॥
तबही गुजरी दधि बेचन कूँ आई तत्र निसारा।
स्वामी कही दही दे हम कूँ मोलि लेहु मित धारा ॥1॥
गुजरी कही दुगानी तेरह मोल मथनिया सारी।
पीपै लियो कही जो आवै आज भेंट सब थारी॥
पियो दही हरिजन गुण गावत गुजरी बैठी ताहीं।
तबही तहाँ बनिक इक आयो बसतो तोड़ा माहीं ॥2॥
पीपा चरण कबूला मन सूँ ठानि गयो परदेशा।
फिरि आयो सो भेंट चढ़ाई पीपा चरण निवेशा ॥
पंच मुहर द्वै थान मिही पट कछु मोती कछु लुंगा।
खाँड चिरौंजी गिरी छुहारा कपूर केसरि पुंगा ॥3॥
करि दरसन बनिया गृह जावा स्वामी कहि सुनि बाई।
मोल दही को लीजे इतनी भेंट भाग तव आई ॥
गुजरी कही मोलि मित लेहुँ अधिको नाहिं छुवाई।
पीपा कही लेहु यहु सबही बचन हमारा जाई ॥4॥
हरिजी बचन सत्य मम कीन्हो तू मति झूठो पारै।
कहि गुजरी इतनो धन हमपै सुनै नृपति तो मारै ॥
स्वामी कही डरै मति तेरी हम जू भीर भराई।
मेरौ बचन मानि ले संपति दीजो सन्त जिमाई ॥5॥
तब मोती मोहर पट गुजरी ले अपने घर जावा।
दूसर दिन तिहि करी रसोई पीपा सन्त बुलावा ॥
दिक्षा ले हरिजननि जिमावा गुजरी भक्ति गहाई।
पीछे टहल करत पीपा की दूध दही पहुँचाई ॥6॥
एक विप्र देवी को भक्ता धन कुल करि अति भारी।

देवी हेत होम सो करई पाक रसोई धारी ॥
तिहि द्विज न्योता सब नर नारी न्योता भक्त न कोई।
सो पीपा पै न्योतन आयो पीपा मानि न सोई ॥7॥
द्विज हठ कीन्हो तब पीपा कहि तो हौं जेमन आऊँ।
सकल रसोई देवी पहली हरि कूँ भोग लगाऊँ ॥
द्विज कहि भले मानि तब पीपा ताके जेमन जावा।
पीपै तनक ठनक सब पाकहिं देवी पहलि मँगावा ॥8॥
बेदी माहिं बैठि हरिजी कूँ भोग लगाया पाया।
ता पीछे आहुति दे सबही द्विज नर नारि जिमाया ॥
निसि आधी देवी तिहि द्विज सूँ भूखी कहि बिललाई।
द्विज कहि सदा देत सो दीन्हो भोग अबहिं की खाई ॥9॥
देवी कहि पीपै हरिजी कूँ भोग लगायो जबही।
तबही मोकूँ मारि निकारी आय पारषद सबही ॥
द्विज पूछी तोसूँ ते सबला कहि देवी हाँ भाई।
तब द्विज विष्णु सुमरि कहि देवी हम तोकूँ छिटकाई ॥10॥
अब मैं सिष्य होहुँ पीपा को तब देवी उठि जावा।
भयो प्रात सिष भक्ति करी द्विज पायो सन्त प्रभावा ॥
और सुनहु पीपै इक बारा सीता सूँ यहु भाखी।
अब हूँ रमण एकलो जाऊँ सुख दुख देखो चाखी ॥11॥
गयो कोस दस पीपा तित कहुँ भक्तनि लियो पिछानी।
करि आदर अटकायो ग्रामहि भाष्यो सुजस बखानी ॥
लोकनि मान करी पीपा की चालत भेंट चढ़ाई।
सकटी भरि गोधू करि दीन्हा दीन्हा वृष निज पाई ॥12॥
बसन रुपइया चढ़या लीन्हा लीन्हा सारथि नाहीं।
आपुहिं हाँकि चले तोड़ा कूँ मिले चोर मग माँहीं ॥
चारि जना पीपाहि उतारा गाड़ी हाँकि लिवाई।
पीपौ चल्यो माग तब निज पै रुपया चीतैं आई ॥13॥
फिरि पाछो चोरनि पै आयो दिया रुपैया खोली।
कहि चूको पहिले नहिं दीन्हा जब तुम गाड़ी टोली ॥
सुनि यहु बाता कौतुक जाता तस्कर मन पलटावा।
पूछी कहो कहा निज नामा धामा कहाँ बसावा ॥14॥

पीपा कहि तुम ही सो जानो राम तुम हि मैं बसता।

हँसत चोर पग लगि स्वामी के अदभुत तेज प्रकासा ॥
करी वीनती तब स्वामी कहि पीपा नाम हमारा।
तोड़ै बसत भजौं भगवानहिं साधत पर उपकारा ॥15॥
निज पर ऊँच नीच नहिं जानौं हरि हित द्यो सिर काटी।
कही चोर हम भूला स्वामी मारी तुमसों बाटी ॥
चलौ गेह तुम कूँ पहुँचावैं चले आय पहुँचावा।
तिनि पीपा पै दिक्षा लीन्हीं चोर कसब छिटकावा ॥16॥
पुनि पीपा जू द्यौसे जावा जहाँ बसै श्रीरंगा।
तिहि पत्री दे बोलि पठाए सो काका गुरु अंगा ॥
सिय कूँ गृह तजि आप अकेला पहुँचे तिस घर जाई।
मानसि पूजा जबही श्रीरँग करत हुता चित लाई ॥17॥
पहिराई हरिजी कूँ माला रही करण अटकाई।
चित डोला जानी पीपाजी तासूँ भाषि सुनाई ॥
पूजा करत चित्त बस राखो इत उत मति डोलावो।
हरि के करण माल जो अटकी कंठ माहिं पहिरावो ॥18॥
तब श्रीरंग खोलि दृग देखा पीपा अग्र अमेला।
पूछी ताहि नाम की स्वामी तुम मम मन में खेला ॥
कित ते आवा तब कहि पीपा कहा पूछि सूँ कामा।
हरि को भेष पेख करि पूजो सबमें आतम रामा ॥19॥
हौं पीपौ टोड़ा सूँ आवा तब सो चरणनि लागा।
कही बीनती तुम हो समरथ समदृस हरि अनुरागा ॥
हम लघु मति अभेद नहिं जानत भेद भाव पहिचानी।
बिन पूछे कैसे करि लखिये लघु सम गुरु सहनानी ॥20॥
क्यूँ तुम मोकूँ खबरि दिये बिन आए ऐसे देवा।
फिरि जावो बागहि मैं आऊँ लाऊँ विधि करि सेवा ॥
पीपौ बाग गयो तब इनही बोला भक्त समाजा।
ताल मृदंग बजावत गावत कुंभ तियनि जुत साजा ॥21॥
मिले जाय बरताय मिठाई कुशल पूछि गृह लावा।
पीपौ घर घर न्योता जेमत मुद श्रीरंग बढ़ावा ॥
काका भतीज बैठि बाग में हरि चरचा करवाई।
द्वै कंडेरी छाँणा चुगती पीपा के ढिग आई ॥22॥
पीपै तिनहिं बोलि परिबोधी हरि की भक्ति सिखाई।

माला तिलक राम जप कीन्हा तब श्रीरंग कहाई ॥
स्वामी एहु नीच पर नारी कहा करत परबोधा।
तुम हो मोटा पै न बिचारा पात्र कुपात्र विसोधा ॥23॥
पीपा कहत पराया को है तूँ तन मोह भुलाना।
नयन मूँदि तोकूँ दिखलाऊँ अपना सकल जहाना ॥
तब श्रीरंग नयन निज मूँदा पीपै कला दिखारा।
पीपा सिय ढिग दोय सुता ते रूप पंच सत धारा ॥24॥
पीपौ तजत बाल तन तेई दौरत आवत संगा।
पुनि दृग खोल भतीजा तबही देखा अदभुत रंगा ॥
पर्‌यो चरण तब पीपौ भाषी यहु पूरब मम तनया।
अब मैं भक्ति दृढ़ाई इनकूँ संसृति पार गमनया ॥25॥
ऐसे पीपै संसय टार्‌यो लह्यो मोद श्रीरंगा।
तिय घर गई खिजी तिन सासू देखि तिलक स्रजि संगा ॥
ते दोऊ डरि बालद संगा तीरथ जात्रा जावा।
पुनि करि भक्त संग ते हरि गुण पठि तन सिद्ध बनावा ॥26॥
अरु पीपा जू विदा भए गृह आवत मग द्विज देखा।
सो रोवत बटमारनि लूटा पीपै पूछि अपेखा ॥
द्विज कहि बेटी ब्याह करन कूँ जाचि रुपइया लावा।
धन लूटा चोरनि अब मरिहूँ मैं सब काज गमावा ॥27॥
पीपौ कही मरै मति आवहु मो पथि द्रव्य दिवाऊँ।
पै तूँ भद्र होहु धरि माला तिलक दलक करवाऊँ ॥
द्विज कहि करो कर्‌यो वेष सो निज गृह आनि बिठावा।
तबही सूरजसेन दरस कूँ पीपा पास हि आवा ॥28॥
कहि पीपा नृप सूँ इनके पद प्रथम वंद पुनि मेरे।
काकागुरु यहु लगत हमारे मौनी सिद्ध बड़ेरे ॥
अब यहु मौन तजेंगे तीरथ जाय रसोई चहिये।
तब नृप तापै भेंट धर्‌यो धन कछु औरनि चढ़वहिये ॥29॥
लियो चाहतो भाव रखायो द्विजहिं स्वामि पहुँचावा।
अस पीपा जू पर उपकारी द्विज को सोक मिटावा ॥
ज्यों त्यों साधत परउपकारहि तासों राम रिझाई।
एक बार सिय सूँ कहि पीपा चलिये रमण कराई ॥30॥
जहाँ न कागूँ जान पिछानी मन विराग में धरिये।

सुख दुख दोऊ सम करि लेखे देखे चित्त लहरिये ॥
मिस करि पीपौ सीता चाले जहाँ विषम दिग ग्रामा।
एक नगर में गए दिवालै कीन्हो हरि गुण सामा ॥31॥
सुनि सब लोक दरस कूँ आए इन सूँ अति रति ठानी।
दिन द्वै रहे लोक बहु मानत द्विज गृह करी बसानी ॥
इनके भेंट चढ़ी द्विज देखी सो भूखा कहि जाचा।
पीपै ताहि भेंट सब दीन्हीं जिहि उपकारहि साँचा ॥32॥
आगे चले तहाँ ते ऊठा विकट जहाँ परवेसा।
एक ग्राम में धसिबे लागा मूढ़ नरनि तब खेसा ॥
ऊजड़ ग्राम बतायो जावो जहाँ मिलेगो भोजा।
इहाँ रहो तो गाठिहि खावो कियो मृषा अस चोजा ॥33॥
तब ते ऊजड़ ग्राम गए तहि बैठे हरि गुण गावा।
तिन ही मूढ़नि सन्त संन्यासी पीपा पास पठावा ॥
आए तिनको आदर कीन्हो पीपै दिए बिठाई।
तबही तहाँ विप्र इक आवा सो पीपाहिं कहाई ॥34॥
प्रभु मैं गो हति गंगा न्हायो ज्ञातिहिं देत रसोई।
बड़े विप्र ते चहत अकोरहि पंगति लेत न सोई॥
अब मैं धरौं तिहारो भेषा जो पंगति में लीजे।
पाक सौंज सब दही धर्‍यो है लाऊँ हुकमहिं कीजे ॥35॥
पीपौ कही लाव सब सूँजिहि तेरौ दोष गमाऊँ।
लायो सौंजि कही तब पीपौ संन्यासी सब आऊँ ॥
करो पाक कीन्हो तिन तबही पंगति बैठि जिमाई।
तितही तिहि द्विज के ज्ञाती द्विज ते मुख झाँखत आई ॥36॥
पीपै कही द्विजनि कूँ आवो तुम ही जेमो भइया।
द्विज कहि जेमन सत मूरति को सत अतीत जेमइया ॥
अब हमकूँ तुम कहाँ जिमावहु तब पीपौ पुनि भाखै।
जेमहु तुम सब गेह ग्राम जुत राम कजी नहिं राखै ॥37॥
तब सब गेह ग्राम जुत आए जेमाए सब स्वामी।
गौहण हूँ कूँ पंगति लीन्हो मेटी ताकी खामी ॥
अस पीपौ सब जग मंगलकर समरथ सब सुखदाई।
असी कोस तित ही सूरज के अनुचर पहुँचे आई ॥38॥
नृप की बिनती कहि पीपा कूँ [illegible] लोड़ै लावा।

नृप पग लागो कहि मति त्यागो मोकूँ इतहि रहावा ॥
आधी संपति फेरि चढ़ाई पीपौ सेवत सन्ता।
तबही बड़ो अकाल पराना जामें अन्न लुपंता ॥39॥
नृपहु तजे घोरा गो महिषी लुकि लुकि भोजन पावै।
पीपै सीता बड़े उदारा सबकूँ असन करावै ॥
पास हुतो सो तो धन खरच्यो नहिं तब सोचत सीता।
पग सूँ धर खोदत धन पायो घर ही चरू उनीता ॥40॥
सो खरचा पुनि मिटा दुकाला पुष्कर जात्री आवा।
ते पीपा पै खरची माँगत पीपौ बिट गृह जावा ॥
सो मूंजी पूंजी घर मुकती पीपौ लिये उधारा।
कागद माँहिं धर्‍यो पुनि स्वामी जात्री काज सुधारा ॥41॥
बनिक रुपइया दिन दस पीछे ईछे तब कहि पीपा।
धीरज रखो सनै करि दैहों नहिं धन मोर समीपा ॥
नहिं उपजहि तो पुण्य तिहारो हरि हित द्रव्य लगाना।
तब बिट मूढ़ चौहटै लरई पीपौ करज नटाना ॥42॥
बिट पंचनि में कागद लायो व्याज काढ़ अति मंडा।
कोरो कागज निकर्‍यो तबही सब लोकन में भंडा ॥
और सुनहु पीपा के इक दिन हरिजन द्वारे आवा।
अन्न नहीं तब गयो चौहटै पीपौ काहु चितावा ॥43॥
चालत दृष्टि परी तेलणि इक जुवा रूप धन माती।
पीपै ताहि कही जप रामहिं वृथा देह अस जाती ॥
सो तिय मूढ़ स्वामि कूँ भंडा मैं क्यूँ राम जपाई।
मृत भरतारी राम कहत हैं सती होन जब जाई ॥44॥
पीपै कहही उही होयगो मृत पति राम जपाई।
पीपौ गयो गयो मरि ताको पति तिय सत रति भाई ॥
तेलणि सती होनि गत मरहट तब पीपा हूँ जावा।
राम कहत तिय कूँ लखि भाखी अब क्यूँ राम कहावा ॥45॥
तब तो हम सो खीजत होती अब तो ध्यावत रामहिं।
तिय कहि जरतहि कहा जरावत ए सब तेरा कामहि ॥
पीपै कही सदा अस रामहिं ध्यावे तो पति ज्याऊँ।
मानि कही अस भजिहौं रामहिं लोकनि साखि दिवाऊँ ॥46॥
साखि दय तेली कूँ ज्यायो तेलनि भक्ति कराई।

ले पीपा पै सिक्षा दिक्षा पशु ज्यों लठि डरपाई ॥
सन्त कोप हू करत उधारहि मारहि दुर्जन प्रीता।
ज्यों जल उष्णहु अग्नि सिरावै सीतहु तेल ज्वलीता ॥47॥
एक बार हरि उच्छव न्योता पंच ग्राम में आवा।
पीपौ चल्यो महोच्छव कूँ तब सनमुख सन्त मिलावा ॥
सन्तन कहि हम दरसन आए तुम स्वामी कित जाई।
फिरि घर आयो मन में सोचा पोचा न्योत पराई ॥48॥
तब हरि भक्त मनोरथ साधा पीपा के तन धरिया।
गयो महोच्छव पंचहु माँहीं सब को मन मुद भरिया ॥
द्यौसा में सिष करी तिया ते तहाँ महोच्छव आई।
पीपौ को दरसन करि हरषी पुनि पीपौ मरि जाई ॥49॥
तहाँ क्रिया तिस सब मिलि ठानी ते सिष रोवत दोई।
कही चलें टोडै निज गुरु की तिय को दरसन होई ॥
चली माग में ग्राम महोच्छव तित हू पीपा मरिया।
निरखि तहाँ सो कौतुक आगे चली ग्राम पुनि अरिया ॥50॥
पीपा कूँ जालत ही देखा चतुरथ पंचम ग्रामा।
पंचहु ग्राम निकट मग होता सो ता किंचित वामा ॥
दूसर दिन तिय टोडै आई सिय पीपा कूँ देखा।
निरखि हरषि दोनहु पद वंदे कही पिछानि विसेषा ॥51॥
तबही सूरज दरसन आवा तिय मग बात जनाई।
जथा महोच्छव पंचहुँ माँहीं पीपा देह तजाई॥
राई रुकमी की सुनि बातहिं सब जन अचरज मानी।
तबही भक्त महोच्छव हूँ ते आए तिनहु बखानी ॥52॥
एकादशी दिवस इक बारा हरि के मंदिर पासा।
बैठो नृप सब जन पीपा हू होत कीरतन रासा ॥
तित उठि पीपै द्वौ कर मीड़ा राम राम मुख गावा।
तब सूरज नृप पूछी गुरु सूँ स्वामी कहा करावा ॥53॥
पीपै कही द्वारका माहीं आजु कीरतन होई।
लंगी चिराका हरि वितान गृह वितान प्रजर्‌यो सोई ॥
हम देखा कर लंब बुझाया राम कृंपा करि जाना।
यहु सुनि नृप बिन ज़ड़ नर सबही हँसि स्वामीहि बखाना ॥54॥
साधु होय की मृषा बदत अस [illegible] दूरि किमि दीसा।

पुरी द्वारका बदत इहाँ ते कोस चारि सत बीसा ॥
तब सूरज नृप खबरि मँगाई नफर द्वारका जावा।
जर्‍यो वितान देखि पंडा कूँ ताको भेद पुछावा ॥55॥
पंडा कही जागरण में निसिं सेष उनींदा लाई।
चूका चिराक लगी वितानहि प्रजर्‍यो नेकु तदाई ॥
पीपै भक्त आय टोड़ा सूँ झट पट मीझि बुझावा।
सुनि चौकस तिथि दिन घटि लिखवी नृपचर टोड़ै आवा ॥56॥
नृप पंचन में पत्र बँचावा अनुचर मुख सब गाई।
पीपा परचो भयो विख्याता मूढ़ नरनि मन आई ॥
ऐसे पीपा सकल विश्व में मंगल कीन्ह अपारा।
परस प्रनाली सरस बखानी सो पुनि सुनिये सारा ॥57॥

दोहा

श्रीगुरु रामानंद पै, सिय पीपा इक बार।
फिरि मग आवत सिष कर्‍यो, परस दास सुखकार ॥58॥

चौपाई

टोड़ो निकट ग्राम इक लसई। तहाँ परस मोसालहि बसई ॥
सूत्रधार तिस जाति रहाई। तिहीं ग्राम पीपा सिय आई ॥59॥
कुंभकार गृह लीन्हो बासा। जाके देखी भक्ति उपासा ॥
कुंभकार के आह्व चुणावा। तामें दुमी सरप धसि जावा ॥60॥
कुंभकार सुत आह्व प्रजारा। तासूँ जननी बचन उचारा ॥
पुत्र आह्व में दुमी धसानी। उहि तो जरि जेहै यहु जानी ॥61॥
यहु सुनि पीपौ करुणा धारी। राम मंत्र पठिकार उचारी ॥
आह्व माहिं अंजुलि जल डारा। हुतो परस तित चरित निहारा ॥62॥
पूछी परस अहो प्रभु एही। बचिहै कहा अग्नि जलितेही ॥
पीपै कही बचहि रे भाई। राम मंत्र है सकल सहाई ॥63॥
आह्व निकासै तब तू अइये। राम प्रतापहि प्रगट दिखइये ॥
ता पीछे जब आह्व निकासा। परसा देखन आयो पासा ॥64॥
आम पात्र इक आह्व रहाना। जामें जीवत दुमी बसाना ॥
जीवत ताहि देख तब परसा। सिष होबे मन उपजी तरसा ॥65॥
तब पीपा को सिष सो होई। करी भक्ति तिहि गुरु मत जोई ॥

भक्ति करत सो जग प्रगटाना। सुनहु परस हू परचा ठाना ॥66॥
तिय सुत हीन वृद्ध इक खाती। ताकूँ परस कही भल बाती ॥
हरित वृक्ष अब तुम मति काटहु। निबहो धर्म राम की बाटहु ॥67॥
तेरे नहिं कुटंब जंजाला। सूखे काठ घड़हु कर चाला ॥
नेम धर्‌यो नहिं वृक्ष कटाई। सुनि परसा तासूँ यहु गाई ॥68॥
जो कबहूँ तरु काटिहि भूला। तबही मार परहि प्रतिकूला ॥
पुनि कबहूँ सो दाम लुभाना। हरित वृक्ष को मूल निहाना ॥69॥
दोय उरग तरु में सूँ निसरा। ताकूँ डस्यो तहाँ ई पसरा ॥
यही बात तब परस सुनानी। काहू तुरतहि जाय बखानी ॥70॥
तबही परसा तित ही जावा। देखा खाती मृतक परावा ॥
तामें राम मंत्र जल डारा। जीवत भयो उरग विष टारा ॥71॥
कही परस पै बातहि खाती। हुकम चूक मैं पाई घाती ॥
तरु ते निकसि उरग द्वै लगिया। तज्यो न हौं बहु इत उत भगिया ॥72॥
ता पीछे परसा कूँ बानी। ऐसे हरि जी व्योम बखानी ॥
तेरे वचन याहि मैं मारा। तव अज्ञा तजि वृक्ष प्रहारा ॥73॥
तुम क्यूँ याकूँ फेरि जिवावा। क्यूँ मम जन गिर मृषा गमावा ॥
फिरि मति ऐसी कबहू कीजे। मानी परसा बचन भनीजे ॥74॥
प्रभु मैं ऐसी भेद न जाना। दया स्वभाव काज यहु ठाना ॥
ऐसो परस सरस हरि भक्ता। जिहि सिर पीपा गुरु की सक्ता ॥75॥

दोहा

अरु प्रभु बदले परस के, करी नृपति बेगारि।
धर्‌यो संध बिन रथ चरण, सो जस प्रगट प्रचारि ॥76॥
पिया पिवाया और कूँ, हरि रस पीपा नाम।
जिस जस केतुक सरस जग, ताहिं प्रणत सिसुराम ॥77॥

इतिश्री मद्भक्तदामगुणचित्रनी टीकायां पीपा भक्त
प्रभाव शिष्य वर्णनोनाम अष्टत्रिंशो रचनावृंद ॥38॥

सन्त धन्ना जाट

1. उपोद्घात : सन्त धन्ना के सम्बन्ध में लिखते समय प्रायः उनके जन्मसम्वत्, जन्मस्थान, गुरु व उनके जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना 'बिना बीज बोये ही खेत में अन्यों के खेतों से सवाई फसल उत्पन्न होने' की चर्चा होती रही है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रायः सभी विद्वानों ने सन्त धन्ना के बारे में कोई गंभीर छानबीन नहीं की है। बस, पूर्व लेखक का परवर्ती लेखक ने अंधानुकरण किया है। संभवतः यहाँ यह पहला अवसर होगा जब सन्त धन्ना पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जारहा है।

1. जन्मस्थान : सर्वप्रथम एम.ए. मैकालिफ ने सन्त धन्ना का जन्मस्थान टोंक व देवली के बीच पड़ने वाला गाँव 'धुवान' लिखा[1]। मैकालिफ ने यह भी लिखा कि धुवान गाँव देवली छावनी से 20 मील दूर है[2]। टोंक व देवली राजस्थान प्रान्त के शहर/कस्बे हैं। धन्ना पर लिखने वाले हर-एक लेखक ने मैकालिफ का ही अनुगमन किया है[3]। किसी ने 'धुवां' किसी ने 'धुवान' व किसी ने 'धुवन्न' भी लिखा है। जब हम टोंक से देवली की ओर जाते हैं तब सड़क पर 'धुवान' का बोर्ड लगा मिलता है। इसका तात्पर्य है कि गाँव का सही नाम 'धुवान' है। हमने गाँव के बारे में सही जानकारी करने के उद्देश्य से डॉ. अनिल जैन, जयपुर से चर्चा की तो उन्होंने अपने परिचित श्रीरमेश स्वामी (धंनावंशी जाट) से जानकारी कर मुझे बताया कि 'धुवान' नामक दो गाँव हैं, 'धुवान कला' व दूसरा 'धुवान खुर्द' दोनों पास-पास हैं। मैकालिफ ने ऐसा कोई संकेत नहीं दिया कि धन्ना का सम्बन्ध 'धुवान कला' से है अथवा 'धुवान खुर्द' से है। अतः यह तथ्य पुनः अन्वेषणीय बन जाता है। यहाँ यह लिखना भी आवश्यक है कि मैकालिफ ने अपनी जानकारी का कोई स्रोत अपनी उक्त पुस्तक में नहीं लिखा है कि उसको यह सूचना कहाँ से मिली।

जब हम अनंतदास वैष्णव कृत 'धन्ना की परचई' को पढ़ते हैं तब ज्ञात होता है कि धन्ना का जन्म व निवासस्थान धुवान न होकर खेरागढ़[4] है।

सन्त बालकराम रामस्नेही ने भक्तदामगुणचित्रणी टीका में 'खीरपुर'[5] नाम लिखा है जो खेरागढ़ का संस्कृत (तत्सम) नाम है। अतः हम मान सकते हैं कि खीरपुर व खेरागढ़ एक ही गाँव के नाम हैं।

छानबीन करने पर हमको ज्ञात हुआ कि धुवान से छः किलोमीटर की दूरी पर 'खरेड़ा'

नामक गाँव आज भी है। इस गाँव में यहाँ के ठाकुर का गढ़ भी है जिससे यह पक्का निश्चय होता है कि पूर्व में इसका नाम 'खेरागढ' ही रहा होगा। धीरे-धीरे प्रयत्नलाघव से 'खेरागढ' ही 'खरेड़ा' होगया। खरेड़ा में सर्वाधिक प्राचीन मंदिर सीतारामजी का है। एक जैन मंदिर भी है। धन्ना रामानन्द के शिष्य होने से प्रारंभिक अवस्था में अवश्य ही सीतारामोपासक रहे होंगे और यह सीतारामजी का मंदिर उन्हीं के द्वारा स्थापित रहा होगा। जैन मंदिर के होने से यह संकेत भी मिलता है कि यह कस्बा व्यापार-व्यवसाय का भी केन्द्र रहा होगा जहाँ की जनता संपन्न जीवन जीती रही होगी। श्रीसीतारामजी का मंदिर लगभग छः सौ वर्ष प्राचीन बताया जाता है। इस गाँव में आज भी धंनावंशी जाटों का बाहुल्य है। इसी गाँव के काँकड़ में 'धंना की पाटी' के नाम से प्रसिद्ध वह 12 बीघा का खेत भी है जिसमें बिना बीज बोये ही गेहूँ उग गये थे[6]। 'धुवान', 'खरेड़ा' आदि गाँवों के जाट अब भी अपने आपको धन्नावंशी मानते व कहते हैं तथा अपने नाम के साथ 'स्वामी' लिखते हैं। ध्यातव्य है, सन्त धन्ना स्वामी[7] कहलाते थे। अनंतदास वैष्णव ने सन्त धन्ना को जगह-जगह स्वामी लिखा है।

ऊपर के विवेचन से हमारा निष्कर्ष है कि धुवान के पक्ष में मैकालिफ के प्रमाण अथवा स्रोतसामग्री विहीन कथन से पूर्व का कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। अतः इसको सबल व पुष्ट प्रमाणों के अभाव में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत, खेरागढ़=खरेड़ा के सम्बन्ध में दो प्राचीन उल्लेख (1) अनन्तदास कृत धन्ना की परचई व (2) बालकराम कृत भक्तदामगुणचित्रणी टीका उपलब्ध हैं। खरेड़ा में उपलब्ध सीतारामजी का प्राचीन मंदिर व इस गाँव के जंगल में प्राप्त 'धंनाभगत की पाटी' परचई व भक्तदामगुणचित्रणी टीका की जानकारी को सत्य सिद्ध करने में परम सहायक हैं। अतः हमारा निष्कर्ष खेरागढ़-खरेड़ा के पक्ष में ही है।

अनंतदास कृत नामदेव की परचई सम्वत् 1645 की रचना है[8]। उधर बालकरामजी ने भक्तदामगुणचित्रणी टीका सम्वत् 1833 में लिखी है[9]। ये दोनों ही सन्त-भक्त-चरित्र-लेखक व गायक थे। इन्होंने अनेक स्थानों की यात्राएँ की थीं। अनंतदास ने इसीलिये लिखा है कि उसने एक ही तथ्य को जब बीस-बीस[10] व्यक्तियों से एकसमान सुना तबही उसको सत्य मानकर परचई में उल्लिखित किया है। ऐसी स्थिति में अनंतदास की सूचनाएँ निर्भरता योग्य मानी जानी चाहिए।

उत्तरभारत विशेषकर अवध व ब्रज में भक्तमालियों की सुदृढ़ परम्परा रही है। बालकरामजी की गुरुपरम्परा नाभाजी से जाकर मिलती है। बहुत संभव है, इन्होंने भक्तमाल का अध्ययन नाभाजी के शिष्य गोविन्दास[11] भक्तमाली से किया हो। वैष्णवदास[12] भी बालकरामजी के समकालीन ही रहे हैं। उनसे भी इनका संपर्क रहा होगा, इस संभावना को नकारा नहीं जा सकता। वैष्णवदास भी अपने समय के

उच्चकोटि के भक्तमाली थे और उन्होंने भक्तमाल की टीका लिखी है। अतः बालकरामजी की सूचना परम्परागतश्रुत कथनाधारित होने से प्रामाणिक ही है। भेड़ीधसानन्यायानुसार बिना सोचे समझे अंधानुकरण करने वाले तथाकथित शोधकों, विद्वानों, लेखकों से निवेदन है कि वे तटस्थभाव से विचारकर धन्ना के जन्मस्थान के रूप में 'धुवान' के स्थान पर 'खेरागढ़' जिसका अब प्रचलित नाम 'खरेड़ा' है को मान्यता प्रदान करें।

2. जन्मसम्वत् : सन्त धन्ना का जन्मवर्ष मैकालिफ[13] ने ईस्वी सन् 1415 अर्थात् विक्रमसम्वत् 1472 माना है किन्तु अपनी इस मान्यता के समर्थन में उन्होंने कोई जानकारी उपलब्ध नहीं कराई है। मैकालिफ यह भी लिखता है कि धन्ना ने बनारस जाकर स्वामी रामानन्द से दीक्षा प्राप्त की। अनंतदास वैष्णव अपनी कृति परचई के अंत में धन्ना को रामानन्दाचार्य का शिष्य लिखता है।[14] भक्तदामगुणचित्रणी[15] टीका व भक्तिरसबोधनी[16] टीका में भी धन्ना को श्रीरामानन्द का शिष्य ही लिखा मिलता है। उधर, दादूपंथी चतुरदास ने भी राघवदास[17] के भक्तमाल की टीका में धन्ना के गुरु का नाम रामानंद ही बताया है।

रामानंद-सम्प्रदाय में यह धारणा दृढ़ता से प्रचलित है कि रामानंद के प्रधान बारह शिष्यों में धंना भी थे।[18] नारायणदास नाभा ने भी इसीलिये इन द्वादशशिष्यों में सन्त धन्ना का नाम गिनाया है। उपर्युक्त प्राचीन साक्ष्यों के आधार पर सन्त धन्ना को रामानंद का ही शिष्य मानना समीचीन है। धन्ना का समय ऐसी स्थिति में रामानन्द के समय के आधार पर निश्चित किया जा सकता है।

स्वामी रामानंद का समय अगस्त्यसंहिता के आधार पर अनेक विद्वानों ने विक्रमसम्वत् 1356 से 1467 तक निश्चित किया है।[19] कबीर का रोजा मगहर में बिजलीखाँ ने वि.सं. 1507 में निर्मित कराया।[20] अतः कबीर का समय 1425 से 1505 विक्रमसम्वत् मानना ही उपयुक्त है।[21] गागरोनगढ़ के राजर्षि पीपा का समय अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर वि.सं. 1390 से 1470 मैंने अपनी पुस्तक रैदास की परचई व इसी पुस्तक के दूसरे अध्याय 'राजर्षि पीपा गागरोनी' में सिद्ध किया है।[22] रैदास वि.सं. 1433 में जन्मे थे।[23] सन्त सैन का समय वि.सं. 1425 से 1515 तक मैंने अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों से अपने लेख 'सन्त सेन और उनकी रचनाएँ' जो 'सूफी-सन्त-सौरभ' नामक मेरी पुस्तक में प्रकाशित हुआ है, में सिद्ध किया है।[24] धन्ना का पदांक 5 कबीर, रैदास, नामदेव व सैन का उल्लेख करता है[25], साथ ही धन्ना इस पद में यह भी कहता है कि इनकी भक्ति की बातें सुनकर ही मुझ जाटजाति के धन्ना के मन में भी भगवद्भक्ति करने की इच्छा उत्पन्न हुई।[26] पद में प्रयुक्त क्रियाएँ नामदेव को छोड़कर वर्तमानकालिक हैं। इससे अनुमान लगाना

अत्यधिक सरल है कि धन्ना, कबीर, रैदास व सैन हैं तो समकालीन किन्तु उक्त तीनों सन्त धन्ना के अग्रज हैं जिन्होंने भक्ति करके भक्तिपताका को धन्ना के भक्त बनने के पूर्व ही फहरा रखी थी। धन्ना ने इनसे प्रेरणा प्राप्त कर भगवद्भक्ति की। ऊपर के विवेचन से यह माना जा सकता है कि धन्ना स्वामी रामानंद के अन्तिमकाल का शिष्य था। अतः धन्ना का दीक्षाकाल वि.सं. 1455 से 1460 के बीच माना जा सकता है। यदि धंना ने 20 वर्ष की उम्र में भी दीक्षा ली हो तो धन्ना का जन्म वि.सं. 1435 से 1440 माना जा सकता है। हमे यह समय 1440 व 1460 मान लेना चाहिये। निधनवर्ष 1520 से 1525 तक माना जा सकता है।

इस कालावधि को मानने से धन्ना, कबीर, रैदास, सैन आदि का समकालीन व स्वामी रामानन्द का शिष्य होना सिद्ध हो जाता है। वस्तुतः सच बात है भी यही कि धन्ना स्वामी रामानंद का शिष्य था।

आज भी धन्नावंशी जाट रामानन्द-सम्प्रदाय से जुड़े हुए हैं। उनकी मान्यता है कि धन्ना भगवान् सीताराम का उपासक, रामानन्द स्वामी का शिष्य तथा गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी स्वामी कहलाता था। इसीकारण अब भी अनेक जाट अपने नाम के साथ 'स्वामी' शब्द का प्रयोग करते हैं।

3. जाति : स्वयं धन्ना ने अपने आपको जाट[27] कहा है। देखें पदांक तीन व पदांक पाँच। भक्तमाल, परचई, भक्तमाल की टीकाएँ व अन्य अनेक समकालीन और परवर्तीकालीन सन्तों, भक्तों, लेखकों, कवियों ने भी धन्ना को जाट ही लिखा है। अतः इस सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है। आधुनिक समीक्षकों ने भी धन्ना की जाति जाट ही लिखी है।

4. गुरुपरम्परा : आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने धन्ना का, स्वामी रामानन्द का शिष्य होने में संदेह व्यक्त किया है।[28] उन्होंने मैकालिफ के आधारहीन जन्मवर्ष को ही धन्ना का जन्मकाल माना है।[29] अतः रामानन्द के काल (1356-1467) से मेल न खाने के कारण उन्होंने दोनों को समकालीन व गुरु शिष्य मानने में शंका व्यक्त की है किन्तु ऊपर हमने स्वयं धन्ना के पद से ही धन्ना को कबीर, रैदास व सैन का समकालीन, स्वामी रामानंद का शिष्य सिद्ध किया है। ऐसी स्थिति में धन्ना, रामानन्द का शिष्य कालिक प्रमाणानुसार भी सिद्ध होता है। भक्तमाल, परचई आदि प्राचीन स्रोतों के साथ-साथ धन्नावंशी जाट भी स्वामी रामानंद को ही धन्ना का गुरु मानते हैं।

5. जीवन की विशेष घटनाएँ[30] : धन्ना के पिता कृषक होकर भी ब्राह्मण, गौ, गंगा, ठाकुरजी आदि का भक्त था। एकबार इसके घर कुलगुरु ब्राह्मण का पधारना हुआ। वह शालग्राम भगवान् की बटिया अपने पास यात्रा-प्रवास में रखता था तथा उसकी

सेवापूजा करता था। बालक धन्ना ने जब ब्राह्मण को पूजा करते देखा तब उसके मन में भी पूजा करने की इच्छा जाग्रत हो उठी और उसने ब्राह्मण से वह मूर्ति माँगली। ब्राह्मण ने शालग्राम की बटिया देते हुए कहा, पहले इनकी पूजा करना। फिर भोग लगाना। तत्पश्चात् स्वयं भोजन करना। पूजा प्रतिदिन करना। व्यतिक्रम न हो, इसका पूरा-पूरा ध्यान रखना।

धन्ना ने शालग्राम की पूजा की और भोग लगाया किन्तु भगवान् ने भोजन नहीं किया। धन्ना ने सोचा, भगवान् को ब्राह्मण की याद आती होगी। इसलिये भोजन नहीं कर रहे हैं किन्तु भगवान् को तो भोजन करना ही होगा क्योंकि अब इन्हें मेरे पास ही रहना है।

धन्ना तीन दिन तक भूखा-प्यासा रहकर प्रतीक्षा करता रहा कि कब भगवान् प्रसाद पाएँ और कब वह भी भोजन करे। भगवान् ने सोचा, तीन दिन होगए हैं। भोजन नहीं करूँगा तो यह भी भोजन नहीं करेगा। अंततः भूख से मर जायेगा। भक्त का दुख असह्य है। अतः मुझे भोजन कर लेना चाहिए। भगवान् ने प्रत्यक्ष होकर भोजन किया।

धन्ना प्रतिदिन गाय चराने जंगल में जाता था। वहीं भगवान् प्रकट होते। धन्ना के भोजन में से आधा खाते। आधा प्रसाद रूप में धन्ना को छोड़ देते। यह क्रम एक वर्ष तक चलता रहा।

अगले वर्ष कुलगुरु पुनः आया। उसने पूजा आदि के बारे में धन्ना से पूछा। तब धन्ना ने बताया, भगवान् प्रतिदिन भोजन करने तो उसके पास आते ही हैं, उसकी एवज में गायें भी चरा लाते हैं। कुलगुरु ने भगवान् को भोजन करते व गायें चराते दिखा देने का धन्ना से आग्रह किया। धन्ना कुलगुरु को जंगल में लेजाकर भगवान् का दर्शन कराने लगा किन्तु कुलगुरु को दर्शन नहीं हुआ। कुलगुरु ने गंभीर विचार किया और अपने कुलगुरुत्व को त्यागकर भगवद्विरह व प्रेम में उन्मत्त होकर भगवद्दर्शन केलिये लालायित होउठा। धन्ना की कीर्ति चतुदिक् में फैल गई। सभी उसको परम-भगवद्भक्त मानने लगे। श्रीहरि ने धन्ना से कहा, तुम मेरे भक्त हो, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है किन्तु तुमने अभीतक गुरु धारण नहीं किया है। गुरु धारण करना अनिवार्य है। अतः तत्काल तुम काशी चले जाओ और भक्तिस्वरूप रामानन्दस्वामी का शिष्यत्व ग्रहण करो। धन्ना ने हरि-आज्ञा का पालन कर रामानंद स्वामी को गुरु धारण किया।

खेरागढ़ में आकर धन्ना श्रीहरि एवं श्रीहरिजनों की सेवा तन-मन-धन से करने लगा। एकबार सन्तों का समूह गाँव में आया। धन्ना खेत में बीज बोने जारहा था। सन्तों को भूखा जान, धन्ना ने सारा अनाज सन्तों को दे दिया। पिता को धन्ना की करतूत का पता

लगा तो धन्ना ने उत्तर दिया, बीज घुन लगा हुआ था। काम का नहीं था। वही सन्तों को दिया है। बोने के लिए अच्छा बीज मेरे पास है, मैं बो दूँगा। चिन्ता नहीं करें।

हाली को बुलाकर धन्ना ने खेत में हल फिरवा दिया किन्तु बीज नहीं ओरा। ओरता तो तब, जब बीज होता। हाली व हालन को धन्ना की करतूत का पता चल गया। हालन ने कहा, बिना बीज के ही तूने हल फिरवाया है। अन्न कहाँ से होगा। हमको व अपने माता-पिता को बीज ओरने का नाटक कर ठग रहा है। जब हाली-हालन ज्यादा ही बड़बड़ाने लगे, तब धन्ना की पत्नी ने कहा, तुम्हें अपने हिस्से के अनाज से मतलब रखना चाहिये। इससे नहीं कि खेत में बीज बोया गया है अथवा नहीं। फसल होगी कि नहीं। धन्ना की पत्नी के द्वारा दिये गये आश्वासन से भी हाली-हालन सन्तुष्ट नहीं हुए। वे बड़बड़ाते हुए अपने घर को चले गये। हाली-हालन के बड़बड़ाने से धन्ना के माता-पिता को भी सचाई का पता चल गया। उन्होंने धन्ना से सचाई बताने को कहा। धन्ना ने भगवद्विश्वास बनाए रखने का आग्रह किया और स्वयं भगवान् से प्रार्थना करने में जुट गया। भगवद्कृपा से पाँचवें दिन खेत में बीज उगने प्रारम्भ होगए। सभी चर्चा करने लगे। धन्ना के खेत में पड़ौसियों के खेत से सवाया अन्न उत्पन्न हुआ। सभी ने धन्ना की जय-जयकार की। धन्ना व धन्ना की पत्नी एकान्ततः हरि व हरिजनों की सेवा में तन-मन-धन से संलग्न होगये। समय पाकर धन्ना के माता पिता स्वर्गवासी होगये।

बहुत समय पश्चात् एक घटना और घटी। धन्ना का हाली फसल तैयार होने पर अनाज बैलगाडी में भरकर गाँव में लारहा था। रास्ते में ही भूखे-प्यासे सन्त आगये। धन्ना ने सभी को एक-एक तूंबा भरकर अन्न देदिया। इससे धन्ना का हाली नाराज़ होगया। अपना हिस्सा लेकर यह कहते हुए चला गया कि अब मैं तुम्हारे खेत में काम नहीं करूँगा। संयोग से इसी वर्ष बीज बोने के समय धन्ना के पैरों में भयंकर पीड़ा होगई। परिणामतः वह खेत में बीज नहीं बोसका।

कुछ ही दिनों में खेत में अपने-आप तूंबे उगने लगे। सारे खेत में तूंबे ही तूंबे होगये। हाली व गाँव के लोग मज़ाक करने लगे कि अबकी बार धन्ना तूबों की रोटी खायेगा। देखो! मैंने धन्ना केलिए खेती नहीं की तो खेती हुई ही नहीं। हाली के इन व्यंग वचनों को सुनकर भी धन्ना का मन निश्चल बना रहा। भगवद्विश्वासी बना रहा। कार्तिक मास तक समस्त तूंबे पककर तैयार होगये। इधर धन्ना का पाँव भी ठीक होगया। वह खेत पर गया और तूंबों को इस भावना से देखने लगा कि ये सन्त महात्माओं को भेंट करने में काम आयेंगे।

धन्ना ने एक तूंबे को तोड़कर उसका मुँह बनाया तो उसमें अनाज भरा हुआ निकला। धन्ना ने देखा कि सभी तूंबों में अन्न भरा हुआ है। सभी को बैलगाडी में भरकर धन्ना

दरबार=ठाकुर के पास लेगया और कहने लगा, खेत में मैंने कुछ बोया नहीं। बिना बोये ही अन्न उग आया है। अतः यह मेरा न होकर दरबार का है।

दरबार ने कहा, आप भगवद्भक्त हैं। भगवान् ने ही आपकी सहायतार्थ यह सब कुछ किया है। अतः इस अन्न पर आपका ही अधिकार है।

धन्ना भगवद्कृपा समझकर अन्न को घर ले आया। भगवान् की भक्ति में लीन रहने लगा। चारों ओर उसकी कीर्ति फैल गई।

6. रचनाएँ : धन्ना जाट के कुल आठ पद व सात साखियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। पदांक एक, दो व 7 ग्रंथांक 496 के आधार पर, पदांक तीन ग्रंथांक 561 के आधार पर, पदांक 4, 5 व 6 गुरुग्रंथ के आधार पर व पदांक आठ प्रकाशित पुस्तक 'प्राचीन राजस्थानी-गीत' के आधार पर प्रस्तुत किये गये हैं। साखियाँ ग्रंथांक 67 के आधार पर प्रस्तुत की गई हैं। गुणगंजनामा में मात्र एक चौथे क्रमांक की साखी मिली है। पदांक एक का पाठ सर्वाधिक प्रतियों में मिला है।

पदांक दो के आधार पर ही कहने का साहस किया जा सकता है कि धन्ना निर्गुणधारा के सन्त थे। शेष सभी पदों के विषय ऐसे हैं, जो दोनों धाराओं के रचनाकारों की रचनाओं में मिल जाते हैं। पदांक आठ में चारणी शैली प्रयुक्त हुई है जिसमें 'वैणसगाई' का सफल निर्वाह हुआ है। शब्दावली भी चारणों द्वारा प्रयुक्त शब्दावली के सन्निकट है 'त्रोडतो' 'म' आदि। धन्ना के अन्य पदों में ऐसे प्रयोग नहीं हैं। अन्य राजस्थानी-निर्गुणी-सन्तों ने भी ऐसे प्रयोग नहीं के बराबर किये हैं। साखी क्रमांक एक धन्ना के जीवन में घटी घटना का विवरण अप्रत्यक्ष रूप में देती है जिससे जानने में आता है कि परचई, भक्तमाल आदि में धन्ना के सम्बन्ध में कही गई बात सर्वथा सत्य है।

धन्ना का पहला पद बडा ही मार्मिक व झकझोरने वाला है, विशेषकर समकालीन मानवों को जिनके पास सन्तोष नाम की चीज़ नहीं है। क्षण, घड़ी, प्रहर, रात्रि, दिवस मनुष्य-मन और से और पाने को ही लालायित रहता है। न स्वयं स्थिर है और न उनके द्वारा इच्छित सांसारिक धन, ऐश्वर्यादि शाश्वत् हैं फिरभी उन्हीं के सम्पादन, भोग एवं रक्षण में लगा रहता है। धन्ना का स्पष्ट कहना है कि चाहे मनुष्य खण्ड, ब्रह्माण्ड कहीं भी घूमे, किन्तु वहाँ भी उसे उतना ही मिलेगा जितना मिलना है। अतः वे कहते हैं—

हे चित्त! मन!! दीनदयाल का चिन्तन कर। हरि के अतिरिक्त जीव का सहायक, भरणपोषण करने वाला और कोई नहीं है। यदि तू सांसारिक-भोगविलासों केलिये खंड-ब्रह्मांड तक में जायेगा तबभी तुझे वही मिलेगा जो कर्ता स्वरूप परब्रह्म तुझे देगा क्योंकि वह कुर्तं-अकर्तुं-अन्यथा-कर्तुं-समर्थ है। होगा वही, मिलेगा वही, जो वह चाहेगा अथवा देगा। अतः उसका स्मरण करके उसकी प्रीति का सम्पादन कर जिससे

कि वह तुझे वह सब कुछ देदे जिसको तू प्राप्त करना चाहता है।

सन्त धन्ना अपने उक्त विश्वास व विचार को अनेक उदाहरणों के द्वारा पुष्ट करते हुए कहते हैं—परब्रह्म-परमात्मा इतना भारी समर्थ, दयालु व सुव्यवस्थापक है कि माँ के उदर में मात्र एक बूंद जल (वीर्य) के द्वारा दस द्वारों वाले नायाब शरीर का निर्माण कर देता है। इतना ही नहीं, जठराग्नि में जलने नहीं देता। जीव को आधार प्रदान करता है।

मादा क्रोंच अपने अंडे को समुद्र के किनारे मिट्टी में दबा देती है। वहाँ न पीने को दूध होता है और न दूध प्राप्त्यर्थ यत्रतत्र आने-जाने को पंख होते हैं। फिरभी, परमानंद परमेश्वर पयोधर रूप बनकर उन अण्डों का वहाँ भी पोषण करता है। वस्तुतः मादा क्रौंच अण्डों को मिट्टी में दबाकर दूर चली जाती है किन्तु उसका चित्त सदैव उन अंडों का ही चिंतन करता रहता है। उसका यह चिंतन ही उन अंडों का पोषण करता है जिससे समय पाकर वे फूट जाते हैं और उनमें से क्रौंच-शावकों का आगमन होता है। मादा क्रौंच का यह अहर्निशचिंतन उस दयालु समर्थ परमात्मा की कृपा का ही फल है।

पहाड़ के पत्थरों के अन्दर कीटादि रहते हैं। वहाँ आने-जाने केलिये कोई मार्ग नहीं होता। फिरभी हरि उन जीवों को खाने-पीने की सामग्री प्रदान कर जीवित रखता है। हे जीव! जब सर्वसमर्थ परमात्मा ठोस पत्थर में रहने वाले कीटादि की सर्वविधि व्यवस्था करता है, तब तेरी भी वह व्यवस्था अवश्य ही करेगा, इसमें शंका केलिए कोई स्थान नहीं है। फिरभी तूँ क्यों चिंता करता है। परमात्मा पर सुदृढ़ विश्वास रख। वह तेरी सर्वविधि रक्षा, सुरक्षा करेगा। क्योंकि भगवान् ने गीता में कहा है—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पुर्यपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्"

-श्रीमद्भगवद्गीता 9/22

जो अन्यन्यचित्त होकर मेरी उपासना करते हैं उन सततरूपेण मेरे में अनुरक्त चित्तवालों का मैं योग एवं क्षेम का वहन करता हूँ।

सन्त दादू ने भी अपने एक पद में ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं—

पूरी रह्मा परमेश्वर मेरा। अणमांग्या देवै बहुतेरा ॥
सिरजनहार सहज में देइ। तौ काहे धाइ माँगि जन लेइ ॥
विस्वंभर सब जग कूँ पूरै। उदर काज नर काहे झूरै ॥
पूरिक पूरा है गोपाल। सब की चिंत करै दरहाल ॥
समरथ सोई है जगनाथ। दादू देखि रहे सँग साथ ॥48॥

-दादूवाणी, राग गौडी, पदांक 48

स्वामी रामचरण भी इसीप्रकार कहते हैं—

'अन चर कूँ अन देत देत तिण तिण के चारी।
मुकता देत मराल जीव दे जीव अहारी ॥
तन करि पै पैदासि बाल सुत ताहि पिलावै।
दारक में दरिहाल पथर के मधि पहुँचावै ॥
जल थल सुरग पताल में गर्भ राम रछ्या करै।
रामचरण ताकी सरण साधू क्यौं संचै धरै ॥1॥

-श्रीरामचरणजी की अनुभववाणी, कवित्त संभाग, विसवासांग, छंदांक 1

सन्त सुन्दरदास क्या ही सुन्दर कहते हैं—

"देखि धौं सकल विश्व भरनहार, चूँच के समानि चूँनि सबही कौं देत है।
कीट पसु पंखि मछ कच्छ अजगर पुनि, उनके न सौदा कोऊ न तौ कछु खेत है।
पेट ही के काज रात दिवस भ्रमत सठ, मैं तो जान्यौ नीके करि तू तौ कोउ प्रेत है।
मानुष सरीर पाय करत है हाइ हाइ, सुन्दर कहत नर तेरे सिर रेत है ॥12॥

सवैया-ग्रंथ, विसवासांग, सवैया 12

सन्त रज्जब ने अनेक उदाहरणों से इसी तथ्य का पुष्टिकरण किया है—

"अंडे कूँजी अनल पोख कैसे विधि पावहिं।
अश्म कीट अहि करँड असन किहि ठाहर आवहिं ॥
पहले थन हो खीर पुनः पीछे ही बाला।
अजगर ठौर अहार दैव ऐसे प्रतिपाला ॥
धर अंबर पहनाव ही भार अठार आभा अमित।
मूरति मुरदा पट लहै रज्जब यह बिसवास मत ॥"

रज्जबवाणी, कवित्त-ग्रंथ, छंदांक 54, पृष्ठ 1378

वस्तुतः विश्वास करने योग्य एक परब्रह्मपरमात्मा तद्रूप गुरुमहाराज ही हैं; अन्य सब दगाबाज़ हैं। अतः इन पर अडिग, अटल, एकान्तिक विश्वास रखना ही जीव मात्र का कर्त्तव्य है। जो विश्वास करते हैं, उनका भरणपोषण विश्वम्भर अपना कर्त्तव्य समझकर अवश्य करता है।

"सगा न सदगुरु सारसा, दगा न सम संसार।
रामचरण यह सत्य है, कोइ सगुरा ल्योह बिचार॥
राम सकल कूँ देत है, चाँच समाणा चून।
काहे कूँ कलपत फिरै, मेटणहारा कूण ॥"

श्रीरामचरण-वाणी।

संदर्भ व टिप्पणियाँ

1. दी सिख रिलीजन, भाग 6, पृष्ठ 106।
2. दी सिख रिलीजन, भाग 6, पृष्ठ 106।
3. (क) उत्तरीभारत की सन्तपरम्परा, पृष्ठ 252।
(ख) नारायणदास नाभा के भक्तमाल की श्रीगणेशदास भक्तमाली की टीका, भाग दो, पृष्ठ 638। इस टीका में धन्ना के पिता का नाम पन्ना व माता का नाम रेखा लिखा हुआ है। इस टीका में इनको भक्तराज वलि का अवतार बताया गया है।
(ग) सन्तों एवं भक्तों का जीवन चरित्र, सम्पादक डॉ. विक्रमसिंह राठौड़, पृष्ठ 93.
(घ) सन्त-काव्यधारा, पृष्ठ 121।
(ङ) The hegiographies of Anant das, pp99 Editor winand M. Callewaert,
4. अनंतदास अग्रावत वैष्णव कृत धन्ना की परचई, छंदांक दो।
5. भक्तमाल की भक्तदामगुणचित्रणी टीका, छंदांक 15।
6. राजस्थानी-सन्तसाहित्य-परिचय, पृष्ठ 165, लेखक श्रीनारायणदास स्वामी, दादूपंथी।
7. अनंतदास कृत धन्ना की परचई, छंदांक 4/10।
8. अनंतदास कृत नामदेव की परचई, छंदांक एक।
9. भक्तदामगुणचित्रणी टीका, 108वाँ रचनावृन्द, छंदांक 71 प्रकाशित संस्करण, पृष्ठ 644।
10. अनंतदास कृत रैदास की परचई 12/13 "बीस बार जब बोलै साखी। तब मैं भगत परचई भाखी ॥"
11. नाभा कृत भक्तमाल, बालकरामजी की टीका, मूल छंदांक 194, पृष्ठांक 624।
12. वैष्णवदास 'रसजानि' भक्तिरसवोधनी टीकाकार के पौत्रशिष्य थे। इनका समय 1760 से 1835 वि. तक का माना जाता है। देखें: चैतन्य-सम्प्रदायः सिद्धान्त और साहित्य, लेखक डॉ. नरेशचन्द्र बंसल, कासगंज, एटा।
13. दी सिख रिलीजन, भाग 6, पृष्ठ 106।
14. धन्ना की परचई, 7/10।
15. छंदांक 8।
16. छंदांक 370, पृष्ठ 524, रूपकला, संस्करण आठवाँ।
17. छंदांक टीका 166, पृष्ठ 219, प्रथम संस्करग, टीकाकार श्रीनारायणदास स्वामी।
18. भक्तमाल, मूल छंदांक 15, रूपकला संस्करण, पृष्ठ 282।
19. रामानंद की हिन्दी रचनाएँ, पृष्ठ 33।
20. उत्तरीभारत की सन्तपरम्परा, प्रथमसंस्करण, पृष्ठ 139।
21. उत्तरीभारत की सन्तपरम्परा, पृष्ठ 139।
22. रैदास की परचई, सम्पादक ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल।
23. चौदा सौ तेतीस का, माघ सुदी पँदरास।
दुखियों के दुख हरन को, प्रगटे श्री रविवास ॥"
गुरु रविदास, लेखक आचार्य, पृथिवीसिंह आज़ाद, प्रकाशक : नेशनल बुक ट्रष्ट, नई दिल्ली
24. सन्त सैन और उनकी रचनाएँ, लेखक : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल। 'गुरु मिल्या रामानंद' व

'मीरायन' आदि कई पुस्तकों में प्रकाशित।
25. इसी आलेख में प्रकाशित 5वाँ पद।
26. इसी आलेख का पदांक 5वाँ।
27. आलोच्य आलेख का पदांक 5वाँ।
28. उत्तरीभारत की सन्तपरम्परा, पृष्ठ 252।
29. वही।
30. अग्रांकित विवरण भक्तदामगुणचित्रणी टीका के आधार पर लिखा गया है। अन्यत्र भी समान ही विवरण प्राप्त है। कहीं-कहीं सामान्य अंतर हैं।

अग्रावत अनंतदास वैष्णव कृत धन्ना की परचई

(1)

गुरु गोबिंद की अग्या पाऊँ। दास धना की कथा सुनाऊँ ॥
हरि की कृपा होय गुण गाऊँ। जथासक्ति हूँ बरण सुणाऊँ ॥1॥
धन्य धनौ जिन राम रिझायौ। बाल अवस्था हरि गुण गायौ ॥
बिप्र एक जजमानाँ जाई। सो खैरापुर निकस्यौ आई ॥2॥
पिता धना को गिरसत भारी। ब्रामण की कीनी मनुहारी ॥
दिनाँ च्यार कीनौं बिसरामा। पायौ पोष बहुत आरामा ॥3॥
सो तो द्विज हरि का गुण गावै। रामभगत सबके मन भावै ॥
धनौ चरावै घर की गाई। भगति अँकूर छिपै नहिं भाई ॥4॥
धनौ कहै सुणहो द्विज देवा। मैं भी करूँ राम की सेवा ॥
बिप्र कहत तुम बालक भाई। हरि की सेव बहुत कठिनाई ॥5॥
बालक हठ जु बहुत ही कीनौं। तबही बिप्र सिला टुक दीनौं ॥
सेवा कीजे प्रीत लगाई। बहुत भाँति हरि का गुण गाई ॥6॥
एह राम इनही चित लावौ। याँ पहलाँ भोजन मत पावौ ॥
इतनी कही बिप्र उठ गइयौ। धन्ना के मन आनँद भइयौ ॥7॥
बालक बन में गऊ चरावै। आई रोटी भोग लगावै ॥
नेतर बंद रु ध्यान लगाई। जो देखै तौ कछू न पाई ॥8॥
तबहि धनौ मन में पछतावै। ना जानौं यो कबहू पावै ॥
मैं विप्रन पै लियौ छुड़ाई। याकूँ तौ अब ओळू आई ॥9॥
दिनाँ दोय लूँ नाहीं पायौ। धनै आपही अभ छिटकायौ ॥
दिनाँ तीसरै भोग लगायौ। जो देखै तौ कछू न पायौ ॥10॥
तब तौ देख्यौ यो मर जासी। मैं भी खाय मरूँगौ पासी ॥
धनै भगत जब भोजन छाड्यौ। मनसा वाचा मरणौं माँड्यौ ॥11॥

तबही कृपा करी हरि आये। आपै भात प्रीत करि पाये ॥
महाप्रसाद सीस धर लीनौं। बहुर्‌यूँ धंनै भोजन कीनौ ॥12॥

(2)

अरध प्रसाद सु रहण दे, आपै जावै पाय ॥
वारी आपौ आपणी, ल्यावै गऊ चराय ॥1॥
कैताइक दिन अैसे गइया। धनौ राम दोउ हिलमिल रहिया ॥
एक समै विप्र जु फिर आयौ। देख रीत तबही सुख पायौ ॥2॥
बहुर्‌यूँ बिप्र आप घर गइयौ। वाही कूँ हरि दरसन दइयौ ॥
प्रगट राम यूँ बोल्या बाणी। साखी भगत धना नहिं जाणी ॥3॥
अब तुम बात हमारी मानौं। कासी कूँ तुम करौ पयानौं ॥
जाय करौ गुर रामानंदू। ताके दरसण होय अनंदू ॥4॥
राम धना कूँ अग्या दीनी। रामानँद की दिच्छा लीनी ॥
तबही तिनके भयौ अनंदू। दिच्छा लेत गये दुख दुंदू ॥5॥
दिच्छा लई परम सुख पायौ। अग्या ले खेरापुर आयौ ॥
रामानँद की दिच्छा पाई। घर ही भगति करौ लिव लाई ॥6॥
हरि गुरु साध एक कर पूजौ। कबहूँ भाव धरौ मत दूजौ ॥
सिंवरौ राम साध पण सेवौ। अरु भूखाँ कूँ भोजन देवौ ॥7॥
और धना के घर में नारी। सौ है पत की अग्याकारी ॥
आनदेव की करै न आसा। निसदिन जग ते रहै उदासा ॥8॥
समदिष्टी दुबिधा नहिं आनैं। सब घट आतमराम पिछानैं ॥
घर में रहै उदासी अैसे। जल के निकट बटाऊ जैसे ॥9॥
घर घरणी संपति बिध सरबूँ। हरि के हेत कियौ सब दरबूँ ॥
गुर किरपा तैं ए बन आई। घर ही रहै राम लिव लाई ॥10॥

(3)

दास धना की परचरी, सुणज्यो प्रीत लगाय।
दास अनंत कथा कहै, हरि की अग्या पाय ॥1॥
धन्ना के धीरज मन माहीं। हरि सूँ हेत और सूँ नाहीं ॥
राम नाम नित हिरदै राखै। मिथ्या मुख तें कभू न भाखै ॥2॥
सकल अंग सेवा को सूरौ। भगत बिछल गोबिंद गुण पूरौ ॥
एक दिना हरि अैसे कीने। आय बाट में दरसन दीने ॥3॥
सेवग नाम तुमारौ भाई। सब सन्तन की टहल कराई ॥
खीर खाँड घृत आटा दीजे। मिनख जनम का लाह्वा लीजे ॥4॥

बोल्यो धना सुणौं हो स्वामी। तुम हो मेरे अन्तरजामी ॥
मैं तो बीज खेत ले जाहीं। गैला में सामग्री नाहीं ॥5॥
अब तुम राम दुवारै जावौ। मनसा ह्वै सो भोजन पावौ ॥
मेरे घराँ सुलखणा नारी। बहुविधि सेवा करै तुमारी ॥6॥
इतनैं उठ बैरागी बोल्यौ। धना भगत को सत मत तोल्यौ ॥
सेवग हुय ऊतर क्यूँ दीजे। खोल समेत पोट पण दीजे ॥7॥
सेवग के मन अैसी आई। जन को बचन न मेट्यौ जाई ॥
धनै सुणत सो ढील न कीनी। खोल समेत पोट पण दीनी ॥8॥

(4)

गोहूँ ले हरिजन गये, धनौ पहूँतौ खेत।
ताते दास अनंत कह, सेवग सरबस लेत ॥1॥
तब हाली को मन बिलखानौं। स्वामी बीज और तुम आनौं ॥
धनौ कहै तुम सुन रे भाई। तेरौ बाँटौ कहूँ न जाई ॥2॥
पाड़ौसी के निपजै जेतौ। तूँ थारै भर लीजे तेतौ ॥
तब हाली दोउ बलध उलाड्या। आथण सूप खेत जू फाड्या ॥3॥
दिन आँथ्यौ हाली घर आयौ। सो हालण सूँ चिरत सुणायौ ॥
स्वामी मतौ एक एह कीनौं। बीज सरब भगताँ कूँ दीनौं ॥4॥
सारै दिन हल खाली फेर्‍यौ। गोहूँ चनौ एक नहिं गेर्‍यौ ॥
इतनौं सुण हाली की नारी। करै क्रोध अरु देवै गारी ॥5॥
जाय बावरा तूँ के खासी। ऊ तौ मोड्यौ मांग र लासी ॥
इतनौं सुन बोली हरिदासी। तब हालन कूँ खरी बिसासी ॥6॥
भगतन कह सुन हालन बाई। थारौ बाँटौ कहूँ न जाई ॥
एक बलध अबही यूँ खोई। जो तेरे बिसवास न होई ॥7॥
धनौ कहै कड़वा मत भाखौ। दिन दस बात गुप्त कर राखौ ॥
कियौ कियौ हरजी को देखौ। पीछै तुम कर लीजो लेखौ ॥8॥
भया पाँच दिन तबही ऊगा। एक दिनाँ हाली जाय पूगा ॥
हाली के मन भयौ अनंदा। ए तो कृपा करी गोबिन्दा ॥9॥
हाली जाय हथाई कहियौ। स्वामी की गति कुणी न लहियौ ॥
इनको मतौ बहुत है भारी। ग्यान ध्यान धीरज मन पारी ॥10॥

(5)

धन्ना के धीरज घणौं, साचौ हरि बिसवास ॥
दास अनंत बिचार कह, प्रभुजी पूरै आस ॥1॥

इतनी सुन बोले सब कोई। स्वामी की गति कैसी होई ॥
हाली कहै सकल सुण बाता। खेत गयौ इक समैं प्रभाता ॥2॥
धना भगत को चिरत सुनाऊँ। आख्याँ देखी कहि समझाऊँ ॥
हल के गलै नाइनैं बांधी। धन्नैं सँप्रत मूठि नहिं साँपी ॥3॥
सारै दिन ठालौ हल फेर्‌यौ। गोहूँ चिणौं एक नहिं गेर्‌यौ ॥
अब देखौ तो ऊगा घणा। बिन बाह्याँ ई गोहूँ चिणा ॥4॥
एती सुणी अचंभै होई। गोबिन्द की गति लखै न कोई ॥
हाली हालन दोऊ डरिया। जाय घना के पाँवन परिया ॥5॥
चूक हमारी बकसौ स्वामी। हो दयालु तुम अन्तरजामी ॥
धन्नौ कहै चूक कछु नाहीं। सब घट माहिं एक है साँई ॥6॥
अब तुम बात हमारी मानौं। जन सेवन की संक न आनौं ॥
हरि भगताँ कूँ सरबस दीजे। जीवन जन्म सफल करि लीजे ॥7॥
तब हाली को साँसौ भागौ। साध सन्त की सेवा लागौ ॥
हाली बहुरि खेत में आयौ। गोहूँ देखि बहुत सुख पायौ ॥8॥
च्यारूँ मेर एक सा खूणा। पाड़ौसी सूँ निपज्या दूणा ॥
सो करहै सो आगै त्यारी। हरि कूँ ए वृति लागत प्यारी ॥9॥

(6)

साँचे मन सिमरण करै, राम जनाँ सूँ हेत ॥
ताते दास अनंत कह, हरि निपजायौ खेत ॥1॥
बहुर्‌यूँ देख्या एक अचंभा। मेर मेर ऊगा बहु तुंभा ॥
स्वामी दोली बाड़ लगाई। ते सबही बेलड़ियाँ छाई ॥2॥
बहुरि बायरा आछा बागा। तूम्बा बहुत सुटाला लागा ॥
धनै भगत भेला करि लीना। सन्ताँ काज रामजी कीना ॥3॥
बहुर्‌यूँ मँडली ऐसी आई। तामें सन्त बहुत सुखदाई ॥
ते सब धना भगत के आये। स्वामी देख बहुत सुख पाये ॥4॥
धनौ कहै धन भाग हमारे। आवौ स्वामी भला पधारे ॥
कर डंडौत चरण जल लीनौं। दया करी तुम दरसण दीनौं ॥5॥
सबकूँ आसण दियौ बिछाई। ता पीछै हरिदासी आई ॥
बैठ बैठ कीनौं परनामा। आज हमारे पूरणकामा ॥6॥
तातौ पाणी तबही दीनौं। चरण खोल चरणामृत लीनौं ॥
सब सन्ताँ ऐसी बिधि देखी। यो तौ सेवग बड़ौ बमेखी ॥7॥

ऐसी ही है घर की नारी। अग्याकार राम की प्यारी ॥
धनौ कहै अब अग्या दीजे। करौ रसोई बिलँब न कीजे ॥8॥
साध कहैं अग्या हरि केरी। लाव रसोई इच्छा तेरी ॥
चोकौ दीनौं जल भरवायौ। धनौ भगत सामग्री लायौ ॥9॥
आटौ घिरत मिठाई लायौ। चावल घणा दूध मँगवायौ ॥
और कछू तरकारी कीजे। धीणौं घणौं दही पिण लीजे ॥10॥

(7)

तन मन धन अर्पण करै, इण विधि सेवै सन्त ॥
ताकूँ राम निवाजसी, गावै दास अनंत ॥1॥
पाय प्रसाद रु कथा उचारी। दरसण कूँ आवै नर नारी ॥
कथा कीरतन बहु विधि कीना। भये अनंद प्रेम रस भीना ॥2॥
धनौ कहै अब किरपा कीजे। एक एक तौ तूंबा लीजे ॥
धनै भगत तूँबा मँगवाया। देख डोल सबके मन भाया ॥3॥
ले तूंबा सबकूँ देखाई। इतनौं बोझ कहा है माँई ॥
आण करौती मुँहड़ा करिया। देखै तौ गोह्वा सूँ भरिया ॥5॥
देखत भयौ अचंभौ भारी। धन्य रामजी कला तुमारी ॥
कर कर मुँहड़ा धरूया उतारी। रास भई गोह्वाँ की भारी ॥6॥
गोहूँ धना भगत कूँ दीया। तूँबा तौ बैराग्याँ लीया ॥
जेता कण भगतन कूँ दीना। तेता मण खेती में लीना ॥7॥
औ अचरच मानौं मत कोई। करता करताँ कहा न होई ॥
धना भगत को खेत निपायौ। जन कबीर घर बालद लायौ ॥8॥
नामदेव की छान छवाई। पीपै कूँ द्वारका दिखाई ॥
सब सन्तन के कारज सारे। केताइ पतती पार उतारे ॥9॥
दास अनंत जु कहि कथा, धंना को जस गाय ॥
रामानँद का सिष्य की, महिमा कही न जाय ॥10॥

(2)

भक्तमालकार नारायणदासजी 'नाभा' ने भक्त धन्ना के सम्बन्ध में निम्न छप्पय लिखा है

धन्य धना के भजन को बिनहि बीज अंकुर भयौ ॥
घर आये हरिदास तिनहिं गोधूम खवाये।
तात मात डर खेत थोथ लागूँल चलाये ॥

आस पास कृषिकार खेत की करत बड़ाई।
भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पाई ॥
अचरच मानत जगत में कहुँ निपज्यौ कहुँवे बयौ।
धन्य धना के भजन को बिनहिं बीज अंकुर भयौ ॥59॥

भक्तदामगुणचित्रणी टीका में प्राप्त , मूलपाठ, पृष्ठांक 294; सम्पादक व प्रकाशक श्रीनारायणदास भक्तमाली, बक्सर(बिहार) निवासी, मामाजी।

(3)

भक्तमाल की भक्तिरसबोधनी टीका लिखने वाले प्रियादास ने तीन छंदों में टीका लिखी है जबकि भक्तदामगुणचित्रणी टीका लिखने वाले श्रीबालकराम रामस्नेही ने 26 चामर व 1 सोरठा छंदों में टीका विस्तार से लिखी है। इसका भी मूलपाठ यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

(4)

भक्तमालकार राघवदास दादूपंथी के भक्तमाल का पाठ निम्नानुसार है—

सन्तन के मुख नाखि कै धनै खेत गेहूँ लुणैं ॥
बीज बाहणैं लग्यौ साधु भूखे चलि आये।
मगन भयौ मन माहिं सबै गेहूँ बरताये ॥
मात पिता तें डरत रिक्त ऊमरा कढाये।
भक्ति भाव सौं भजै और तैं बधे सवाये ॥
राघव अति अचरच भयौ बिन बाहे निपजे सुणैं।
सन्तन के मुख नाखि कै धनै खेत गेहूँ लुणैं ॥163॥

गाडौ भर्‌यौ बीज बीच् सन्तन कूँ बाँट दियौ, ऐसौ रह्यौ ध्यान तिहूँ लोक धना जाट को।
पारौसी के खेत को करार कीन्हौं हारिन से, हाथ मारि लियो जन कौल कियौ काठ को ॥
गेहूँ लगे ठौर कछू वोरन कौं नाहीं और, ऊमरा कढाये डर मान्यौ राज हाट को।
राघौ कहै खेत हरि हेत अति नीपज्यो जु, दिन दिन बढत प्रभाव पुण्य ठाट को ॥164॥

-राघवदास कृत भक्तमाल, पृष्ठ 216-17

टीकाकार : नारायणदास पुष्करनिवासी, प्रथम संस्करण।

टीकाकार चतुरदास ने उक्त दोनों छन्दों की टीका तीन इंदव छंदों में की है। तथ्य वे ही हैं जो प्रियादास ने भक्तिरसबोधनी में लिखे हैं। अतः टीका के छंदों को यहाँ प्रस्तुत नहीं किया गया है।

(5)

भक्तमाल की श्रीमद्भक्तदामगुणचित्रणी टीका में सन्त धन्ना जाट

मूल

धन्य धना के भजन को बिनहिं बीज अंकुर भयौ ॥
घर आए हरिदास तिनहिं गोधूम खवाये।
तात मात डर खेत थोथ लाँगूल चलाये ॥
आस पास कृषिकार खेत की करत बड़ाई।
भक्त भजे की रीति प्रगट परतीति जु पाई ॥
अचरज मानत जगत में कहुँ निपुज्यौ कहुँवै बयौ।
धन्य धना के भजन को बिनहिं बीज अंकुर भयौ ॥59॥

टीका, चामर छंद

अब सुनहु गाथा धना जन की जाति को सो जाट।
जब बालकालहि धना पितु घर लही हरि की बाट ॥
इक बार कुलगुरु विप्र आयो धना पितु घर सोय।
नित करै अरचा राम की अति प्रभु लड़ावै भोय ॥1॥
तिहि पास ठाकुर धनै माँगा करन अरचा प्रीति।
तब दियो द्विज पाषाण ताकूँ सिखाई सब रीति ॥
द्विज गयो पाछे करत पूजा धनौ अति रति ठानि।
बन जात गाय चरायबे निज पास प्रभुहिं बसानि ॥2॥
निज छाक रोटी भोग लावत मूँदि दृग पट तानि।
नहिं पाइ तब कलपाइ जन पग लगत बड़ भय मानि ॥
कहि क्यूँ अहो क्षुत प्यास त्यागी भरत दृग जल एह।
नहि लेऊँ भोजन मैंऊँ तुम बिन जानि हरि अस नेह ॥3॥
तब कियो भोजन दियो जन सुख भक्त वत्सल राम।
निज छाक आवै भोग लावै हरिहिं पावै साम ॥
प्रभु सेष राखै धनौ चाखै प्रेम राखै थीर।
नित आध पारस खात जन को बिचारी रघुवीर ॥4॥
तब औसरे हरि गो चरावत धना कूँ सुख दीन्ह।
सो विप्र आयो बरस में घर हरिहिं देखि न चीन्ह ॥
कहि धना सूँ कत गए हरिजी धना तबहि कहाय।

चलि तोहि हरि कूँ दिखाऊँ मम सो चरावत गाय ॥5॥
द्विज जाय देख्यो गाय चारत दूरि ते हरि आप।
पुनि निकट गत नहिं सो दिखायो फिरि सिलामय प्राप ॥
तब विप्र के मन प्रेम जागा झरन लागा नैन।
असि भावना धरि मैं हुँ प्रभु कूँ करौं निज बस ऐन ॥6॥
तब विप्र निज घर जाय हरि कूँ ध्याय लाय सु प्रेम।
प्रभु तोष कीन्हा पोष लीन्हा धना चीन्हा जेम ॥
पुनि धना कूँ हरि जानि भोला हुकम दीन्हा एहु।
तुम ढरो कासी करो रामानंद गुरु सुख लेहु ॥7॥
पुनि धना कासी जाय निज गुरु कीन्ह रामानंद।
तब भक्ति मेवा सन्त सेवा सिखेवा सुखकंद ॥
गृह आय हरि हरिदास सेवा कीन्ह लीन्ह सु नेम।
अब कहत परचौ खेत को बिन बीज निपज्यो जेम ॥8॥
बहु सन्त आवा एक दिन गृह भूख पीड़ित तेह।
बीजार गोहूँ सन्त जिमये धनै करि अति नेह ॥
तब मात पितु तिस खिजनि लागे क्यूँ खवायो बीज।
कहि धना उहि तो कीट डाढ्यो हुतो मति करु खीज ॥9॥
तातो हि भूखे सन्त ज़िमये और ल्याऊँ नाज।
मैं धरि रख्यो हौ बीज नीको खेत वाहन काज ॥
अस करि पिता को समाधानहि हल बुलाए खेत।
तब बीज बिन हल फेरि रीता भर्यो मन हरि हेत ॥10॥
हालीन सूँ अस कहि बनाई दैहै गोहूँ वाह।
बीजार अब के लाय ऊरहि खेत भल अवगाह ॥
तब धनो बीजहिं पिता छाने हिरत गोधूँ खंच।
यहु भेद हाली तिया जान्यो दोउ विधि कर रंच ॥11॥
झट प्रजूल ऊठी कर्कशा तन समावै न उसास।
सा लरन लागी मति अभागी धना की तिय पास ॥
कहि मुणस तेरे बीज मुड़ियन खवायो करि हेत।
पितु मातु कूँ भोला परीता हल फिराया खेत ॥12॥
अब बीज ढूँढ़त मिलत नाहीं खेत ढूढ़ँत तेह।
जो खेत खाली जाय अबके उड़ैगो घर देह ॥
अरु होहु किंवा तुमहि मुड़िया हमारो की हाल।
तब तिय धना की कही खिजि के क्यूँ बजावत गाल ॥13॥

हालीपना को धान्य तेरो देहिं लेखे डारि।
क्यूँ सोच तोकूँ धनी पहली जाहु मूढ़ गमारि ॥
मति देहु गारी सन्त जन कूँ जेहिं हम सिरमौर।
तूँ लखत नहिं हरिभक्त महिमा करत झूठा झौर ॥14॥
तब गई रंडी वदत भंडी करत सब नर पास।
यहि बात प्रगटी खीरपुर सब सुनी जननी जास ॥
सुनि पिता पुनि कहि धना सूँ यहु खेत खाली जात।
तब धना कहि नहिं जात खाली साँच मानहु बात ॥15॥
दिन पंच लगि यहि होत झगरा अरु धना मन सोच।
निसि जपत रामहिं गुप्त कामहि क्षिति रहैगी पोच ॥
नहिं मिलत बीजहि पिता खीजहि रखो रघुवर लाज।
दिन सात में अति खेत माहीं बहुत ऊगो नाज ॥16॥
जे हुत परोसी खेत के सब करत अति बाखान।
भल उप्त गोधूँ धना खेतहिं और सम नहिं धान ॥
तब देख नैनहिं धना आपहि भयो अति मन चैन।
हरिभक्त सेवा करन की परतीति पाई ऐन ॥17॥
अस गैब सूँ गोहूँ उगाना भए पुर विख्यात।
सब लोक अचरज करत जग में धना धन्य कहात ॥
पुनि भई नेपै बहुत क्षेपै जास सनमुख राम।
अब संक तजि नित सन्त सेवा धना तिय जुत धाम ॥18॥
पितु मात मृति गत तहाँ पीछे सुनो औरउ बात।
इक बार खेपा लटत आए सन्त बहु मग जात ॥
कहि धना सूँ हम भूख पीड़ित तब हि गोधू दीन्ह।
भरि तुंबिका इक एक लीन्हा सबनि अधिक न लीन्ह ॥9॥
तब लरत हाली बुद्धि काली जिस कपालीहीन।
कहि भक्त हो बेचित्त तेरो करत है धन क्षीन ॥
अब मैं न हाली रहौं तेरा पिता हूँ सूँ जानि।
सो लेय अपनो नाज न्यारो भयो बड़ अभिमान ॥20॥
तिहि बरस बरसा भई सरसा धना के पग पीर।
नहिं खेत श्रावण वाह कीन्हो जुक्ति कछु न ठईर ॥
तब खेत सारे तुंबिका की बेलि गैबी छाइ।
आसोज कार्तिक माँहिं तुंबा लगा अनगण भाइ ॥21॥
सब लोक हाँसी करै हाली उही चटकी देत।

हम बिन धना को खेत देखहु तुंबिका उतपेत ॥
अब भक्त ह्वैहै धनौ ले कर तुंबिका तिय जुक्त।
यहु सुनि धना नहिं होत विमना हरि भरोसा भुक्त ॥22॥
तब धनै हरिकृत खेत तुंबा उप्त नीका मानि।
रखवाल खेतहि धर्‍यो इक नर सन्त कारज जानि ॥
जब सर्व पाका तुंबका बहु मास खेत रहाय।
पुनि पग धना को भयो ताजो फिरत इत उत धाय ॥23॥
इक दिवस साधू काज तुंबौ लाय इत मुख कीन्ह।
गोधूँ भरे ता माँहिं पूरण निरखि अदभुत चीन्ह ॥
तब सो धनै दरबार लखई गोहूँ तुंबनि जात।
जो हुकम है तो करूँ खलहा सुनत कौतुक आत ॥24॥
दरबार तब इक देखि तुंबा गोहुँ लुंबा माहिं।
उन कहि तिहारा भाग का यहु हम जु लेवैं नाहिं ॥
तब धनै सबही तुंबका घर लाय गोधूँ लीन्ह।
फिरि अति भरोसो राम को जन धना के मन कीन्ह ॥25॥
अस सन्त सेवा पाक मेवा धरेवा बहु भंतु।
जल काज तुंबा लेन कूँ वा सन्त आय अनंत ॥
अस धना सुमना सन्त रमना जास राम सहाय।
जे मूढ़ हाली बुरा कहिता ते रहे मुख चाय ॥26॥

सोरठा

धन्य धनो हरिदास,, सफल सन्त सेवा लही।
जिसकी रति शुभ वास, सकल जगति विस्तर रही ॥27॥

सन्त धन्ना जाट की रचनाएँ

राग भैरु

(1)

रे चित च्यंतसि[1] दीन दयालहि, हरि बिन और न कोई।
जे ध्यावे[2] ब्रह्मंड खंड त्यौं, करता[3] करै सु होई ॥टेक॥
जिनि जननी के उदिर उदिक थै[4], प्यंड कियौ दस द्वारा।
दियौ अधार अगिनि मुख राखै[5], अैसो खसम हमारा ॥
कुरमी अंड धरै जल अंतरि, खीर पंख तहाँ[7] नाहीं।

पूरिक[8] परमानंद पयोधर, [9]च्यंति च्यंति[10] तिहिं ठाहीं ॥
[11]पाहण में कीट गोपि सबहिन[11] थै, मारग कतहूँ नाहीं।
[12]कहै धनौं ताकौ हरि पूरिक[12] तूँ काँइ जीव डराहीं ॥1॥

मूलपाठ ग्रंथांक 496 के अनुसार।

पाठान्तर : 1. चिंतिसि (गो.स.); 2. धावै (561), धावहि (गो.स.); 3. सो करता (र.स.); 4. तैं (र.स.); 5. राख्यौ (र.स.); 6. अैसा (र.स., गो.स. 561); 7. जहँ (र.स.); 8. पूरण (561, र.स.); 9. च्यंत (561); 10 चिंति (गो.स.); 11. कीट पखान गोपि सबहिन तैं (र.स.); 12. कहै धनौं जाको हरि पूरिक (561, गो.स.), कहै धना पूरिक है जाकौ (र.स.);

गुरुग्रंथीय पाठान्तरपाठ

राग आसा

रे चित चेतसि की न दयाल, दमोदर बिबहि न जानीसि कोई।
जे धावहि ब्रहमंड खंड कउ, करता करै सु होई ॥1॥रहाउ॥
जननी केरे उदर उदक महि, पिंडु कीआ दसदुआरा।
देइ अहारु अगनि महि राखै, ऐसा खसमु हमारा ॥1॥
कुंमी जल माहि तन तिसु बाहरि, पंख खीरु तिन नाही।
पूरन परमानन्द मनोहर, समझि देखि मन माही ॥2॥
पाखणि कीटु गुपतु होइ रहता, ताचो मारगु नाही।
कहै धंना पूरन ताहू को, मत रे जीअ डराही ॥3॥3॥

गुरुग्रंथ, पृष्ठ 488

(2)

हरि गुण गाइ रे हरि गुण गाइ, औरे छाडि सबै चतुराइ ॥टेक॥
चरण गंग गहि नीर न्हवाऊँ, पीतांबर क्यूँ सोभै तास।
चंदणि किसै करूँ हरि लेपण, जाके अंग अनूपम बास ॥
अगर चँदन घसि धूप खिड़ाणू, कौण बास मनि राम रली।
पत्री पहुप किसै बनि आणू, जाके भार अठारह रोमावली ॥
पूजा भगति किसी भल माणैं, जाके सनक सनंदन भगत सुकादि।
सेस सहँस मुख नाँव अराधै, पवन पूज जाकै ब्रह्मादि ॥
जाके नारद निरति नटारँभ संकर, आप अपछरा तोड़ै ताल।
अगिणत महिमा राम तुम्हारी, मैं गुण का जाणू गोपाल ॥

अविगत अगम विषम कठिनाई, कहि कहि कहूँक लीयौ जाइ।
कहै धनौ अरथ परमारथ, जिनि पायौ तिनि सहज सुभाइ ॥2॥

मूलपाठ ग्रंथाक 496 के अनुसार

राग रामकली

(3)

ना जानौं राम कैसा जोगी, अनेक गुफा मदुसूदन भोगी ॥टेक॥
खीर खाँड घ्रित अंम्रित भोजन, साधनि न्यौंति जिमाऊँ।
या कुटि छाड़ौं और निवासौं, बहुरि न या कुटि आऊँ राम ॥
आवत जात बहुत मैं कीये, इहाँ न रहणा होई।
भणत धना जाट सेवग तेरा, हंस चल्या कुटि रोई ॥3॥

मूलपाठ ग्रंथांक 561 के अनुसार

राग आसा

(4)

भ्रमत फिरत बहु जनम बिलाने, तनु मनु धनु नही धीरे।
लालच विखु काम लुबध राता, मनि बिसरे प्रभ हीरे ॥रहाउ॥
बिखु फल मीठ लगे मन बउरे, चार बिचार न जानिआ।
गुन ते प्रीति बढी अन भांती, जनम मरन फिरि तानिआ ॥1॥
जुगति जानि नही रिदै निवासी, जलत जाल जम फंध परे।
बिखु फल संचि भरे मन ऐसे, परम पुरख प्रभ मन बिसरे ॥2॥
गिआन प्रवेसु गुरहि धनु दीआ, धिआनु मानु मन एक मए।
प्रेम भगति मानी सुखी जानिआ, त्रिपति अघाने मुकति भए ॥3॥
जोति समाइ समानी जाकै, अछली प्रभु पहिचानिआ।
धंनै धनु पाइआ धरणीधरु, मिलि जन सन्त समानिआ ॥4॥

मूलपाठ गुरुग्रंथ, पृष्ठ 487 से।

(5)

गोबिन्द गोबिन्द गोबिन्द संगि नामदेउ मनु लीणा।
आढ दाम को छीपरो होइओ लाखीणा ॥1॥रहाउ॥
बुनना तनना तिआगि कै, प्रीति चरन कबीरा।
नीच कुला जोलाहरा, भइओ गुनीय गहीरा ॥1॥

रविदासु ढुवंता ढोर नीति, तिन्हि तिआगी माइआ।
परगटु होआ साध संगि, हरि दरसनु पाइआ ॥2॥
सैनु नाई बुतकारीआ, ओहु घरि घरि सुनिआ।
हिरदै वसिआ पारब्रहमु, भगता महि गनिआ ॥3॥
इहि विधि सुनि कै जाटरो, उठि भगती लागा।
मिले प्रतखि गुसाईआ, धंना बडभागा ॥4॥2॥

मूलपाठ गुरुग्रंथ, पृष्ठ 487-88

राग धनासरी

(6)

गोपाल तेरा आरता।
जो जन तुमरी भगति करंते, तिनके काज सवारता ॥रहाउ॥
दालि सीधा मागउ घीउ, हमरा खुसी करै नित जीउ।
पन्हीआ छादनु नीका, अनाजु मगउ सत सी का ॥1॥
गऊ भैस मगउ लावेरी, इक ताजनि तुरी चंगेरी।
घर की गीहनि चंगी, जनु धंना लेवै मंगी ॥2॥4॥

मूलपाठ गुरुग्रंथ, पृष्ठ 695 से।

राग विलावल (2)

(7)

ते उधरे जिनि राम कहे, तिनके दुख दारण आप दहे ॥टेक॥
[1]उधरे ऊधौ नारद नामा, अंबरीक प्रहिलाद[2] सुदामा।
उधरे सिव संकर सनकादिक, सनक सनंदन चरण परापति।
दास धना हरि के गुण गावै, गुर परसाद[3] परमपद पावै।

मूलपाठ ग्रंथांक 496 के अनुसार।
पाठांतर : 1. ते उधरे (गो.स.); 2. प्रहलाद (गो.स.); 3. परसादि (गो.स.);

(8)

हरि हरि नित समरि उवरिसी हरि हूँ, काँइ रे जीहा हरि न कहै।
वा ऊवा मरण सराणे वैरी, वासै खुरे त्रोड़तो वहै ॥1॥
निसदिन नाम जपै नारायण, झाले साच पड़े म झूठि।
ह्वोसी अंत आतम न देवै, पाल्ही चढ़हि जरा तो पूठि।

प्राणिया नाम सुमिर पुरषोतम, अनि विषय परहरे आल।
पग सों पग त्रोड़तौ न पेखे, क्रम क्रम जाल नाखतो काल।
प्रिसण मरण हरि समय पालिस्यौ, मेल्हे मा चित सूध मना।
धरि हरि चेत समदि धरणीधर, धरणीधरि उवरिसि धना।

मूलपाठ प्राचीन राजस्थानी गीत, पृष्ठ 58-59।

साखी

1. धना कहै हरि धरम बिन, पंडित रहे अजाण।
अणबाह्यौ ही नीपजै, बूझौ जाइ किसाण ॥1॥
2. धना धंन नहिं राचिये, न रचिये संसार।
पग बेड़ी गल रासड़ी, यूँही गये असार ॥2॥
3. धनौ कहै ते धिग नरा, धन देख्याँ गरबाहिं।
धन तरवर का पानड़ा, लागै अर उड़ि जाहिं ॥3॥
4. धना कहै धन बाँटिए, ज्यूँ कूवा का नीर।
खाटी सापुरसाँ तणी, सब काहू का सीर ॥4॥
5. धना धंन ते सन्तजन, जे पैठे पर भीड़।
संधि कटावै आपणी, रती न आवै पीड़ ॥5॥
6. धना धंन ते मानवी, धरणीधर सूँ प्रीति।
राति दिवस बिसरै नहीं, रसना उर मन चीति ॥6॥
7. धरणीधर ब्यापक सबै धरणि ब्यौम पाताल।
धनौ कहै धनि साध ते, बिसरै नहिं कहुँ काल ॥7॥

राजस्थान-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, जयपुर के पुरोहित हरिनारायण संग्रह के ग्रंथांक 67 के पृष्ठांक 115 से।

साखी क्रमांक चार जगन्नाथजी के ग्रन्थ गुणगंजनामा के अंग 117 साखी 21 के रूप में मिली है। पाठ निम्नानुसार है—

"धना कहै धन बाँटिए ज्यों कूवा का नीर।
खाटी सापुरसाँ तणी, सब काहू का सीर ॥"

सन्त परसजी खाती

सन्त परसजी का वर्णन 'नाभा' नारायणदासजी के भक्तमाल में स्पष्टतः नहीं है। उन्होंने मात्र परशुरामदेव निम्बार्की का वर्णन स्पष्टतः किया है और उनपर एक पूरा छप्पय लिखा है। रूपकला संस्करण में इसका क्रमांक 137 व भक्तदामगुणचित्रणी टीका में 138 है। 'परसराम' नाम तीन स्थानों पर और मिलता है किन्तु एक भी जगह ऐसी नहीं है जहाँ कोई संकेत मिले कि कलरु (मेड़ता, राजस्थान) गाँव निवासी खाती वंशोद्भव परसजी इनमें से कौन से हैं। वस्तुतः कलरु ग्रामवासी परसजी इतने प्रसिद्ध और प्रतापी सन्त हुए हैं कि इनके नाम से खाती जाति वाले अपने आपको 'परसवंशी' कहते हैं। ऐसे परमप्रतापी सन्त का स्पष्टतः पूरा विवरण नाभा के भक्तमाल में न मिलना अखरता है। जैसा आगे लिखा जायेगा, ये परसजी, राजर्षि पीपा के शिष्य थे। इस न्याय से भी नाभाजी की जानकारी में इन परसजी का नाम अवश्य रहा होगा। अन्यत्र रूपकला संस्करणानुसार छंदांक 102, 172 व 147 में परसरामजी का नाम आया है। उक्त चारों नाम कलियुगखण्ड में हैं।

नारायणदास नाभा के पश्चात् राघवदासजी दादूपंथी ने अधिक उदार दृष्टिकोण के साथ वि.सं. 1717 में भक्तमाल लिखा जिसमें परसजी पर दो छंद उपलब्ध होते हैं। यहाँ यह लिख देना सर्वथा उचित व प्रासंगिक है कि इन परसजी की रचनाओं का संग्रह भी दादूपंथी पुस्तकों में ही मिला है। चूँकि दादूदयाल स्वयं व उनके शिष्य रज्जबादि कलरु, बस्सी, कड़ेल, थाँवला, मेड़ता, पुष्कर आदि गाँवों में भ्रमणरत रहे थे। अतः इन्हें परसजी के बारे में उनके गाँव व क्षेत्र से जो भी जानकारी मिली उसको उन्होंने वहाँ से ले लिया और अपनी पुस्तकों में उनकी रचनाएँ व जीवनी लिखकर उनको निश्शेष होने से बचा लिया। राघवदासजी के पश्चात् तो राजस्थान में लिखे गये भक्तमालों में परसजी का वर्णन बराबर आया है। ध्यातव्य है, परसजी की रचनाओं सहित राघवीय-भक्तमाल में इनका नाम परस ही मिलता है, परसराम अथवा परसदास नहीं मिलता। सर्वप्रथम राघवीय भक्तमाल का वर्णन पढ़ें।

'मरुधर कलरू गाँव परस जहाँ प्रभु को प्यारौ।
सतवादी सूतार कर्म कलजुग तैं न्यारौ ॥
ता बदले तन धारि राम रथ चक्र सुधार्‌यौ।
इकलग पूठी एक बिना सल सबै बिचार्‌यौ ॥

परस गयौ जहाँ भूपती चित सु चकित चरणैं नयौ।
राघव समरथ रामजी भक्ति करत यूँ बस भयौ ॥216॥

परस को पारस मिले हैं गुरु पीपा आय, आप सो कियौ बनाय बारंबार कसि कै।
खोयो है कन्या को कोढ घोवती दई है ओट, सकती की सेवा मेटी ताके घर बसि कै॥
खाती को खलास करि रीझे ही परस परि, माथे हाथ धर्यौ स्वामी हेत सेती हँसि कै।
राघौ कहै परस प्रसिद्ध भये तीनों लोक, सन्तन की सेवा कीन्हीं पूठी हरि असि के ॥217॥

राजस्थान के दूसरे भक्तमालकार खेड़ापा के सन्त दयालदासजी ने परसजी का वर्णन इसप्रकार किया है।

'तोड़ै मेलौ सन्त मेड़तै भूप बुलायौ।
राजकाज भय छोड़ साध दरसण कूँ ध्यायौ॥
भगवत धर अवतार सूत को कारज कीयौ।
सैलँग पूठ्यौ सही भगत परचै सुख दीयौ॥
पेख त्रपत सिख हुय सबै चरण सरण अवलाखियै।
परसराम की साख सुणि जन दरसण पण राखियै ॥250॥

नाभा कृत भक्तमाल की भक्तदामगुणचित्रणी नामक टीका लिखने वाले रामस्नेही सन्त बालकरामजी ने राजर्षि पीपा की टीका के अंत में हमारे विवेच्य खाती परसजी का 20 छंदों में विवरण लिखा है। हम यहाँ उक्त तीनों स्रोतों के आधार पर परसजी की जीवनी आगे लिख रहे हैं।

उक्त तीनों स्रोतों के आधार पर हम सूत्र रूप में निम्न तथ्यों को जान सकते हैं।

1. परसजी की जाति 'खाती' थी। खाती को तरखान, बढ़ई व जांगिड़-ब्राह्मण भी कहा जाता है।
2. इनका निवासस्थान, प्रसिद्ध नगर मेड़ता से तीन कोस पूर्व में 'कलरु' नामक ग्राम था।
3. ये प्रसिद्ध स्वामी रामानन्दाचार्य के पौत्रशिष्य व राजर्षि पीपा के शिष्य थे।
4. इनका ननिहाल राजर्षि पीपा की पत्नी सोलंकनी सीताकँवर के पीहर टोड़ा के आसपास का कोई ग्राम था। यहीं परसजी राजर्षि पीपा के संपर्क में आये।
5. ये राजर्षि पीपा द्वारा उपदिष्ट मार्गानुसार साधना करके सिद्ध सन्त होगये थे।
6. ये सन्त-भगवंत के परमभक्त थे।
7. इनके बदले में भगवान ने इनके क्षेत्र के राजा के रथ का पहिया सुधारा था।
8. ये इस घटना से अनभिज्ञ थे। राजा के बताने पर ही ये इस घटना से अभिज्ञ होसके।
9. ये गृहस्थ थे। कम से कम इनकी एक कन्या पुत्री थी। वह गलित कोढ़ नामक रोग से पीड़ित थी। राजर्षि पीपा की धोती उढ़ाने से इस पुत्री का कुष्ठ नामक

रोग तत्काल मिट गया।

10. राजर्षि पीपा की शिष्यता ग्रहण करने के पूर्व ये शक्ति के उपासक थे।
11. परसजी जब अपने ननिहाल में थे, तब इन्होंने राजर्षि पीपा द्वारा कुंभकार के हाव में दबी रह गई सर्पिणी को रामनाम के बलपर जीवित बाहर निकाल लेने का चमत्कार देखकर राजर्षि पीपा का शिष्यत्व ग्रहण किया था। रामनाम के प्रति अनन्यनिष्ठा भी इनकी इसी घटना के पश्चात् जमी थी।
12. एकबार इन्होंने इनके ही गाँव के एक खाती को मृतक से जीवित कर दिया था।
13. ये सफल वाणीकार निर्गुणी सन्त थे। इनके गुरु राजर्षि पीपा भी निर्गुणी सन्त थे।
14. इनके गुरु राजर्षि पीपा का समय वि.सं. 1390 से 1470 अनेक प्रमाणों से पुष्ट है। देखें इसी पुस्तक में **'राजर्षि पीपा गागरोनी'** नामक अध्याय।
15. इनके दादागुरु भक्तिभानु स्वामी रामानंद का समय अगस्त्यसंहिता के अनुसार वि.सं. 1356 से 1467 तक सुनिश्चित् है। देखें : **हिन्दी साहित्यकोश, रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ** व अन्य अनेक पुस्तकें।
16. उक्त समयावधियों के आलोक में इनका समय वि.सं. 1430 से 1520 तक का माना जाना समुचित है।
17. इनकी उपलब्ध रचनाओं में दो संकेत ऐसे हैं जिनसे इनकी जीवन की उक्त जानकारी पुष्ट होती है।
18. कलरु ग्राम में अबभी इनकी स्मृति शेष है। इनके वंशज इनके मंदिर के पुजारी हैं।
19. इनके क्षेत्र का नाम मेड़ता व वहाँ के राजा का नाम कुछ विद्वानों ने भक्तवर जैमल मेड़तिया लिखा है। जैमल प्रसिद्ध भक्तिमती मीरांबाई का चचेरा भाई, मेड़ता का तीसरा मेड़तिया राव था जिसका ऐतिहासिक काल वि.सं. 1564 से 1624 सुनिश्चित् है।
20. परसजी के निर्धारित उक्त काल व जैमलजी के समय में एकाकारता नहीं है। अतः भगवान् द्वारा परसजी खाती का रूप धारण करके क्षेत्र के राजा के पहिये को सुधारने की घटना को राव जैमल से जोड़ पाना मुश्किल ही नहीं, असंभव है।
21. सन्त दयालदास, खेड़ापा ने लिखा है कि **'तोड़ा'** नामक ग्राम में सन्तों का मेला था। मेला-आयोजकों ने परसजी को तोड़ा ग्राम में आमंत्रित किया। परसजी वहाँ गये।
22. इसीसमय मेड़ता के शासक के रथ का चक्र (पहिया) टूट गया। उसने उसको सुधारने केलिये परसजी को बुलाया। ये घर पर नहीं थे। भगवान् स्वयं ने परसजी का रूप बनाया और शासक के रथ का चक्र सुधारा।
23. मेले से वापिस आने पर परसजी, रावजी की सेवा में उपस्थित हुए किन्तु तब तक चक्र सुधर चुका था।

24. विचारणीय बात यह है कि मेड़ता राज्य की नींव राव वरसिंह व राव दूदा ने वि.सं. 1518 में डाली। राव दूदा वि.सं. 1572 तक, राव बीरमदेव 1600 तक तथा राव जैमल 1624 तक जीवित रहे।

25. ऊपर परसजी का समय इनके गुरु व परमगुरु के कालानुसार वि.सं. 1430 से 1520 के मध्य माना गया है। ऐसी स्थिति में परसजी का राव जैमल ही नहीं, राव दूदा का समकालीन होना भी सिद्ध नहीं होता। मेड़तियों के पूर्व इस क्षेत्र के शासक सींधल राजपूत थे। हो सकता है, भगवान ने किसी सींधल ठाकुर के रथ का पहिया सुधारा हो।

26. भक्तमालकार सन्त दयालदासजी का समय 1816 से 1885 वि.सं. है। ऐसी स्थिति में इनकी जानकारी में जनश्रुति का सम्मिश्रण होकर तथ्यों में कुछ हेरफेर हो जाना स्वाभाविक है। सन्त भक्तहृदय होते हैं। वे इतिहास व सन्-सम्वतों के फेर में नहीं पड़ते। इसकारण उनसे कभी-कभी आगे पीछे की घटनाएँ गड्डमड्ड हो जाना असम्भव नहीं। भक्तदामगुणचित्रणी टीका के अनुसार राजर्षि पीपा तोडा ग्राम में रहे थे। पीपा प्रायः सन्तों को भोजन कराते ही रहते थे। अतः पूर्ण संभावना है कि परसजी अपने गुरु के आमंत्रण पर ही तोड़ा नामक गाँव में गये होंगे। तोड़ा गाँव मेड़ता से लगभग 20 किलोमीटर दूर है।

27. राव जैमल के इतिहास से सन्त परसजी की उक्त घटना का प्रमाणीकरण नहीं होता। देखें : 'चतुरकुलचरित्र' लेखक ठाकुर चतुरसिंह, रूपाहेली; जैमल-वंशप्रकाश, लेखक ठाकुर गोपालसिंह, बधनौर; जैमल मेड़तिया, लेखक डॉ. जहूरसिंह मेहर, जोधपुर।

28. वैसे ऐतिहासिक ग्रंथों से इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती तथापि राघवदासजी दादूपंथी ने अपने भक्तमाल के पीपा प्रकरण में लिखा है कि टोडा क्षेत्र में 1520 में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा जिसमें सन्त पीपा व उनकी पत्नी ने अन्नभंडार-वितरण के द्वारा दुखी जनता की अपार सेवा की।

29. यदि हम 1520 वि.सं. में राजर्षि पीपा को जीवित मान भी लें, तबभी सन्त परसजी का राव जैमल व राजा बीरमदेव का समकालीन होना सिद्ध नहीं होता। वैसे 1390 वि.सं. में जन्मे राजर्षि पीपा का 1520 तक जीवित रहना कैसे भी संभव नहीं माना जा सकता। अतः यही माना जाना उचित जान पड़ता है कि कलरु या कलरु के आसपास के किसी ठाकुर के रथ का चक्र टूटा होगा। उसीका चक्र भगवान् ने परसजी का रूप बनाकर सुधारा होगा। राव जैमल का नहीं।

30. चलते-चलते एक बात पर विचार कर लेना और जरूरी है। चूँकि नाभाजी ने परसजी का स्पष्टरूपेण वर्णन नहीं किया। अतः परसजी का समय नाभाजी से परवर्ती रहा होगा। तबही नाभाजी ने परसजी का वर्णन भक्तमाल में नहीं किया।

31. इस सम्बन्ध में हमारा कहना है कि सन्त परसजी की रचनाएँ हमको वि.सं. 1660 में लिखी पुस्तक में मिली हैं। अतः सन्त परसजी कभीभी सम्वत् 1660 से अर्वाचीन नहीं हो सकते। नाभाजी स्वयं ने अपने भक्तमाल में नारायणदास नामक भक्त को स्पष्टतः परसवंशी कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि नाभाजी परसजी से पूर्णतः परिचित थे। अन्यथा वे नारायणदास को परसवंशी कैसे कहते। साथ ही परसवंशी कहने से यह भी पक्का निश्चय होता है कि भक्तमाल लिखेजाने (सं.1640) के कम से कम 100-125 वर्ष वर्ष पूर्व से ही खाती जाति वाले अपने आपको परसवंशी कहने लग गये थे। ऐसी स्थिति में परसजी की प्राचीनता पर कोई आँच नहीं आती। वैसे भी साहित्य-मनीषी नकारात्मक प्रमाण को सकारात्मक प्रमाण की अपेक्षा निर्बल मानते आये हैं। भक्तमाल में परसजी का नाम स्पष्ट रूप से न मिलना नकारात्मक प्रमाण है।

32. सन्त परसजी खाती, गागरोनी राजर्षि पीपा के शिष्य थे, इसका प्रमाण स्वयं परसजी की साखी में है **"पीपा परस पटंतराँ, हूवा मूल धुराँह। हीरै हीरा बेधिया, प्रगटी जोति घराँह ॥2॥"** पीपा के पल्ले को पकड़कर मैं परस मूल रूप पीपा जैसा ही होगया। हीरे रूपी राजर्षि पीपा ने मुझ परस रूपी हीरे को बेधकर बहुमूल्य हीरा बना दिया। परस रूपी मुझ हीरे में ज्योति घर में रहते हुए ही प्रकटी। मैंने न संन्यास धारण किया और न घरबार छोड़ा। घर में मुझे परमात्मा की प्राप्ति होगई।

33. शोधक विद्वानों का कथन है कि अन्तर्साक्ष्य से अधिक प्रामाणिक प्रमाण और कोई नहीं होता। यहाँ स्वयं परसजी ने अपने आपको राजर्षि पीपा का शिष्य सिद्ध किया है। अतः यह सर्वथा प्रामाणिक है कि कलरु गाँव निवासी खाती परसजी, राजर्षि पीपा के शिष्य थे।

34. परसजी के गाँव कलरु में आज भी जनश्रुति है कि ये रामानन्दीय वैष्णव थे तथापि गुरवाम्नायानुसार इनकी उपासना-पद्धति निर्गुणी सन्तमतानुसार थी। बालकरामजी की भक्तदामगुणचित्रणी टीका में भी इनको स्पष्टतः राजर्षि पीपा का शिष्य लिखा मिलता है।

35. नारायणदास 'नाभा' के भक्तमाल को सूक्ष्मतया पढ़ने पर ज्ञात होता है, नाभाजी परसजी खाती नामक भक्त से अच्छी तरह परिचित थे। साथ ही, उनके समय में खाती जाति वाले अपने आपको परसवंशी कहने लग गये थे। नाभाजी ने छंदांक 180 (भक्तदामगुणचित्रणी टीका के अनुसार पृष्ठ 602) में स्पष्टतः नारायणदास नामक भक्त को **'परसवंशी नारायन'** कहा है। बालकारामजी ने इन परसंवशी नारायण भक्त की कथा भी लिखी है।

36. जैसा पूर्व में लिख आये हैं, निम्बार्की परशुरामदेवाचार्य के अलावा नारायणदास

नाभा ने तीन परसरामों का नामोल्लेख किया है किन्तु उनका विवरण नहीं दिया है। भक्तमाल के वर्तमान शताब्दी के विख्यात व्याख्याकार श्रीगणेशदासजी भक्तमाली व रामेश्वरदास भक्तमाली ने भक्तमाल खण्ड तीन के अंत के परिशिष्ट में कई भक्तों का विवरण दिया है। परसजी का विवरण भी जांगिड़-ब्राह्मण भक्तमाल के आधार पर प्रस्तुत किया है। जांगिड़-भक्तमाल, नागौर रामद्वारा के सन्त श्रीधीरजरामजी रामस्नेही (शाहपुरा) ने लिखा है। उक्त दोनों टीकाकारों ने यद्यपि नाभाजी के छप्पयांक 102 में आये शब्द **'खाटी कौ'** को **'खाती कौ'** नहीं माना है तबभी उन्होंने यहाँ आये 'परसराम' नामक भक्त के नाम को परसजी खाती, कलरु गाँव निवासी का नाम मान कर परिशिष्ट लिखा है।

37. इन दोनों ही भक्तमालियों ने **'खाटी कौ'** शब्द को **'खाती कौ'** शब्द का रूपान्तर इसलिये नहीं माना है क्योंकि भक्तमाल के पुराने सभी टीकाकारों ने 'खाटीकौ' को एक स्वतंत्र भक्त माना है, न कि परसजी का विशेषण। फिरभी किसी भी टीकाकार ने 'खाटीकौ' की कथा नहीं लिखी है।

38. ऐसी स्थिति में यदि इसको **'खातीकौ'** का रूपान्तर मान लिया जाये, साथ ही परसजी का विशेषण भी, तो यह मान लेना सरल ही जायेगा कि नाभाजी ने नारायण नामक परसवंशी का जो वर्णन किया है, वह तो सही किया ही है, साथ ही उन्होंने परसवंश के प्रवर्तक परसजी का वर्णन भी किया है।

39. अंत में एक प्रश्न और उठता है, आखिर भक्तदामगुणचित्रणी टीकाकार बालकरामजी ने पीपा सम्बन्धी छप्पय के अंत में परसजी का वर्णन बिना मूल छप्पय में मिले संकेत के कैसे कर दिया? क्योंकि भाष्य में तो उक्तानुक्त के ऊपर लिखना विधेय माना गया है किन्तु टीका में मूल के अनुसार ही चलना पड़ता है। बालकरामजी ने भाष्य न लिखकर टीका लिखी है। अतः अनुक्त के ऊपर टीका कैसे लिख दी।

40. इसपर गंभीर चिन्तन करने पर ज्ञात होता है कि नाभाजी ने पीपा सम्बन्धी छप्पय में **'परस प्रणाली सरस भई सकल विस्व मंगल कियो।'** पंक्ति लिखी है। बालकरामजी के अतिरिक्त अन्य सभी टीकाकारों के इस पंक्ति के अर्थ अस्पष्ट हैं। वस्तुतः इस पंक्ति का अर्थ होगा "परस शिष्य की प्रणाली=परम्परा अतीव सरस=उम्दा हुई जिसने समस्त विश्व का मंगल किया।" इस अर्थ को ग्रहण करके ही श्रीबालकरामजी ने परसजी वर्णन किया है जो यहाँ अविकल पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित किया जारहा है।

41. निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि नारायणदास नाभा ने परसजी का वर्णन तो किया है किन्तु है वह भक्तमाल में सूत्रात्मक जिसको ऊपर भलीभाँति स्पष्ट कर दिया गया है।

42. भक्तमालियों, भक्तमाल-प्रेमियों व संत-भक्त-साहित्य अध्येताओं से निवेदन है

कि वे उक्त विवरण को पढ़कर सन्त परसजी खाती कलरु (मेड़तापट्टी) का परिचय सही रूप में जानने व समझने की कृपा करें।

43. परसजी के पदांक छः में अनंतानंदजी के शिष्य श्रीरंग श्रावगी वैश्य, दौसा निवासी का विवरण आया है। परसजी श्रीरंग को चेताते हुए कहते हैं, हे श्रीरंग! तुम वाणिज्यकर्म करने में निपुण हो। प्रतिदिन प्रभूतमात्रा में व्यापार करते भी हो किन्तु नारायण-नाम का वाणिज्य करने में क्यों नहीं रत होते हो। तुमने तुम्हारा सारा जीवन बैलों को हाँकने में ही व्यतीत कर डाला है।"

44. भक्तमाल-पाठक, श्रोता, वक्ता भलीप्रकार जानते हैं कि श्रीरंग बालद लादकर देश-देशांतर में व्यापार करते थे। एकबार उनके अपने ही सेवक से उनको ज्ञान मिला, जिसकारण इन्होंने अनंतानंदजी का शिष्यत्व ग्रहण किया। श्रीरंग श्रावगी और परसजी, समकालीन थे। रामानन्दजी के दोनों पौत्रशिष्य थे। पद में प्रयुक्त क्रियाएँ वर्तमानकालिक हैं। अतः इस पद के द्वारा भी यही निर्णीत होता है कि सन्त परसजी राजर्षि पीपा के शिष्य, रामानन्दजी के प्रशिष्य, अनंतानन्द-शिष्य श्रीरंग श्रावगी दौसा निवासी के समकालीन व गुरुभाई थे।

45. परसजी के वंशज आजभी कलरु गाँव में निवास करते हैं तथा परसजी के सेव्य चतुर्भुजानाथ के मंदिर के पुजारी हैं। मेड़ता-गोटन रोड़ पर परसजी की भव्य समाधि बनी हुई है जहाँ प्रतिदिन दर्शनार्थियों का ताँता लगा रहता है। वर्तमान पुजारीजी का नाम रामेश्वरजी है। ये धारणिया गोत्र के खाती जांगिड़ ब्राह्मण हैं।

46. परसजी की रचनाओं की उपलब्धता दादूद्वारा नरायना के तीन हस्तलिखित ग्रन्थों 2,496 व 561 में हुई है। मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित है। इसमें 10 पद, 9 साखियाँ व एक परसपुराण ग्रंथ मिला है। ग्रंथांक 2 में 10 पद व 9 साखियाँ मिली हैं। इसमें परसपुराण ग्रंथ नहीं है। ग्रंथांक 561 में प्रारम्भिक 5 पद, साखी क्रमांक 7 व 9 राग धनाश्री के पद के रूप में उपलब्ध हैं। इसप्रकार इसमें हैं तो सात पद किन्तु नया एक भी पद नहीं है। साखी कुल पाँच हैं। प्रारंभिक 4 साखियाँ 496 से मिलती हैं। पाचवीं साखी नई है जिसको यहाँ दंसवीं साखी के रूप में लिखी गई है। परसपुराण 496 व 561 दोनों में है। इसमें आठ पद हैं किन्तु भणिता आखिरी पद में है। अतः इसको ग्रंथ कहा गया है।

47. रज्जब की सरबंगी व गोपालदास की सरबंगी सरह-चिन्तामणि में भी परसराम छाप की रचनाएँ हैं किन्तु उनमें से कौन-कौन सी परशुरामदेवाचार्य की व कौन-कौनसी परसजी की हैं, तुलना करने पर ही अलग-अलग हो सकती हैं।

48. रज्जब की सरबंगी में 'परस' व 'परसराम' छाप की कुल 18 रचनाएँ हैं जिनमें से 5 पद व 13 साखियाँ हैं।

49. गोपालदास की सरबंगी में कुल 40 रचनाएँ हैं जिनमें से एक पद 'साचौ रे धन

राम नाम' 8/39 व 96/8 दो स्थानों पर संकलित है। इसीप्रकार एक साखी 'श्रीगुरु राजा रंक सिरि' अंग 31/27 व 113/51 दो स्थानों पर संकलित है। सूक्ष्मतः देखें तो इस सरबंगी में कुल 38 रचनाएँ संकलित हुई हैं। इन 38 में से एक रचना ऐसी है जिसकी आधारप्रति में एक ही संख्या है जबकि सरबंगी में 3 है। 'रे सुपिनंतर संसार' नामक रचना आधारप्रति में 5 पंक्ति की एक रचना है। यही सरबंगी में 3 रचनाएँ होगई हैं। यदि सरबंगी की दृष्टि से देखें तो कुल 42 रचनाओं में से 2 समान रचनाएँ, एक-एक मान लेने से 40 रचनाएँ रह जाती हैं। इन 40 रचनाओं में से 'परस' एवं 'परसराम' नामकी 13 पद रचनाएँ व 27 साखी रचनाएँ हैं। आधारप्रति की कुल 28 रचनाओं से इस सरबंगी की 16 रचनाएँ समान हैं। शेष 24 रचनाओं का निर्धारण निम्बार्की परशुरामदेवाचार्य कृत 'परशुराम-सागर' के आधार पर नीचे किया जारहा है।

50. ध्यान देने योग्य बात यह है कि रज्जब की सरबंगी की कुल 18 रचनाओं में 10 रचनाएँ ऐसी हैं जो न गोपालदास की सरबंगी में मिलती हैं और न आधारप्रति में ही मिलती हैं। अतः इनके कर्तृत्व का निर्णय भी परशुरामसागर' के आधार पर नीचे किया जारहा है। रज्जब की सरबंगी की उक्त समान 8 रचनाओं में से 3 पद व 5 साखियाँ समान हैं। आधार प्रति का एक पद व एक साखी गोपालदास की सरबंगी के 2 पद व 4 साखियाँ समान हैं।

विभिन्न प्रतियों में उपलब्ध 'परस' व 'परसराम' छाप की रचनाएँ

		496	561	2	गो.स.	र.स.	प.खाती	प.निम्बार्की
1.	मीठौ लागै माहवा	1	1	1	8/38	-	✓	×
2.	साँचौ रे धन राम नाम	2	2	2	8/39	-	✓	×
3.	भली भई भुवनि पधारे मेरे राम	3	3	3	13/13.	32/5	✓	×
4.	आज ना द्यौस नैं भाव नैं जाऊँ	4	4	4	18/11	-	✓	×
5.	जोइ जोइ मोहि अचिरज होइ	5	5	5	13/16	-	✓	×
6.	आतमा रे लोभी बणिजारा	6	.	6	111/25	-	✓	×
7.	आतमा आनंद छंदे	7	.	7	.	.	✓	×
8.	जीयरा राम भणि रे राम भणि	8	.	8	.	.	✓	×
9.	अजपा जाप जपै जे कोइ	9	.	9	70/2	.	✓	×
10.	दादा डोकरा हो	10	.	10	107/11	.	✓	×
11.	साहिब तैं बहु दुनी भुलाई	11	8	.	.	.	✓	×
12.	केसौ कला अनंत तुम्हारी	12	9	.	.	.	✓	×
13.	दस औतार कहैं सब लोई	13	10	.	.	.	✓	×

14.	संन्यासी कपड़ी ब्रह्मचारी	14	11	.	.	.	✔	×
15.	फिरि फिरि तीरथ करै अयाणा	15	12	.	.	.	✔	×
16.	साधैं भूख मास उपवासी	16	13	.	.	.	✔	×
17.	केसौ कथा सुणी ज्याँ श्रवणा	17	14	.	.	.	✔	×
18.	कहैं एक थीं काज न होई	18	15	.	.	.	✔	×
19.	परस कहै मैं पारखू	*19	16	11	102/26	13/28	✔	×
20.	पीपै परस पटंतरै	*20	17	12	.	.	✔	×
21.	परस कहै रे प्राणिया	*21	19	13	17/38	.	✔	×
22.	परस कहै रे प्राणिया	*22	18	14	17/39	.	✔	×
23.	परस कहै रे प्राणिया	*23	.	15	17/40	.	✔	×
24.	तांबौ कणजौ मेलि करि	*24	.	16	66/16	.	✔	×
25.	रे सुपिनंतर संसार	*25	6	17	14/54-56	.	✔	×
26.	नाराइण तू साच झूठ च्यंत	*26	.	18	64/59	.	✔	×
27.	गुण गावै बावै करताला	*27	7	19	15/52	.	✔	×
28.	परस कहै पाणी बिना	*28	20	.	.	.	✔	×
29.	हरि राम कृष्ण मूल मंत्र	.	.	.	9/43	.	×	507
30.	हरि हिरदै तब बिघन न कोई	.	.	.	13/31	.	×	✔
31.	हरि सुमिरौ सोई सति बिचारौ	.	.	.	18/33	23/7	×	572
32.	माया अंति अतीत की	*.	.	.	22/67	.	×	✔
33.	अैसे हरि क्यूँ पाइये	.	.	.	24/6	101/21	×	44
34.	कहि सुणि भरम लगाइये	*.	.	.	24/56	.	×	✔
35.	माला पहरि न विष तज्या	*.	.	.	24/57	.	×	✔
36.	परसा मूंडूयाँ कुछ नहीं	*.	.	.	24/58	101/47	×	✔
37.	परसा प्रीतम आपणौं	*.	.	.	24/55	101/45	×	✔
38.	साध सँगति हरि भजन बिन	*.	.	.	25/76	.	×	✔
39.	नीर बिना निपजै नहीं	*.	.	.	25/77	.	×	✔
40.	सीप न निपजै स्वाति बिन	*.	.	.	25/78	26/38	×	✔
41.	ज्यूँ जल परसै सिंध कूँ	*.	.	.	25/79	26/39	×	✔
42.	परसराम बिधु आप दिसि	*.	.	.	31/26	.	×	✔
43.	श्रीगुर राजा रंक सिरि	*.	.	.	31/37	.	×	✔
					113/51	.	×	✔
44.	हरि तरवर बिस्तार कूँ	*.	.	.	31/35	.	×	✔
45.	परसा खोयौ प्रेमरस	*.	.	.	32/46	.	×	✔
46.	चँदन धतूरौ हंस बग	*.	.	.	40/24	.	×	✔
47.	अलख तोर गुन माधवे	*.	.	.	65/11	.	✔	×

48.	करम करै कोइ परसराम	*.	.	.	83/11	.	×	✔
49.	कहा जगत कै रूसणैं	*.	.	.	91/17	.	×	✔
50.	परसराम विधि आप दिसि	*.	.	.	113/59	.	×	✔
51.	सुनि सुत यहु परपंच पसारौ	*.	.	.	.	73/39	×	495
52.	देव दीनवन्धु तुम्है दोष नाहीं	.	.	.	.	39/15	×	549
53.	कहूँ ढमक्कै ढोल कै	*.	.	.	.	79/1	×	✔
54.	कहा चमारी बामनी	*.	.	.	.	82/47	×	✔
55.	जल के दोऊ सारखी	*.	.	.	.	82/48	×	✔
56.	परसी सुकचि न दुरि रहै	*.	.	.	.	82/49	×	✔
57.	कहि सुणि भरम लगाइये	*.	.	.	.	101/46	×	✔
58.	नील रंग्यौ तन परसराम	*.	.	.	.	101/48	×	✔
59.	परसा बानौ सिंघ को	*.	.	.	.	101/49	×	✔
60.	भेष बराबरि करि मिले	*.	.	.	.	101/50	×	✔

51. आधारप्रति व अन्यान्य के आधार पर परसजी अथवा परशुरामदेवाचार्य की कुल 60 रचनाएँ ऊपर सारणी में दिखाई गई हैं। प्रारम्भिक 28 रचनाओं में भणिता 'परस' है। ये सभी रचनाएँ पंचवाणी-पुस्तकों में परसजी की वाणी के शीर्षकान्तर्गत ही मिली हैं। अतः ये रचनाएँ निश्चितृतौर पर कलरु के धारणिया गोत्रीय खाती जात्योत्पन्न परसजी की हैं। इनमें से एक भी रचना निम्बार्कीय परशुरामदेवाचार्य कृत परशुराम-सागर में नहीं मिलती। शेष 32 में से 31 रचनाओं में भणिता या तो **'परसा'** मिलती है और या **'परसराम'** मिलती है। कहीं-कहीं परसराम **'प्रसराम'** भी लिखा मिलता है। परशुरामसागर से मिलाने पर इनमें से अधिकांश रचनाएँ मिल जाती हैं। अतः शेष 31 रचनाएँ निश्चिततः परशुरामदेवाचार्य निम्बार्कीय की हैं। रचना क्रमांक 47 में 'परस' की भणिता है और यह परशुराम-सागर में नहीं मिलती। अतः इस रामगिरी राग के पद **'अलख तोर गुण माधवे'** परसजी की रचना मानकर हमने यहाँ उपलब्ध कराई है। परशुराम सागर में भणिता 'परसा' या 'परसराम' मिलती है, मात्र 'परस' नहीं मिलती। अतः 'परस' भणिता के पद परसजी खाती के हैं व परसा तथा परसराम छाप के परशुरामदेवाचार्य के हैं। 'सरबंगी-सरह-चिंतामणि' के सम्पादक डॉ. विनान्त एम. कलेवर्ट, लुवेण, बेल्जियम ने परसजी व परशुरामदेवाचार्य दोनों की रचनाएँ 'परसराम' शीर्षक में एक साथ, एक ही रचनाकार के नाम से वर्गीकृत कर रखी हैं। रज्जब की सरबंगी का सम्पादन करते समय मेरे द्वारा भी समान ही भूल हुई है। अर्थात् मैंने भी परसजी व परशुरामदेवाचार्य की रचनाएँ एक ही शीर्षक में वर्गीकृत कर रखी हैं। उक्त सारणी द्वारा सूक्ष्म अध्ययन

कर अब इस भूल को सुधारा जारहा है।

52. मूलपाठ विभाग में सरबंगियों से पाठान्तर नहीं दर्शाए गये हैं। जिन रचनाओं के सामने * चिह्न है, वे पद न होकर साखी हैं।

53. पदों व साखियों में प्राप्त विषय-सामग्री के आधार पर परसजी पूर्णतः निर्गुणी सन्त सिद्ध होते हैं। प्रारंभ में ये सगुणमार्गी रहे होंगे, तबही इनके यहाँ चतुर्भुजानाथ की सेवापूजा का विधान था व है। कालान्तर में ये अपने गुरु राजर्षि पीपा की भाँति निर्गुणी सन्त हो गये होंगे। यह तथ्य इनकी रचनाओं से प्रमाणित है।

श्रीपरसजी की रचनाएँ

राग गुंड (1)

(1)

मीठौ लागै माहवा, निज नाँव तुम्हारौ।
दीनदयाल दया करौ, भौ पार उतारौ ॥टेक॥
रस रसना साकर मिल्या, सतगुर ले पाया।
अंग अमीरस संचर्‌या, राम नाम डिढाया ॥
ज्यूँ पानत बोली सारवै, त्यूँ रिदै सँभारूँ।
प्रेम नीर[1] ले भीजऊँ, बिसरूँ तो हाँरू ॥
क्रित करणी कूड़ी सबै, सति नाँव तुम्हारौ।
परस कहै मेल्हूँ नहीं, मोनैं खरौ पियारौ ॥1॥

पाठान्तर : 1. सीर (2);

(2)

साँचौ रे धन राम नाम, आदि अंत जे[1] आवै काम ॥टेक॥
साधूजन की संगति करौ, राम रसाइन कोठा[2] भरौ[2]।
राम नाम है अैसा[3] बली, लख चौरासी खड़भड़ टली।
परस कहै रिण मोटो टल्यौ, जमदाणी नौं[4] कागद बल्यौ ॥2॥

पाठान्तर : 1. ज्यौं (561); 2. पीवौ तिरौ (561); 3. मोटा (2); 4. को (2);

(3)

भली भई भुवनि पधारे मेरे[1] राम। सहर सुबस बस्यौ सारे[2] सब काम ॥
हरि आये के ए सहिनाण। मिटि गयौ तिमिर उदित भयौ भाण ॥

जब हरि हिरदै कीनौ[3] बास। छूटि गई सब आसा पास ॥
परस कहै हरि दीन दयाल। मूल गह्यौ तब छूटी डाल ॥3॥

पाठान्तर : 1. 'मेरे' नहीं है ग्रंथांक 561 में; 2. सरे (561); 3. कीन्हौं (2,561);

(4)

आज ना[1] द्यौस भाव नैं जाउँ। मिलै सन्तजन लें हरि नाऊँ ॥टेक॥
जो दिन सो दिन अैसो दिन[2] होइ। पंथ निहारत मिलिया सोइ ॥
मंगल कोटि करैं ग्वालनी[3]। राम भगति रुचि मानैं[4] घनी ॥
मन को[5] मनोरथ पुरवे घना। कहै परस मिले हरि के[6] जना ॥4॥

पाठान्तर : 1 नैं (561); 2. ग्रंथांक 561 में 'दिन' नहीं है। 3. कामणी (561); 4. उपजै (2); 5. के (2,561); 6. ग्रंथांक 561 में 'के' नहीं है।

(5)

जोइ जोइ मोहि अचिरज होइ। नेड़ौ[1] राम न देखै कोइ ॥टेक॥
एक न सेऊ फिरि फिरि थाके। ऐकूँ ऐकूँ[2] ऊँचे ऊँचे परबत ताके।
नीर प्रवेस करैं जल जोवैं। तप तीरथ ब्रत काया खोवै ॥
लुंचित मुनि[3] इक जटा बधावैं। एक उरधमुखि अंग झुलावै।
भेख अनेक एक नहिं जान्यूँ। आत्मा सूरूप धरि प्रभु न पिछान्यूँ ॥
साची कहूँ न मानैं कोइ। परस सकल मैं देख्या सोइ ॥5॥

पाठान्तर : 1. नेड़ै (561); 2. ग्रंथांक 561 में 'एकूँ' के स्थान पर 'ऐकौं' है वह भी एकबार ही; 3. मुंचित (561,2);

राग गुंड सोरठ (2)

(6)

आतमा रे लोभी[1] बणिजारा, हरिजी सूँ बणिज करीजै रे ॥टेक॥
हरि की कथा साध की संगति, मिलि चरणोदिक पीजै रे ॥
नाराइण नाँव वणिज नहिं जाण्यूँ, श्रीरंग काँइ न रातौ रे ॥
हाँकत बैल जनम सब बीतौ, लोभ मोह मदि मातौ रे ॥
घणी बार बणिज्यौ बणिजारा, काच सरोवर काया रे ॥
अबकै बणिज्या रतन पदारथ, गुण गोब्यंद का गाया रे ॥
ऊबट बाट उमाहा मारग, ते मारग परिहरिज्यौ रे ॥
आगै मिलहि चोर बटपाड़ा, जम क्यंकर[2] सूँ डरिज्यौ रे ॥
पंच बलद हरि कीरति लाद्या, मन खैंचै तहाँ चालौ रे ॥

आगै मिलै गोपालराइ दाणी, जिम मांगै तिम आलौ रे ॥
बैकुंठाँ नैं मारगि माल्हतां, सबल धणी नौं टांडौ रे ॥
परस कहै सब दाणी पेल्या, हरि नी भगति न छांडौ रे ॥6॥

पाठान्तर : 1. भोली (2); किंकर(2);

राग रामगिरी (3)

(7)

आतमा आनंद छांदैं, बाइ निज बीना।
ररंकार सबद सुभेद भेदं, परम रस लीना ॥टेक॥
संजोग जोग सुभाइ पूरिक, बाणि बिनाणी।
प्रेम तूंबा पवन नाली, सहज रस आणी ॥
गाइ ग्याता[1] प्राण दाता, पूरता भरता।
आदि रूप अनंत माधव[2], सिरजता हरता ॥
अनेक सुर नर रिष्य[3] मुनिजन, विष्न ची माया।
परस नौं स्वामी सुमिरताँ, परम पद पाया ॥7॥

पाठान्तर : 1. ज्ञाता (2); 2. राघव (2); 3. रिषि (2);

राग मालीगोडौ (4)

(8)

जीयरा[1] राम भणि रे राम भणि, भणत भूलै काँइ रे।
किं जोग जिग्य[2] न तप तीरथ, ना तुलै हरि नाँइ रे ॥टेक॥
राम भणती तिरी गणिका, अजामेल गयंद रे।
रीछ बन्दर[3] अमर कीने, ऐसो राम निर्द्यंद रे[4] ॥1॥
बघ धेनिक दैत तारे, पूतना परि जोइ रे[5]।
बिष्ष पावत अमर कीना[6], ऐसो संम्रथ सोइ रे ॥2॥
अनेक अधम नाँव[7] लेताँ, ऊधरे भौ पारि रे।
[8]संगि लीने अमर कीने, पुरिष अथवा नारि रे ॥3॥
सन्त सारे रामि तारे, कहै परस बिचारि हो।
पतित पावन बिरद तेरौ[9], सरणि राखि मुरारि हो ॥8॥

पाठान्तर : 1 जीय (2); 2. जिग (2); 3. बनर(2); 4. निरंद (2); 5 'रे' नहीं है (2); 6. कीने(2); 7. नाउँ (2); 8. यह पंक्ति ग्रंथांक 496 में नहीं है। ग्रंथांक दो से ली गई है। (2); 9. तेरा (2);

राग भैरूँ (5)

(9)

अजपा जाप जपै जे कोइ। नर नारी नाराइण होइ ॥टेक॥
अरधै उरधै धरै समाधि। मंन पवन ले उनमनि साधि।
धुनि में पैंसि रु धरै धियान। निहचल होइ गगन असथान ॥
सुखसागर में करै सनान। पावै निरमल परम निधान।
ब्रह्म अगनि ब्रह्म ले राचै। काम कलपना बंधन बाचै ॥
पाँच पचीसूँ परचै ग्रासै। हरिष सोग संसा भै नासै।
पखि अपखि दोऊ दिसि त्यागै। रहै निराला निरगुण लागै ॥
सतगुरु सबद सदा उरि राखै। मगन होइ राम रस चाखै।
ससि हर सूर दोऊ समि करै। ब्रह्म ज्योति ले हिरदै धरै।
आसा त्रष्णा सहजे जरै। दास परस सौ दूतर तिरै ॥9॥

पाठान्तर : ग्रन्थाङ्क 2 में समान पाठ है।

राग घनाश्री (6)

(10)

दादा डोकरा हो[1] अजहूँ चेतै नाहिं[2]।
चौरासी लख जोनि फिरैलो[3] छुटसि हरि के नाँइ ॥टेक॥
[4]थारा थाका नैंन बैंन परि थाका[4], जुरा पहूँती आइ।
माया मोह सकल थै[5] तूटौ, अब गोब्यंद गुण गाइ ॥
सदा बोलवै[6] अणबोल्यौ न रहै, चेतै नहीं गँवार।
धरमराइ की मार पड़ैली[7], [8]तब तूँ लहैलौ सार[8] ॥
[9]थारौ नाँक चुवै नैंन जल छाया, सबद न सुणई कानि।
अंतिकालि [10]बहु दुख पावैलो[11], कह्यौ हमारौ मानि ॥
[12]पल पल करत सकल जग बीत्यौ[12], आइ पहूँतौ काल।
परस कहै हरि सुमरि पनौता, [13]सुखसागर गोपाल ॥10॥

पाठान्तर : हो तू (561); 2. आइ (561); 3. फिरैगो (561); 4. थाके नैन बैन पणि थाके (561); 5. तैं; 6. लवै (2,561) 7. पड़ैगी (561); 8. जब र लहैगौ सार (561); 9. थारौ 561 में नहीं है। 10. तू बहु (561); 11. पाइसि (561); 12. पल पल जाइ अवधि दिन आवै (561); 13. गुणसागर (561);

राग रामगिरी (3)

(11)

अलख तोर गुन माधवे, कोई पार न पावै।
संकर अहिनिसि चितवै, रिषि नारद गावै ॥टेक॥

चारि बेद ब्रह्मा कूँ दीया, तेऊ राखि न जाना।
बलि आगैं सुंमृत कथै, तिनि प्रभू न पिछाना ॥
एक कहैं औतार लोकेस्यां भू ध्यावै।
के सिव सकती ओलौं प्रभू पार न पावै ॥
रसना हरि गुण गाइलैं, अपणी मति सारै।
भगत बछल कहिये हरी, यौं परस पुकारै ॥65/11॥

ग्रंथ परसपुराण

साहिब तैं बहु[1] दुनी भुलाई। समझै नाहीं[2] क्यूँ[2] समझाई।
झूठौ झूठ कहत मन मानैं। साचौ कहताँ को नहिं जानैं ॥1॥
नाराइण गुण [3]सुण्याँ न भावै। माया कथा प्रीति चित लावै ॥
ताथी औगुण होइ धन खोवै। निरखि निहारि न्यानि नहिं जोवै ॥2॥
जनम अनेक करत मल लागा। ते मल धोवै नहीं अभागा ॥
खरच न होई सुमरण कीजे। जपताँ राम अभै पद लीजे ॥3॥
सुणि परमोध न चेतै कोई। निश्चै हरि बिन मुक्ति न होई ॥
....॥4॥

नाराइण गुण गाइ अयाणा। दिन दिन नौपण[4] देइ पयाणा ॥
पाछै जुरा काल नी बारी। तब ह्वै हीणी बुधी तुम्हारी ॥5॥
ब्यापै जुरा काल दिन आया। तब चित में चेतन उपजै भाया ॥
नौपणि सतगुरु सेव न जाणी। केसौ करणी काँइ न पिछाणी ॥6॥
क्रोध लोभ बहु मोह उपाया। ताथी परमग्यान नहिं पाया ॥
साहिब नी सेवा न विचारी। अब आई दुख देखण नी बारी ॥7॥
अबकी बारी सेव चुकाणा। तो चौरासी लख भवसि अयाणा ॥
रे भागहीण हरि भगति न साधी। ते दुख गर्भ सहैं अपराधी ॥8॥
कीट पतंग भवैं चौरासी। छूटै नहीं काल क्रित पासी ॥
थोड़ी आव घणा दुख पावै। पुनरपि मनिष जनम नहिं आवै ॥9॥
जो नर नाराइण गुण गावै। सो निश्चै निरभै पद पावै ॥
कृष्ण द्विपाइण बचन बिचारी। रे मन सव परहरि भजि चरन मुरारी ॥10॥
रे मन गुरु चरणाँ चित लाई। जाथी राम भगति निज पाई ॥
पाई भगति जीव ठहराणा। कृपा करी नाराइण जाणा ॥11॥1॥

केसौ कला अनंत तुम्हारी। कहु क्यूँ जाणैं जन मल धारी ॥

सिव ब्रह्मादिक पार न पाया। सुर रिषि मुनि जन भरमि भुलाया ॥1॥
थंभ बिना धर गगन रहाया। तामें दुनी मोह बहु लाया ॥
थोड़ै जीवणं मरण बिसार्‍या। क्रोध लोभ बहु मोह पसार्‍या ॥2॥
देखि रूप ग्रिह प्रीति लगाई। तासूँ केसौ कीइ ठगाई ॥
जब लग काल बाण नहिं बाचै। तब लग सब दिन भेद्यौ साचै ॥3॥
लागै काल बाण दुख पावै। तब रसना पहड़ी काँइ न भावै ॥
पहली रहतौ आपण प्राणा। जब चेत्यौ तब लागे बाणा ॥4॥
पहली बुधि हरि चरणन लाई। देखि सजन जन कीइ बडाई ॥
कीइ बडाई बडपण जाणैं। सेवग साहिब नैंन पिछाणैं ॥5॥
साहिब मुँह में देसी खेहा। माटी में मिलि जासी देहा ॥
उतपति खपति जास प्रभु सारै। ता साहिब नैं कौन बिचारै ॥6॥
जिणिहिं बिचार्‍या तिणि सुख पाया। तन मन धन हरि चरणाँ लाया ॥
जिवत मृतक ह्वै जोति समाया। गया कलेस बहुत सुख पाया ॥7॥
वैसा गुरु की हूँ बलिहारी। जाकी संगति मिलै मुरारी ॥
मिले मुरारि कवण सहनाणी। विष ज्यूँ लागै प्रीति पुराणी ॥8॥
हरि गुण साँभलि प्रीति लगावै। वे जन अमरापद कूँ पावै ॥
जब लग च्यंता क्रोध न जाई। तब लग नहीं भगति निज पाई ॥9॥
च्यन्ता क्रोध गया मन सीतल। औषदि नाराइण गुण[5] निरमल ॥
ज्याँह लिया त्याँ बहु सुख पाया। गुरु परकास्या रोग गमाया ॥10॥
गुरु पाणी ज्यूँ प्रेम लगावै। पावै सो अमरा पद पावै ॥
पाथर पाणी क्यूँहि न भीजै। गुरू बिणा मूरख क्यूँ रीझै ॥11॥
अकथ कहाणी कहत न मानैं। ताथी आवै छानैं छानैं ॥
जब लग परगट होइ न नाचै। तब लग सब दिन भेद्यौ[6] साचै ॥12॥
करता करै जु आपो भाणा। ताकी सेवा सति करि जाणा ॥
हूँ सेवग तूँ साहिब मेरा। सरणैं रहूँ चरण दे तेरा ॥13॥
भगतबछल तेरी[7] सरणाई। आगै शिव ब्रह्मादिक रहे समाई ॥
निरभै निस्वै ज्याँह पद पाया। त्याँहनैं कृपा करी रामराया ॥14॥
कायर बपुड़ा जे मतिहीणा। हरि बिण मरै औतरै खीणा ॥
पसु पंखी ज्यूँ जनम गमाया। दहदिसि दौड़्या ग्यान न पाया ॥15॥
कर्महीण जे माया ध्यावै। रामभगति बिन मुकति न पावै ॥16॥
दुरगति फिरैं नहीं दिसि काँई। पहलै भै पूजी महामाई ॥
इणि भौ सूकर ज्यूँ दिन पूरै। अपणा दुख ब्याकुल नैणैं झूरै ॥17॥2॥28॥

दस औतार कहैं सब लोई। एकंकार न जाणैं कोई ॥
जे जाणैं जिणि भगति दिढ़ाई। ग्यान अगनि मन भीतर लाई ॥1॥
काम क्रोध त्रिष्णा सब जाली। आदि ब्रह्म सूँ लागी[8] ताली ॥
सो जाणैं तिणिकी चतुराई। सब अंतरगति रह्या समाई॥ ॥2॥
कोटि ब्रह्मंड खँड विधि पूरि निपाया। सो कस जननी पेट समाया ॥
पंडित पढ़ि गुणि करौ बिचारा !......................................॥3॥
लीला निमष लेइ औतारा। जोनि न आवै सारँगधारा ॥
ज्यूँ बाजीगर बाजी लावै। झूँठी बाजी सभा रँजावै ॥4॥
त्यूँ बहु रूप करै विस्वंभर। मोह्या सुर रिषि जन पन्नग नर ॥
ताकौ मरम न जाणैं कोई। भुवन चतुरदस बरतै सोई ॥5॥
जाकै माइ बाप नहिं कहिये। ताकौ क्यूँ परमारथ लहिये ॥
रूप अनन्त कला बहु लाई। अबिगति की गति लखी न जाई ॥6॥
कथणी लिखणी सबै भुलाया। बाद विवादै धंधै लाया ॥
लोकाचार बिचारा टाली। यूँ नाराइण की भगति निराली ॥7॥
लोक सबै माया उरझाया। माया मोहित ग्यान न पाया ॥
जीव एक बहु बंधन लागा। ताथैं चेतैं नहीं अभागा ॥8॥36॥

संन्यासी कपड़ी ब्रह्मचारी। ए भ्रमि भूल्या तज्यौ मुरारी ॥
नगिन ड्यगंबर[9] ह्वै भ्रमि लागा। यूँ सिध होई तौ पसु नागा ॥1॥
सब सिधि होइ ध्याइ धरणीधर। छूटै पासि जाइ च्यन्ता नर ॥
कान फड़ाइ भसम तनि लाई। ब्यापै खुध्र्या ल्याव कुछ माई ॥2॥
घरि घरि फिरै तौ सुनहुँ भुसावै। बांध्यौ भरमि न छूटण पावै ॥
सिध अनन्त न एक बिचारै। गये भुवंगम लीह निहारै ॥3॥
काज़ी सेख निमाज़ गुजारै। खून बिना पसु पंखी मारै ॥
रोजा धरै भरमि बहु लाया। दीइ बांगि साहिब नहिं पाया ॥4॥
सेतांबर बहु भरमि भुलाया। फाड़्या कान मूंड खोसाया ॥
बाँचै कागद कथा कहाणी। वा जगनाथ नी जुगति न जाणी ॥5॥
तागौ पहरि करी बभणाई। खरी प्रीति माया सूँ लाई ॥
आगै ब्रह्मा विष्णु भुलाया। बिसर्‌यौ ब्रह्म करै दिरघाया ॥6॥
ताकौ क्यूँ परमारथ लहिये। परमग्यान बिण बाभण कहिये ॥
उरैं परैं आगाँ लग जोई। आई कहत न उधर्‌यौ कोई ॥7॥
निरखि निहारि न्यानि निसि जोई। मार्‌यौ उघड़े पणि तार्‌यौ न कोई ॥8॥4॥44॥

फिरि फिरि तीरथ करै अयाणा। जहाँ जाइ तहाँ नीर पखाणा ॥
फूटे लोइण अंध अजाणा। घरि ही देखूँ नीर पखाणा ॥1॥
नीरि पखाणि न सीधौ कोई। गोडा फोड़ि मुवा बहु लोई ॥
हरि गुण च्यंति ग्यानि नित न्हावो। जन संगति अमरापद पावो ॥2॥
जिहि ह्रिदै निमस्यौ अंतरजामी। ते निसकल में देख्यौ स्वामी ॥
सो नाहीं मिनखा औतारा। जासुँ बोलै परगट सारँगधारा ॥3॥
ए परमारथ झूठ म जाणी। गंग प्रवाह तिरे जस बाणी ॥
नर रे गंग प्रवाहि न सीधौ कोई। इणि परवाह तिरे सब कोई[10] ॥4॥
पूछौ सासतर बेद पुराणा। तबै न चेतौ मूढ अयाणा ॥
सुरति बिणा नित सुणौं पुराणा।.. ॥5॥
बेद पुराण सुणे का होई। जे संका भरम न छाडै कोई ॥
जिणि संका ब्रह्मादिक मोह्या। रुद्रादिक सब ताड़ि बिगोया ॥
सुर नर बांध्या छूटै नाहीं। अैसी संका है सब माहीं ॥6॥5॥50॥

साधैं भूख मास उपवासी। छूटैं नहीं काल क्रित पासी ॥
भूखाँ मरि सिध हुवा न कोई। निश्चै हरि बिनि मुकति न होई ॥1॥
रुकमांगदि बहु बरत दिढाया। तिणि नाहीं अमरापद पाया ॥
धर्मांगदि म्रितु झालण लीवी। तब करुणामय दया जु कीवी ॥2॥
दान अनेक देहिं विधि पूरी। प्राण गमैं हेमाजलि चूरी ॥
बहु तप साधि दग्ध दुख काया। अपणैं मतै भरमि बहु लाया ॥3॥
सुखनिधि सेवा करि चित लाई। हणौं विभीषण देखौ भाई ॥
उनकी करणी जाइ न करिये। जोग जग्य ब्रत दान बिनि तिरिये ॥4॥
होम जग्य दत बलि बहु कीया। सोइ पयालि नराइणि दीया ॥
दान पुंनि का गरब गमाया। हरि बिन कुण दातार कहाया ॥5॥6॥55॥
केसौ कथा सुणी ज्याँ श्रवणा। ते नर छूटा आवागवणा ॥
अंबरीष धू निश्चै तार्‌या। सिव सनकादिक सरणि उबार्‌या ॥1॥
सहित द्रोपदी पाण्डू तार्‌या। अगणित भगत अनंत उधार्‌या ॥
सुख नारद गोब्यँद गुण गाया। तिणि निश्चै निर्भै पद पाया ॥2॥
बारा क्रोड़ि सुग्रित प्रहिलादिक। पदम अठारह बंनर तारिक ॥
ऐताँ क्रिपा कीइ प्रभु हरी। अजामेल गनिकाहू उधरी ॥3॥
सुर नर गण गंध्रप सब तारे। सुमिरत नाँव अनेक उधारे ॥
असौ रामजी जो नर ध्यावै। सो निश्चै निरभै पद पावै ॥4॥7॥59॥

कहैं एक थीं काज न होई। एकौ मरम न जाणैं कोई ॥
एकौ पवन बहै ब्रह्मंडे। एको सूर तपै नवखंडे ॥1॥
एकणि पाणी जगत उपाया। जीव एक बहु रूप लगाया।
एकै काठै लोह पखाणैं। ताथैं बहुविधि घड़ै सुजाणैं ॥2॥
एकण लूण बिणा सब फीका। एकण घ्रित भोजन सहु नीका ॥
एकै अन्न एक आधारौ। एकै कहत न लाभै पारौ ॥3॥
एकौ चांद एक ताराइण। एकौ अनँत कला नाराइण ॥
भांजै घड़ै सँवारै सोई। ताकौ मरम न जाणैं कोई ॥4॥
जो जाणैं सोई भल जाणैं। अणजाणत का कथै बखाणैं ॥
कहै परस सरणागति आया। निरभै पद दीजे रामराया ॥5॥8॥64॥

इति परसपुराण ग्रंथ

पाठान्तर : 1. सब 2. नहीं क्यूँही 3. गुण्याँ 4. नौतंम 5. 'गुण' नहीं है 6. भेद्या 7. तोरी 8. लाई 9. डरगंबर 10. लोई।

साखी

परस कहै मैं पारखू, [1]परख्यौ राम रतंन।
तप तीरथ ब्रत काच मणि, त्याँह क्यूँ मानैं मंन ॥1॥
[2]पीपै परस पटंतरौ, हूवौ मूल धुराँह।
हीरै हीरौ बेधियौ[2], प्रगटी ज्योति घराँह ॥2॥
परस कहै रे प्राणिया, कुल कारण नहिं कोइ।
तवै कटारी आरसी, कुल एकैं ही होइ ॥3॥
परस कहै रे प्राणिया, कुल कारण नहिं कोइ।
आँक धतूरौ आँबफल, कुल एकै ही होइ ॥4॥
परस कहै रे प्राणिया, कुल कारण नहिं कोइ।
चड़स करौती पाणही, कुल ऐकै ही होइ ॥5॥
तांबौ कणजौ मेलि करि, देबी एक उपाई।
भली घड़ी सूनार कै, देखि[3] वाकी सकलाई ॥
घर में आणी मोल दे, जणी पाँच सात मिलि राति जगाई ॥
आगै मेली लड़गची[4], सुखाई गई बिलाई।
भोपी धूजै धड़हड़ै, पवन उबासी खाइ।
परस कहै हरि नाम[5] बिन, सो नर परलै जाइ ॥6॥

[6]रे सुपिनंतर संसार, तास की आसा माँडी[6]।
जाव जास के हाथि, तास की सेवा छाँडी ॥
रे नर मूढ़ मुगध जाच्यंध[7], जुग जगदीस न जाणही।
देव रूप मानवी[8], तास तजि[9] सिला बखाणही।
कहै परस परखै नहीं, कणह[10] काच तुल तोलता।
निज नाराइण परहर्‌यौ, दुख देखै माया रता ॥7॥

नाराइण तूँ साच झूठ, च्यंत[11] च्यंतीजै।
करता करै स होइ तौ, प्राणी न पतीजै ॥
आस सास मांडै घणी, दिसि ताकै औदिसि गमैं।
माली बाड़ी केलवै, वो सींचे प्रभु सूकवै[12] ॥
सूक विही नीला करै, एक भरै एक रीचवै।
रामराइ भांजै घड़ै कहै परस साचौ चवै ॥8॥
गुण गावै बावै करताला। जाणैं नहीं रूप गोपाला ॥
[13]जाण्याँ पछै बहुत सुख जाणी। अणजाणत का कहै कहाणी ॥
माला तिलक [14]बिंब तनि[14] मूँका। [15]होइ सोभति पणि[15] करणी चूका ॥
करणी क्रम बंधण नहिं छूटा। तौ रसना राम जपै क्या झूठा ॥
भीतरि धोइ म धोइसि काया। लंपट कपट रूप चित लाया ॥
आतमराम अवर नहिं दूजा। करिये कहौ कवण[16] की पूजा ॥
जोगी जपी तपी सिंन्यासी। याँ देख्याँ क्यूँ छुटै भौपासी ॥
एक सरूप सकल में दीठा। तब मन मान्या यहु रस मीठा ॥
समदरसण [17]पहरसि जपमाला। कहै परस मिलसी गोपाला ॥9॥
परस कहै पाणी बिना, तृपती कदे न होइ।
रामभगति बिन मानवी, पारि न पहुँच्या कोइ ॥10॥

पाठान्तर : 1. परख्या(561); 2. पीपा परस पटंतरा; हूवा मूल धुराँह। हीरै हीरा बेधिया (561); 3. देख्य (2), 4. ल्हड़गची (2); 5. नाँव (2); 6. सुपिनंतर संसार है, ताकी आसा मांडी। (561); 7. जाचंध (2,561); 8. मानही (2); 9. तति (2); 10. कहण (2); 11. चिंत (2); 12. केलवै (2); 13. जानैं (561); 14. धरि ब धरि (561); 15. हुइ स सोभति (561); 16. कौंण (561); 17. पहरी (561);

भक्त अंगद तँवर

जीवनी : रायसेनगढ़, मध्यप्रदेश का एक जिला मुख्यालय है। पहले रायसेनगढ़-राज्य तँवर राजपूतों द्वारा शासित था, तत्पश्चात् यह मुसलमानों के अधीन होगया। राजर्षि अंगद रायसेनगढ़ के तँवर राजपरिवार के ही सदस्य थे। इनका भतीजा सलहदी, रायसेनगढ़ का प्रथम तँवर राजपूत राजा था। अस्तु!

अनन्तदास 'अग्रावत' वैष्णव कृत 'अंगद की परचई', भक्तमाल की टीकाओं आदि से ही इनके जीवन को दो घटनाओं का पता चलता है। अन्यथा ऐतिहासिक ग्रंथों में स्वतंत्र रूप से इनके बारे में कुछ नहीं मिलता। इनके भतीजे सलहदी के संदर्भ से ही इनका परिचय मिलता है।

अनंतदास कृत अंगद की परचई एवं भक्तमाल की भक्तदामगुणचित्रणी टीका के अनुसार इनकी तीन पत्नियाँ थीं जिनमें से एक जो सुंदर, सुशील और भगवद्भक्त थी, इनको अत्यन्त प्रिय थी। अंगद नास्तिक किम्वा कामुक व्यक्ति थे। खाना, पहनना, राजा की सेवा-चाकरी करना, शिकार खेलना, मौजगस्ती करना ही इनकी दिनचर्या थी। कभी-कभी ये अपनी भक्तिमती प्रियतमा पत्नी से खीजते भी थे तथापि उसके अन्यान्य गुणों के कारण बस उसीसे सम्बन्ध रखते थे।

ये एकबार जंगल में शिकार खेलने गये। लौटने पर देखा कि इनकी प्रियतमा पत्नी के महल में एक सन्त विराजमान हैं। सत्संग का आयोजन चल रहा है। इन्होंने पत्नी से पूछा, ये कौन हैं और इनको यहाँ क्यों बुलाया गया है?

इनकी पत्नी ने कहा, ये मेरे गुरु हैं। सत्संग करने आये हैं। आप भी इनका आदर-सत्कार कर, इनके उपदेश सुनो जिससे कि आपका लोक और परलोक दोनों सुधर जायें।

पत्नी की बातें इनको शूल जैसी चुभीं, मानों इनकी छाती पर से सर्प गुजरा हो। इनका मुख लाल होगया। भौंहें चढ़ गईं। जीभ अंटसंट बोलने लगी। मस्तिष्क ने सन्तुलन खोदिया। इन्होंने पत्नी से अधिक कुछ न कहकर सन्त से कहा, आप सन्त हैं। मेरी पत्नी स्त्री है। आप जानते हैं, स्त्रियों को स्वर्ग-नर्क की कोई जानकारी नहीं होती। ये प्रायः अवगुण की खान, कपटी, झूँठी, मक्कार, मूर्ख, अशुद्ध होती हैं। इनकी संगति में रहने से काम की ज्वाला प्रचंड होती जाती है, ज्ञान-ध्यान का नाश हो जाता है। अतः इनके यहाँ आना-जाना, कथा-सत्संग करना आप जैसे त्यागी-वैरागी सन्त

द्वारा, स्वयं का नाश करना ही है। कृपा करके आप यहाँ से पधारें और अपने आश्रम में ही भजन-पूजन करें। मेरे यहाँ नहीं पधारें। आप स्वयं तो अपना जीवन नष्ट करने पर तुले ही हो, मेरा भी करने पर तुले हो। क्या आपने कभी भगवान् को देखा है, जिसकी इतनी लम्बी-चौड़ी बातें कर रहे हो?

सन्त वादविवाद न करके चुप रहना पंसद करते हैं। रानी (अंगद राजा नहीं थे। अतः इनकी पत्नी केलिये रानी लिखना उचित न होकर ठकुरानी लिखना उचित है। फिरभी जनसामान्य रानी शब्द से जल्दी व सुकरतापूर्वक समझेंगे, इस आशय से ही हमने अंगद की पत्नी को 'रानी' शब्द से अभिहित किया है) के गुरु ने भी चुप रहकर वहाँ से रम जाना ही ठीक समझा। इधर रानी, अंगद से नाराज़ होकर एक बंद कमरे में बैठ गई। अंगद बिना पत्नी के रात्रि व्यतीत नहीं कर सके। वे बारबार पत्नी को मनाते रहे किन्तु रानी मानने को तैयार नहीं हुई। उसने कहा, गुरु का अपमान सहन करने से अच्छा, मरना है। मैं मरूँगी।

अंगद, रानी की बात सुनकर घबरा गये। स्त्री, पुरुष की कमज़ोरी होती है। अंगद के सम्बन्ध में यही रानी सर्वाधिक कमज़ोरी थी। अतः अंगद ने रानी की शर्त 'सन्त-संग करना चाहिए' मानली।

चार दिन पश्चात् पति-पत्नी दोनों मिले। घर में भक्ति का वातावरण होगया। सन्तों का आवागमन होने लगा।

रानी ने कहा, आप जाइये और उन सन्त से क्षमायाचना कीजिये जिनका तिरस्कार आपने किया है। मरता क्या न करता। अंगद गये। पत्नी के गुरु को ही अपना गुरु बनाया और पत्नी के संसर्ग से रामनामानुरागी बन गये।

एकबार मांडू के सुलतान महमूद ने रायसेनगढ़ पर हमला बोल दिया। सलहदी के साथ अंगद भी युद्ध में गये। भगवत्कृपा से सुलतान हारकर भाग गया। सलहदी की विजय हुई। सलहदी ने सुलतान का डेरा लूटा जिसमें अंगद को सौ हीरों से जड़ित एक छत्र मिला। उसमें एक हीरा अतीव मूल्यवान था जिसको निकालकर अंगद ने अपने पास इसलिये रख लिया कि जब भी जगन्नाथपुरी जाऊँगा, भगवान के मुकुट केलिए भेंट करूँगा। शेष हीरे बेच दिये। रकम से सन्तों को भोजन जिमा दिया। हीरों को बेचने की बात सलहदी ने सुनी। अंगद से जवाब-सवाल किये गये। अंगद ने साफ-साफ बता दिया, लूट का माल सैनिकों को मिलता है, राजा को नहीं; यह राज की नीति है। मैंने राज की नीति का पालन किया है।

सलहदी ने कहा, 99 हीरे तुम्हारे, एक मेरा। एक मुझे दे दो। अंगद ने कहा, हीरा न मेरा, न तुम्हारा; यह तो भगवान् को अर्पित होचुका। अब यह उनका है। सलहदी ने कहा, यह हीरा यवनों के द्वारा प्रयुक्त होने से अपवित्र है। भगवान् इसको

स्वीकार नहीं करेंगे। मुझे दे दो। वैसे भी परमात्मा निर्गुण, निराकार व निष्काम है। उनको हीरा भेंट करने का कोई अर्थ नहीं है। अतः अच्छा है, मुझे दे दो। राजा सलहदी ने यह सारा सम्वाद अपने विश्वस्त सेवक के माध्यम से अंगद से करवाया। जब अंगद अपने निर्णय से टस से मस नहीं हुआ, तब सलहदी ने अपनी भुआ जो अंगद की बहिन व अंगद के ही साथ रहती थी को बुलाया और कहा, भुआजी! अंगद के भोजन में विष मिलाकर उसको मार डालो। मैं तुमको पाँच ग्राम की जागीर दूँगा। धन के लालच में अंगद की बहिन अंगद को विषमय भोजन खिलाने को तैयार होगई।

प्रतिदिन भोजन करते समय अंगद सर्वप्रथम अपनी इसी बहिन की बेटी को भोजन खिलाते थे। इसके पश्चात् स्वयं खाते थे। अंगद ने बहिन से कहा, आज भानजी कहाँ है? उसके बिना मैं भोजन नहीं करूँगा। तब बहिन ने सारा राज खोल दिया। अंगद को बोध हुआ, जो परिवार वाले एक हीरे केलिये मेरी जान मारने को तैयार होगये, ऐसे परिवार में रहने का क्या लाभ? हीरा भगवान् का है। भगवान् तक पहुँचा देना ही अच्छा है। ऐसा विचार करके, अंगद तत्काल जगन्नाथपुरी की ओर प्रस्थान कर गये। राजा सलहदी को ज्ञात हुआ कि अंगद हीरा लेकर जगन्नाथपुरी को प्रस्थान कर चुके हैं। तत्काल सैनिकों को पीछा करने को कहा। अंगद कुछ ही दूरी पर गये थे कि सैनिकों न उनको जा घेरा। अंगद ने कहा, मैं निकट में बह रही नदी-तालाब में स्नान करने के उपरान्त ही हीरा दे सकूँगा। सैनिकों ने अंगद का विश्वास कर लिया।

अंगद ने हीरा अपनी धोती की अंटी में बाँध रखा था। अतः हीरे सहित ही वे स्थानार्थ जल में प्रविष्ट होगये। भगवान से प्रार्थना की, प्रभो! मैं असहास होगया हूँ। या तो आप अपनी वस्तु मेरे से ले लो। अन्यथा ये सैनिक इसको बलात् मुझसे छीन लेंगे। ऐसी करुण पुकार प्रस्तुत कर अंगद ने अंटी में से हीरा खोला और ऊँचा हाथ करके जल में प्रवाहित कर देने का संकल्प किया। जैसे ही अंगद का हाथ ऊपर उठा, भगवान् जगन्नाथ ने हाथ बढ़ाकर हीरा अपने हाथ में लेलिया। अंगद को अपार आनंद हुआ। भगवान् के प्रति अनेकशः कृतज्ञता ज्ञापित की। अपने को धन्य कहा और भगवान् जगन्नाथ का यशगायन करते हुए बाहर निकल आये। सैनिकों ने हीरे को जल में गिराते व भगवान को अर्पित करते हुए देखा था। उन्होंने हीरे को पानी में गिरते देखा जबकि हीरे को भगवान् स्वयं लेगये। मूढ़ मानवों को विमोहित करना ही भगवान् की माया कहलाती है। सैनिक हीरे के सम्बन्ध में आगे कुछ करते, इतने ही में सलहदी भी वहाँ आगया, जहाँ अंगद व सैनिक थे।

सलहदी ने गोताखोरों को लगाकर हीरा ढुँढवाया। हीरा होता तो मिलता। सलहदी थक-थकाकर अंगद से भला-बुरा कहते हुए रायसेनगढ़ चला गया।

इधर भगवान् ने पुजारियों को स्वप्न में आदेश दिया कि मेरा भक्त अंगद यहाँ से सात सौ कोस दूरी पर है। मुझे उसने श्रद्धाभक्तिपूर्वक बहुमूल्य हीरा भेंट किया है। आप उसको ससम्मान ले आओ। अंगद पुरी में पहुँच कर सुखपूर्वक भगवान् का दर्शन करते रहे। भगवान् ने कहा, अब दर्शन का कार्य पूरा होगया है। आपको अपने रायसेनगढ़ जाना चाहिये। भक्त अंगद ने कहा, आपके दर्शनों को छोड़कर देश अथवा रायसेनगढ़ जाकर क्या करूँगा। सलहदी मुझे दण्डित करेगा, वह अलग। भगवान् ने कहा, सलहदी दण्डित नहीं करके तुम्हें महिमामण्डित करेगा। जाओ और वहाँ रहकर भगवद्भजन करते हुए भगवद्भक्ति का प्रचार-प्रसार करो।
रायसेनगढ़ आने पर सलहदी ने भक्त अंगद का जोरदार स्वागत-सत्कार किया। जागीर बक्षीश की। सम्मान दिया।
ऊपर लिखी जानकारी 'भक्तदामगुणचित्रणी' टीका के अनुसार लिखी गई है। इनके उपलब्ध पदों में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता जिससे कि भक्तमाल की उक्त जानकारी की पुष्टि होसके। इनकी रचनाओं से ये केवलाद्वैती विचारक मालूम देते हैं। दूसरी ओर इनके जीवनीकार इनको भगवान् जगन्नाथ का भक्त मानते हैं। यह विरोधभाषी बात है।
उक्त शंका का समाधान यही हो सकता है कि प्रारंम्भिकावस्था में ये सगुण-साकारोपासक रहे होंगे। जैसे-जैसे सत्संग का रंग चढ़ता गया होगा, ये निर्गुण-निराकार की ओर प्रवृत्त होते गये होंगे। अंततः जब इनकी वाणी प्रस्फुटित हुई होगी, तब ये पूर्णतः निर्गुण-निराकार से एकाकार होगये होंगे जैसाकि इनके पदांक नौ से जानने में आता है। कहते हैं, न तन है, न मन है, न अंगद नाम है। बस और बस, केवल ब्रह्म ही ब्रह्म है। तदतिरक्ति कुछ नहीं है। यह वैसा ही कथन है जिसमें कहा गया है, **'ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापरः।'** ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव ही ब्रह्म है। दूसरा कोई तत्त्व नहीं है।

अंगद के सम्बन्ध में ऐतिहासिक ग्रंथों से निम्न विवरण मिलते हैं।

1. अंगद ग्वालियर के तँवर राजपूतों के वंशज थे।
2. इनका भतीजा सलहदी खण्डार (जिला सवाईमाधोपुर, राजस्थान) का, ग्वालियर राज्य की ओर से सामंत था। खण्डार के एक मंदिर में मिले वि.सं. 1568 के शिलालेख से इसकी पुष्टि होती है।
3. वि. सं. 1570 में महाराणा संगाा ने अपनी पुत्री दुर्गावती से इस सलहदी का विवाह किया और इसको भेलसा (विदिशा) का परगना दहेज में दिया।
4. वि.सं. 1570 से ही यह भेलसा में रहने लगा। खण्डार में इसके काका अंगद रहते रहे।

5. इससमय महाराणा सांगा भी रणथम्भौर के किले में यदा-कदा रहते थे और अपनी स्थिति मजबूत करने के उद्देश्य से ही राणा सांगा ने सलहदी को अपना दामाद बनाया था।
6. माण्डू के सुलतान महमूद ने गागरोनगढ़ पर आक्रमण किया तब मेदनीराय ने राणा सांगा से सहायता मांगी। सांगा मय फौज गया और मेदनीराय, सलहदी आदि की सहायता से महमूद को हराकर भगा दिया।
7. अवसर का लाभ उठाकर सलहदी ने भेलसा सहित सारंगपुर, रायसेनगढ, चंदेरी आदि पर अपनी पकड़ मजबूत बनाली।
8. इस क्षेत्र में सलहदी काफी ताकतवर शासक बन गया। इसको कुचलने को अक्टूबर 1520 (सं. 1577) में माण्डू के सुलतान महमूद ने सलहदी पर आक्रमण किया। सलहदी ने सारंगपुर के निकट महमूद को बुरी तरह हराया।
9. भक्तदामगुणचित्रणी टीका व अंगद की परचई में भी अंगद व सलहदी द्वारा माण्डू के सुलतान को हराना लिखा है। परचई में सुलतान का नाम बहादुरशाह लिखा है, जो भूल है। बहादुरशाह उससमय माण्डू का न होकर, गुजरात का सुलतान था। सलहदी की सहायता से बहादुरशाह ने महमूद को वि. 1587 में हराया था तबही वह माण्डू का सुलतान बना था। इससमय बहादुरशाह ने सलहदी को उज्जैन का सूबा भी इनाम में दिया था।
10 इस प्रकार सलहदी दिन व दिन शक्तिशाली होता चला गया। बहादुरशाह सलहदी को इतना मजबूत होते देखना नहीं चाहता था।
11. इधर सलहदी को खण्डार के सूबे की व्यवस्था करने में मुश्किलें आने लगीं। खण्डार अंगद के अधीन बना रहा।
12. अंगद कभी रायसेनगढ़, कभी खण्डार रहते थे।
13. भक्तदामगुणचित्रणी टीका व अंगद की परचई के अनुसार अंगद को हीरा जड़ित छत्र उससमय मिला जब सलहदी व उस स्वयं ने माण्डू के सुलतान को हराकर भगा दिया। यह समय अक्टूबर 1520 सम्वत् 1577 का था। उससमय सुलतान महमूद था। भक्तदामगुणचित्रणी टीका सौ हीरों की सूचना देती है जबकि परचई एक सौ एक हीरों की सूचना देती है। परचई व टीका की सूचनाएँ अतिरंजित न होकर ऐतिहासिक सत्य हैं। देखें : तँवर (तोमर) राजवंश का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 225।
14. खण्डार के किले में अबभी अंगद का महल है। अंगद ने जिस सरोवर में हीरा भगवान् जगन्नाथ को समर्पित किया, वह बनासनदी के किनारे, खण्डार से 6 किलोमीटर की दूरी पर आज भी अवस्थित है। अनेक धर्मात्मा यहाँ आते हैं,

स्नान करते हैं, पुण्यार्जन करते हैं। दृष्टव्य : **भक्तमाल की गणेशदास व रामेश्वरदास कृत टीका। भाग तीन, पृष्ठ 628।**

15. जैसा टीका व परचई में लिखा है, राजा सलहदी ने भक्त अंगद से एक हीरा सीधे-साधे नहीं मांगा। उसने दूतों के माध्यम से मांगा। अंगद सलहदी के काका थे। जबभी रायसेनगढ़ में रहते, मुज़रा करने जाते थे। सलहदी उनसे सीधे ही पूछ सकता था किन्तु पूछ नहीं सका। इसका तात्पर्य यह है कि इससमय अंगद रायसेनगढ़ में न होकर खण्डार में थे। इसकारण सलहदी ने अंगद से दूतों के माध्यम से संपर्क किया। अतः टीका व परचई की सूचनाएँ सत्य हैं।

16. अंगद इससमय खंडार में थे, यह इस बात से भी प्रमाणीकृत होती है कि हीरा सरोवर में डालने के पश्चात् सैनिक किंकर्त्तव्यविमूढ़ होगये। इतने ही में सलहदी भी वहाँ आ पहुँचा। यदि यह घटना रायसेनगढ़ की होती तो सैनिकों के साथ सलहदी भी वहाँ होता, बाद में नहीं आता। चूँकि घटना खंडार के पास की है। अतः सलहदी बाद में आया। हीरा ढुँढवाया किन्तु मिला नहीं।

17. सलहदी ने रायसेनगढ़ में तँवर-राज्य की नींव जनवरी 1521 में डाली। इससे यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि सलहदी सन् 1513 में ही मालवा में आकर निवास करने लगा था। यहाँ की राजनीति को प्रभावित कर रहा था किन्तु विधिवत् उसने अपने नाम से राजसत्ता का सूत्रपात जनवरी 1521 ईसवी में किया और रायसेनगढ़ का स्वतंत्र राजा कहलाने लगा। चूँकि टीका व परचई के रचनाकाल उक्त काल से काफी परवर्ती हैं। अतः अनंतदास व टीकाकारों ने खण्डार का उल्लेख न करके रायसेनगढ़ का ही उल्लेख किया है।

18. भक्त अंगद का तँवरों की तवारीखों में अभीतक उल्लेख नहीं मिला है किन्तु अंगद सलहदी के काका थे, इतनी जानकारी परचई व भक्तमाल की टीकाओं से मिलती है। सलहदी का ऐतिहासिक विवरण मिलता है जिसकी कुछ विवेचना ऊपर की जाचुकी है। भक्त अंगद का काल सलहदी के समय के परिप्रेक्ष्य से निर्धारित किया जा सकता है।

19. सलहदी सम्वत् 1568 में ग्वालियर के राजा मानसिंह की ओर से खण्डार का सामन्त था। वि.सं. 1570 में राणा सांगा की पुत्री दुर्गावती से सलहदी का विवाह हुआ। दुर्गावती पटरानी थी। इसका अर्थ है, 1570 विक्रम में सलहदी की उम्र ज्यादा से ज्यादा 20 वर्ष की थी। काका के होते हुए भतीजा सामन्त बना, इसका तात्पर्य यह भी हो सकता है कि अंगद पद में काका रहे हों किन्तु उनकी उम्र सलहदी से कम हो। इसलिये अपनी वीरता व बुद्धिमानी का चमत्कार दिखाकर सामन्ती हाँसिल करने में सलहदी सफल रहा हो। फिरभी

यदि हम दोनों काका भतीजों को समवयस्क मानलें तबभी अंगद का जन्मवर्ष सम्वत् 1550 आता है।

20. इस सम्बन्ध में एक तर्क और दिया जा सकता है कि सलहदी के पिता पहले से ही खंडार के सामन्त रहे हों। इसकारण इसको सामन्ती मिल गई हो जबकि अंगद को न मिली हो। ऐसी स्थिति में हमें अंगद को सलहदी से कम से कम 35 वर्ष पूर्व जन्म लेने वाला मानना पड़ेगा। इस न्यायानुसार अंगद का जन्मवर्ष वि.सं. 1535 सुनिश्चित् होता है। मुझे यही जन्मसम्वत् अधिक उपयुक्त लगता है।

21. जैसा ऊपर लिखा गया है, सलहदी ने माण्डू के सुलतान महमूद को हराया था। पुनः गुजरात के सुलतान बहादुरशाह की सहायता से महमूद को मालवा से निकल जाने को विवश किया था।

22. बहादुरशाह विधर्मी था। अतः उसने सलहदी पर विश्वास नहीं किया। उसने सलहदी के बड़े बेटे भूपतिराय को ओळ (जमानत के रूप में) में अपने पास रख लिया। फिरभी बहादुरशाह सलहदी को समाप्त करने की सोचता रहा। अंततः सोमवार, 6 मई, 1532 ईस्वी को रायसेनगढ़ में पहले जौहर हुआ, फिर सलहदी, उसका भाई लक्ष्मणसेन आदि केशरिया करके शाके को उद्यत हुए और बहादुरशाह से लड़ते हुए रणक्षेत्र में खेत रहे। देखें : **तंवर राजवंश का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास**, पृष्ठ 232।

23. हमारा विश्वास है, अंगद अपने भतीजे राजा सलहदी के साथ इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए होंगे क्योंकि इस समय सलहदी का कुटुम्ब उसीप्रकार निश्शेष हुआ था जिसप्रकार चित्तौड़ की रावलशाखा रतनसिंह के साथ समाप्त होगई। यद्यपि सलहदी का बड़ा बेटा भूपतिराय बाद तक जीवित रहा। वह बहादुरशाह के साथ ही रहा और सन् 1535 में हुमायूँ के साथ माण्डू में लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ।

24. सलहदी का एक दूसरा पुत्र छत्रमल पहले ही मर चुका था। शेष दो पुत्र पूरणमल व चद्रभाणु तथा भूपतिराय का बेटा प्रतापसिंह मेवाड़ में रहे। शेरशाह के समय प्रतापसिंह रायसेन का पुनः शासक बना किन्तु शेरशाह ने प्रतापसिंह, पूरणमल व चन्द्रभाणु को भी सन् 1543 में अपनी कुटिल चालों में फाँसकर जौहर व शाका करने को विवश किया और इसप्रकार सलहदी के जो कुछ कुटुम्बी 1543 ईस्वी तक बचे थे, वे भी सर्वथा निश्शेष होगये। सलहदी के वंश में कोई नहीं बचा। देखें : **उक्त पुस्तक**, पृष्ठ 233-234।

25. उक्त ऐतिहासिक तथ्यों के आलोक में हमें ऐसा विश्वास होता है कि भक्त अंगद पहले शाके में ही रामशरण होगए। अतः भक्त अंगद का समय वि.सं. 1535

से 1589 तक माना जाना सर्वथा उचित व प्रमाणधारित है।

26. भक्तदामगुणचित्रणी टीका व अंगद की परचई में एक दो तथ्य भिन्न हैं। टीका में हीरा गिराने के स्थान से जगन्नाथपुरी की दूरी 700 कोस बताई है। परचई में दूरी न बताकर पुरी तक पहुँचने में लगे समय की अवधि तीन महिना बताई है।
27. परचीकार ने माण्डू के सुलतान का नाम बहादुरशाह बताया है। सलहदी ने बहादुरशाह को नहीं, महमूद को हराया था। अतः परचई की यह सूचना इतिहास से मंडित नहीं है।
28. परचई में हीरों की संख्या एक सौ एक जबकि टीका में सौ बताई गई है।
29. परचईकार ने अंगद को स्पष्टतः निर्गुणी भक्त कहा है।
30. परचई के अनुसार पुरी में अंगद एक वर्ष रहे। फिर भगवदाज्ञा के अनुसार रायसेनगढ़ आये। राजा ने पाँच गाँव जागीर में दिये।

रचनाएँ : राजर्षि अंगद की जीवनी पढ़ने से ज्ञात होता है, ये पुरी के जगन्नाथ भगवान् के भक्त थे जबकि इनके पदों से इनका ठेठ निर्गुणी भक्त होना सिद्ध होता है। इनके पदों पर केवलाद्वैतदर्शन का प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

पदों के मूलपाठ ग्रंथांक 496 से लिखे गये हैं। पाठान्तर रज्जव की सरबंगी, ग्रंथांक दो व 561 के आधार पर प्रस्तुत किये गये हैं। ग्रंथांक 561 में पदांक 3,4,5 व 10 कुल चार पद मिले हैं। ग्रंथांक दो में पदांक 4 व 10 कुल दो पद मिले हैं। रज्जब की सरबंगी में पदांक 4,5 व 9 कुल तीन पद मिले हैं। कुल रागों की संख्या 6 व पदों की संख्या 10 है।

राजर्षि अंगद का पहला पद उस परमतत्त्व का विवेचन करता है जिसके प्राप्त्यर्थ साधक निरंतर प्रयत्न करता है। वस्तुतः परमतत्त्व प्रयत्नसाध्य न होकर अनुभूति का विषय है जिसको अंगद ने चीन्हना=जानना=अनुभव करना कहा है। आत्मा और परमात्मा में लेशमात्र का भी अंतर नहीं है। आत्मा नीरूप है। अतः नीरूप आत्मा का अनुभव ही किया जासकता है। उसका दर्शन संभव नहीं। पवन नीरूप है। उसका उसके शीतल, मंद व सुगंध नामक गुणों से ही अनुभव होता है, अन्यथा नहीं। इसीप्रकार निर्गुण परमात्मा भी अनुभवैकगम्य है।

राजर्षि अंगद कहते हैं, हे मन! तू आत्मा में लीन हो जा, जिससे कि परमात्मा का अपरोक्षानुभव होसके। जबतक मन चंचल रहता है, तबतक परमात्मा का अनुभव उसीप्रकार नहीं होसकता जिसप्रकार हिलौरे लेते हुए स्वच्छ जल के तालाबादि के तले में पड़ी कोई वस्तु स्पष्टतया नहीं दिखती। परमात्मा का अनुभव तबही होता है, जब मन निर्मल व निश्चल हो। प्रश्न के द्वारा पूछते हैं, वह कौन है जो उन्मन्यावस्था

धारण करके तत्त्वरूप शून्य में ताली लगाता है। वस्तुतः उनमन्यावस्था कहने में तो सरल है किन्तु प्राप्त करने में दुष्कर है। बिना उसके मन को विश्वास नहीं होता। वह तत्त्व समस्त सचराचर में व्याप्त है। तीनों कालों में एकरस निरंतर रहता है। दृष्टि से देखने में नहीं आता। इंद्रियादिक से सर्वथा अतीत है; उनसे निराला-पृथक है। सभी में सर्वत्र, निरंतर-एकरस पूर्णरूपेण परिव्याप्त है, वह ब्रह्म। वह परमात्मा बिन्दु को मेट देता है। अबिन्दु स्वरूप है। वही शून्य व स्थूल में छिपा रहता है। जो ऐसे परमगोप्य तत्त्व में सदैव समरस हुए रहते हैं, वेही परमपद स्वरूप है ॥1॥

जिसको पाने का कोई पंथ ही नहीं है, उसको किस पंथ से चलकर प्रसन्न किया जा सकता है। वस्तुतः वह परमात्मा पंथ रहित है। आनंदघन स्वरूप है। मन के द्वारा चिन्तन करने में वह आता नहीं है। मन मायिक है। ब्रह्म निरंजन है। फिर मायिक मन अमायिक परमात्मा का कैसे चिंतन कर सकता है? अन्य का चिंतन करने से वह अन्य तत्त्व अच्छीप्रकार जानने में आ जाता है, ऐसा वेद कहते हैं किन्तु परमात्मा देखने में आता नहीं है। अतः ऐसी स्थिति में किसका चिंतन किया जाए? किसकी वंदना की जाए? परमात्मा कोई ऐसा-वैसा विषय नहीं है कि उसको तत्काल जान लिया जाए, प्रकाशित कर दिया जाए। वस्तुतः वह ब्रह्म अकल=कलाविभाग रहित, निश्चल है जो सहज रूप में प्रकाशित होता है ॥2॥

रामनाम ने मेरे मन को हर लिया है। मेरे मन का रामनाम से तादात्म्य होगया है। फलतः अब इससे सांसारिक-विषयों का चिंतन होना बंद होगया है। अब मैं भीख मांगकर खाऊँगा तथा रामजी का भक्त बन जाऊँगा। एक लाख हाथी व नौलाख घोड़ों के होने का क्या लाभ? मरने के पश्चात ये कुछ भी काम नहीं आते। मरने पर श्मशान में जाकर जलना ही पड़ता है या कब्रस्तान में गड़ना पड़ता है। आचार-विचारों से चतुर्भुज भगवान् की प्राप्ति नहीं होती। अहंकार करने से नरकों में जाना पड़ता है। अंगद कहता है, जो चिरकटा पहनकर हरि के गुणों का गान करता है, वह परमपद की प्राप्ति करता है।

गोपाल को ऐसा ज्ञान अथवा आचरण अच्छा लगता है जिसमें साधक जीते जी मृतक के समान होजाता है। संसार से पराङ्मुखता व सतत् हरिस्मरण में निरत रहना ही जीवित भी मृतक के समान माना जाता है। इसे ही जीवन्मुक्ति कहा गया है। वस्तुतः जीवित ही मृतक के समान वह होता है जो सुख-दुख रूपी द्वंद्वों को समान समझता है। संपति मिलने पर हर्ष व विपत्ति पड़ने पर विषाद नहीं करता। स्तुति व निन्दा के प्रति समभाव व आशा-तृष्णा से सर्वथा उपराम रहता है। काम व क्रोध को पास में फटकने भी न दे। अहर्निशि रामभक्ति करने के व्रत का पालन करता रहे। सर्वभूत प्राणियों में एक ही परमात्मा का दर्शन करे। जो उक्तानुसार आचरण करता है, वह

परमपद में निवास करता है। परमपद रूप परमात्मा का साक्षात्कार करता है ॥4॥ मेरा मन उस मन से एकाकार होगया है जिसके द्वारा यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड सृजित हुआ है। कल्पारंभ में ब्रह्म **'एकोऽहं बहुस्याम'** का संकल्प करता है और सृष्टि उत्पन्न होजाती है। इसको कुरान में **'कुनकुन'** करना कहा है, अल्लाह द्वारा। मन में ही मन छिपा रहता है। उसी मन के मध्य मन को मैंने प्राप्त किया है। मन के प्राप्त होजाने पर मन न्यारा होजाता है। यहाँ व्यष्टि मन का वर्णन है। व्यष्टि मन जब समष्टि मन से, निर्विषय मन से एकाकार होजाता है तब वह व्यष्टि मन, मन न रहकर ब्रह्म हो जाता है। विष्णुपुराण में इसीलिये कहा गया है, **'मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः'**; स्वामी रामचरणजी ने भी कहा है **'आतम कूँ नहिं ब्याधि, ब्याधि रोग मन मानिये। जिन ये तजी उपाधि, सुध सरूप ते जानिये** ॥5॥

पदांक छः मात्र एक ब्रह्म की सत्ता को सत्य बताकर अन्य सब कुछ को मिथ्या बताता है। **'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापरः। श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ॥'** मात्र एक माधव ही सत्य है। दूसरा कोई तत्त्व है ही नहीं। न गोकुल सत्य है, न मथुरा है। न गोकुल से मथुरा अथवा मथुरा से गोकुल आना-जाना सत्य है। न कंस, न काल और न ग्वालबाल ही सत्य हैं। उद्धव, अक्रूर व वनों के निवासी भी सत्य नहीं हैं। रात्रि, दिवस, वर्ष, मास ये सब भ्रम हैं। वस्तुतः आदि, मध्य व अंत में मात्र केशव ही रहता है जो सर्वत्र व्यापक है। घट, पट आदि में छिपा हुआ वही है। उसके अतिरिक्त दूसरा कोई तत्त्व ही नहीं है, फिर घट-पट में छिपा दूसरा तत्त्व कैसे हो सकता है। वह हरि समान, प्रकाशस्वरूप, स्वयम्भू है। वही सर्वत्र है। उसके अतिरिक्त दूसरा कोई तत्त्व है ही नहीं ॥6॥

भक्त अंगद तँवर के पद

राग सोरठ (1)

(1)

मन रे भए आतमा लीनं, ताथैं सहजि निरंजन चीन्हं ॥टेक॥
कौंण सुन्य उनमनी लगावै, तत ही कून पिछानैं।
कथत सुहेली करत दुहेली, ऐसे मन क्यूँ मानैं ॥1॥
सकल निरंतरि द्रिष्टि अगोचर, इंद्री विषै निरालं।
सबही मैं (है) सकल निरंतर, पूरण ब्रह्म पियारं ॥2॥
मेटै ब्यंद अब्यंद बिचारै, सुन्य थूल छिपि सोई।
तामें छिपि छिपि रहै निरंतरि, अंगद हरि पद सोई ॥3॥1॥

● इसका मूलपाठ ग्रंथांक 496 से लिया गया है।

(2)

कत पंथ चलइया रीझै रे, जाके पंथै नाहीं।
पंथ रहति आनँदघन पूरन, चित्त बिवर्जित च्यंतै काहीं ॥टेक॥
आन ब्यँदै थैं बेदै आछै, अैसी बेद पुकारै।
जो ब्यंदै तो देखै नाहीं, तब कहि काहि बिचारै ॥1॥
अैसी कछू या विषै नाहीं, जो ले ताहि उकासै।
अंगद अकल निहचल है सोई, सहज रूप परकासै ॥2॥2॥

● इसका मूलपाठ ग्रंथांक 496 से लिया गया है।

राग गौडी (2)

(3)

राम के नाँइ हर्‌यौ मन मोरा[1]। मांगि[3] भीष जन ह्वै हूँ तोरा[2] ॥टेक॥
इस लख हस्ती नव लख[4] केकाण। मूवाँ पीछै गोर मसाण ॥1॥
चतुराई न चतुरभुज पइये[5]। अहमेव थैं नरक सिधइये[6] ॥2॥
पहरि[7] चिरकटा हरि गुण गावै। अंगद कहै सु परमपद पावै ॥3॥

● इसका मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित है।

● पाठान्तरपाठ ग्रंथांक 561 व गोपालदास की सरबंगी 87//17 पर आधारित है।

1. मेरा (गो.स.); 2. तेरा (गो.स.); 3. मानि (561); 4. ल (गो.स.); 5. पाइये (561); 6. सिधाइये (561); 7. परहरि (गो.स.);

(4)

अैसा ग्यान गोपाल हि भावै। मृतक समान होई जो[1] आवै ॥टेक॥
दुख अरु[2] सुख दोउ समि करि जानैं। संपति विपति न हिरदै आनै ॥
अस्तुति न्यंदा[3] आसा छाडै। इन पाँचन्य[4] सूँ झगरौ[5] मांडै ॥
काम क्रोध की बात न चालै। अहनिसि भगति नेम ब्रत[6] पालै ॥
सब घटि राम एक करि लेखै। अंगद [7]कहसु[7] परमपद देखै ॥4॥4॥

● इसका मूलपाठ ग्रंथांक 496 से लिखा गया है।

● पाठान्तरपाठ रज्जब की सरबगी 81/4, गोपालदास की सरबंगी 76/7, ग्रंथांक 561 व 2 से ग्रहित है।

1. जे (र.स.); 2. ग्रंथांक 561 में 'अरु' नहीं है। 3. निंद्या (र.स., ग्रं. 561); निंद्या (गो.स.); 4. पंचनि (र.स. 562, गो.स.); 5. झगरा (र.स.); 6. प्रति (र.स.); 7. कहै (र.स.);

(5)

ता मन सूँ मन मिल्या हमारा। जा मन का यहु सकल पसारा ॥टेक॥
मन मंधे[1] मन रहै लुकाना। ता मन मंधे[2] मन[3] पहिचाना ॥
मन पाया मन भया निनारा[4]। अंगद भेट्या[5] राम पियारा ॥5॥

- मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित है।
- पाठान्तरपाठ रज्जब की सरबंगी 49/2 व ग्रंथांक 561 पर आधारित है।

1. माँहे (र.स.); 2. माँहि (र.स.) 3. मन हि (र.स.); 4. नियारा (र.सं.); 5. भेटे (र.स.)

(6)

केवल माधौ रे दूसरा[1] न कोई।
गोकल नाहीं मधुवन[2] नाहीं, आवागवन न होई ॥टेक॥
कंस नाहीं काल नाहीं, नहीं रे गवाली।
ऊधौ अदरूर नाहीं, सबही बनवाली ॥
राति दिवस बरिष मास, या कुछ भ्रमैं मानी।
आदि अंति मध्य[3] केसौ, ब्यापक सब जानी ॥
घट पट कुछ वोट नाहीं, दूसरा न कोई।
समिं प्रकास अंगद हरि, आपै है सोई ॥6॥

- मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित है।
- पाठान्तरपाठ गोपालदास की सरबंगी 63/9 पर आधारित है।

1. दूसरौ 2. मधवन 3. मधि।

राग केदार (3)

(7)

हरि बिन कौण उबारै[1] मना।
आवत जात सबै जग भरम्या, आपा पर न संभारै[2] मना ॥टेक॥
[3]तिहूँ लोक को महाराज ह्वैहै, कहूँ[4] नहीं सुख लेसा।
जामण मरण प्रवाह[5] पर्‌यौ है, तामें बहुत कलेसा ॥
अधम अनीति कहा नल[6] गरब्यौ, बिनसि जाइ खिण[7]माहीं।
पुत्र कलित्र देह धन माया[8], सबै काल बसि जाहीं ॥
[9]ब्रह्म रुद्र इंद्रादि असुर सुर[10], सतगुण [illegible] जाहीं।

छूटै देह जगत अंधियारा, [10]तिनहूँ की सुधि नाहीं[10] ॥
[11]सुपिन पाइ ब्रह्मंड झलकै, पराब्रह्म थैं[12] म्यासै।
अँगद एक अविगत[13] अविनासी, आप[14] ही आप[14] प्रकासै ॥7॥

● मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित है।

● पाठान्तरपाठ गोपालदास की सरबंगी 104/6 व रज्जब की सरबंगी पर आधारित है। 1. उबारै रे (र.स.,गो.स.); संभारै रे (र.स.,गो.स.) 3. तीन (र.स.) 4. तऊ (र.स.) 5. पड्यौ (र.स.); 6. नर (र.स.) 7. पल(र.स.); 8. संपति (र.स.); 9. ब्रह्म यंद्र रुद्रादि असुरसुर (र.स.); ब्रह्म रुद्र इंद्रादिक अस्वर स्वर (गो.स.); 10. तिनहूँ सुधी न पाई (र.स.); 11. सुपिना पाइ ब्रह्मंडु झलकौ (गो.स.); 12. तैं (र.स.); 13. अकल (र.स.); 14. आपै (र.स.);

राग नटनारायण (4)

(8)

पद निरखत किनि जाइ रे दिना। आप पिछानू रे मना ॥टेक॥
घट भरि ले उदिक चढोई। अैसा तूँ निहचना होई रे ॥
जे तूँ न डरसि न करसि न काई। तौ तूँ निमससि ठाँई को ठाँई रे मना ॥
अंगद कहै सुख सरगै नाहीं। सो[1] सुख सन्तनि माहीं रे मना ॥8॥

● मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित है।

● पाठान्तरपाठ अंतिम पंक्तिमात्र का गोपालदास की सरबंगी 25/53 पर आधारित। इस सरबंगी में यह पंक्ति साखी के रूप में उद्धृत है। 1. जो कुछ।

राग भैरूँ (5)

(9)

माधौ सोई सोई रे। मन सकलप विकलप कलपना ॥टेक॥
तन कै क्रिति नहीं मैं करता, ना मैं जोग न भोगी।
ना मैं बंध नहीं मैं मुकता, ना मैं प्रेम बिवोगी ॥
ना मैं बाहरि ना मैं भीतरि, ना मोहि उभै भियासै।
नहिं तन नहिं मन अंगद नाहीं, केवल ब्रह्म प्रकासै ॥9॥

● मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित है।

● पाठान्तरपाठ गोपालदास की सरबंगी 76/16 पर आधारित। पाठ समान है।

राग धनाश्री (6)

(10)

काहू देखै रे अनभूत अनूपम, अकल अभेद मुरारी।
अजर अमर अबिगत अबिनासी, वा मूरति की बलिहारी ॥टेक॥
झिलमिलाट चकमक[1] सो दीसै, जैसे जल में चंदा।
गहण मतौ[2] पणि गह्यौ न जाई, जैसे परमानंदा ॥
जैसे तुम[3] कहियत तैसे तुम[3] नाहीं, अविगत लख्या न जाई।
रूप न रेख बरण बपु[4] नाहीं, जन अंगद बलि जाई ॥10॥

● मूठपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित।

● पाठान्तर ग्रंथांक 561, 2 व गोपालदास की सरबंगी 73/8 पर आधारित।

1. जगमग (561, 2); 2. मतै (2); 3. तुम्ह (2, 561, गो.स.); 4. बप (2);

भक्तमाल की भक्तदामगुणचित्रणी टीका में भक्त अंगद तँवर

मूल

अभिलाष भक्त 'अंगद' कौ पुरुषोत्तम पूरन कर्‌यौ ॥
नग अमोल इक ताहि सबै भूपति मिलि जाचैं।
साम दाम बहु करैं दास नाहिन मत काचैं ॥
एक समै संकष्ट लेय पानी महँ डार्‌यौ।
प्रभो तिहारी वस्तु बदन ते बचन उचार्‌यौ ॥
पाँच दोय सत कोस ते हरि हीरा लै उर धर्‌यौ।
अभिलाष भक्त 'अंगद' कौ पुरुषोत्तम पूरन कर्‌यौ ॥113॥

चौपइया छंद

अंगद कथा सुनहु अंगद सम भक्ति भुजा शुभकारी।
भक्ति करी अंगद ह्वै अंगद कीन्हो तुष्ट मुरारी ॥
रायसेनगढ़ नृपति सलहदी ताको काको सोई।
जाके तीन तियनि में एकहि प्रिय लागत नहिं दोई ॥15॥
प्यारी सो गुणखानि रुपारी तिहि हरि भक्तिहिं धारी।
प्रथम विमुख अंगद पति ताको जाहि खिजत दै गारी ॥
एक बार अंगद नृप संगति खेलन गयो सिकारा।
सो तिय गुरुहिं बोलि गृह निज हरि कथा सुनत अविकारा ॥16॥

तबही अंगद आयो गृह में बैठा सन्तहिं देखा।
तिय पै कथा कहत लखि अंगद चित्त कुभाव अपेखा॥
ज्यों कामी निज तिया पास निज स्याला कूँ न धिजाई।
पीत रोग धर नर कूँ ज्यों सब विश्व पीत दिखलाई ॥17॥
त्यों अंगद तिय गुरुहिं निरखि ढिग रिस भर भूँह चढ़ावा।
तप्त सर्प ज्यों कलमलि बोल्यो संग प्रसंग न भावा॥
कहा तिया कूँ बोधत स्वामी कामी जाकूँ भावै।
मूढ़ जाति तिय कपट खानि है सदा अशुद्ध रहावै ॥18॥
स्वरग नरक की खबरि न इनकूँ ज्ञान पात्र नहिं जेई।
जब तब इनकी संगति नासहि ज्ञान ध्यान गुण ऐई॥
भलो सन्त सो अंत न बैठहि तिय को संग भुलाई।
यहु सुनि सन्त गयो उठि तबही तिया बहुत दुख पाई ॥19॥
तब पति पै तिय रूसि पाट दे गृह बसि मुख न दिखावै।
बिन तिय दरस परस पति तलफत वाही याहि सुहावै॥
करै मनावनि तिया न मानत कहत मरूँगी अबही।
मम गुरु को अपमान कियो तुम बचन लगायो तबही ॥20॥
मति बोलो मोसूँ मित्राई तेरी जानि परावा।
मेरी टेक न तजौं तजौं तन तब अंगद भय पावा॥
तिया वियोग सोग मन उपज्यो कामी तिय बस गाई।
अब तुम कहौ करौं मैं सोई पै तुम मुखहि दिखाई ॥21॥
भयो चारि दिन तुम हठ मांड्यो छांड्यो भोजन देहा।
तो बिन मोकूँ जलहु न भावै निरखि नेकु तो नेहा॥
तिय कहि नेह एह बस जानौं मानौं बात हमारी।
सन्त सेव कीजै सुख लीजै दीजै प्रीति तिहारी ॥22॥
तजि अभिमान काम कुटिलाई प्रभु की भक्तिहिं कीजै।
हम तुम मिलि हरि सुमिरहिं दुर्लभ नर तन लाहा लीजै॥
कीजै सन्त संग पुनि जाकरि सहज भव जल तरिये।
तरी काठ संगति लगि लोहा ज्यों जल सिर मग करिये ॥23॥
जो अब मोहिं जिमाई चाहौ तो एही विधि कीजै।
मम गुरु चरण गहो झट जावहु उन पै दीक्षा लीजै॥
सुनि बातहिं अंगद सतकारी उपज्यो हिय में ज्ञाना।
करि आदर उहि सन्त बुलायो तिया तोष मन ठाना ॥24॥

ताही कूँ गुरु करि धरि सिष्या प्रीति रीति सब पाई।
लियो सीत करि मीत सन्त जन भक्ति धरीं अधिकाई ॥
देखहु तिया नेह करि सब जग भूलो हरिहिं न जानहि।
अंगद तिया नेह करि सुलझ्यो पायो हरि को ज्ञानहिं ॥25॥
जदपि तिया रति अजर पास में परत न नर निसराई।
राम भक्त तिय रति हू नीकी जाकरि हरि समराई ॥
बड़ो भाग अंगद को जानहु भई नारि अनुकूला।
जाकरि नरक माग तजि पायो हरिपद मग सुख मूला ॥26॥
नेम प्रेम हरि देव सेव लै सन्त सेव अति करई।
तिलक माल धरि भाल पाल पण दृढ़ मति रति विसतरई ॥
एक बार मांडूगढ़पति सो जवनराज बल करिया।
देश सलहदी को तिहि लूटा सकल प्रजा दुख भरिया ॥27॥
तबहि सलदही नृप निज दल करि जवन फौज पै चढ़िया।
नृप के संग चढ्यो अंगद हू जाय रिपुन कूँ रढिया ॥
भयो जुद्ध बैरी दल भागो लागो नृप तिस पाछे।
घाट उतरि के गयो जवनपति लही जीत नृप आछे ॥28॥
तब फिरि जवनराज के डेरा नृपति सलहदी लूटा।
लूट माँहिं अंगद कूँ पायो शत हीरनि को जूटा ॥
जवनराज की ताज लगे ते तिन में एक अमोला।
सो राख्यो अंगद हरि हेता जगन्नाथ करि बोला ॥29॥
जाऊँ जबही एहु चढ़ाऊँ जगन्नाथ के पासा।
और रतन सब बेचा खरचा सुनी बात नृप जासा ॥
हीरा उही सलहदी माँग्यो अंगद पै करि सामा।
तोहि रतन शत माफ किए हैं दीजै एक उदामा ॥30॥
नातर दाम लीजिये मोपै अस कहि भाट पठाया।
सुनि सो अंगद कही भाट सूँ सो तो रतन पराया ॥
जगन्नाथ कूँ दिया कबूली औरउ खरचे खाए।
देउँ कहाँते और न हीरा पुनि बसीठ गिर गाए ॥31॥
जगन्नाथ के कछू न चहिये भाव प्रीति सूँ राजी।
रतन मलेच्छ सीस पै धार्‌यो सो क्यूँ हरि हित साजी ॥
तुम से बहु सेवत हैं प्रभु कूँ सो निर्गुण निहकामा।
तातें रतन दीजिये नृप कूँ जो चाहत हित धामा ॥32॥

अंगद कही न देऊँ नृप कूँ हीरा हरिहिं निवेदा।
कहा हमारो करहि सलहदी जाहु कहो तुम भेदा ॥
कहा भयो सो रह्यो जवन सिर ज्यूँ खर चंदन भारा।
ज्यों मालनि सिर चढ़े कुसुम पै चढ़त हरिहिं ते प्यारा ॥33॥
दिये प्रीति सूँ प्रभु सब लेवै जाको सबही वित्ता।
नृप रूसे ते कहा सरैगो हरि रूसे दुख चित्ता ॥
यहु सुनि भाट गयो नृप पासा सबही भाषि सुनाई।
सुनत सलहदी रोस भराना मम संका न रखाई ॥34॥
तब नृप भेद कियो अंगद सूँ ता हित मंत्र बिचारा।
लगत सलहदी के जे भूवा अंगद बहिन विहारा ॥
सा अंगद के भेली रहई करै पाक प्रभु काजा।
ताहि बुलाय सलहदी भाषी अंगद मारण साजा ॥35॥
करो काज मम एक भुवाजी पंच ग्राम द्यौं तोही।
अंगद कूँ विष देहु मरण हित भोजन माहिं बिमोही ॥
अरु ताकूँ बहु द्रव्य दियो मनुहार ठानि भोराई।
मूढ़ जाति तिय मानी बातहि जाके लोभ सगाई ॥36॥
हित अनहित की सोधि न जाको पूरब अपर न जानै।
तुरत देखि पकवान प्रेत को ज्यों मूरिख सच मानै ॥
मूढ़ संग अंगार समाना पंडित छाड़ै ताही।
जो सीतल तो कलुष लगावै तातो मारै दाही ॥37॥
सो करि भोजन में विष सान्यो नाना पाक रचावा।
ठाकुर कूँ अरपाय कही तब आवौ भाई पावा ॥
अंगद आप बुलाई कन्या सो भानेजी लागै।
नित संगति जेमत अंगद के सो सनेह मन पागै ॥38॥
ताहि कपटनी जानि छिपाई अंगद भेद न लैहैं।
भगिनी कहि पावौ तुम भोजन उहि पाछे ते पैहैं ॥
यहु नहिं पावत कही हेरि के लावो उही सुहागी।
तब सो नेह जानि के प्रगटी रोय भ्रात गल लागी ॥38॥
कहि सब भोजन में विष सान्यो मोहिं भतीज सिखाई।
मूढ़ जाति मैं खोटी कीन्हीं अब मति पावै भाई ॥
उठि अंगद कहि राँड भाँड के प्रभु कूँ गरल जिमावा।
ताहि निवारि किसमरि देय हरि सेवत सो सब पावा ॥40॥

गरल प्रभाव कछू नहिं कीन्हीं जाकूँ राम उबारा।
यहू बात कूँ सुनी सलहदी अंगद विष कूँ जारा ॥
तोहू दोष न तज्यो नृप मन ते अंगद कियो बिचारा।
अब झट जगन्नाथ पै जइये भंगुर देह निहारा ॥41॥
अब के तो प्रभु रक्षा ठानी पुनि कैसी विधि होई।
घोरे चढ़ि चाल्यो अमरष भरि सुनी सलहदी सोई ॥
अंगद पै असवार पठाए हीर खोसिबे काजा।
जाय पहूँचे मग में तासूँ कही पठाए राजा ॥42॥
कै तो हीरा डार दीजिये किधौं कीजिये रारी।
अंगद कही लरो मति देऊँ पै मन और बिचारी ॥
करूँ सनान इहाँ ढिग जल में तब लगि धीरज करिये।
तब झट काढ़ि हीर तिनि देखत जल में डारि उचरिये ॥43॥
लीजै प्रभु यहु वस्तु तिहारी दीरघ बाहु पसारी।
तब सो रतन लियो प्रभु कर गहि भक्त गिरा सुनि प्यारी ॥
तितहि सलहदी आय पहूँचा सुनी हीर जल डारा।
जल में धीमर डारि हिराए नहिं पाए पचि हारा ॥44॥
गयो सलहदी हठि घर कूँ तब अंगद गत परदेसा।
सो हीरा हरि नाभि विराजा तब प्रभु दी आदेसा ॥
पंडा जाहु भक्त अंगद कूँ लावौ मोपै भाई।
तिहि मोकूँ यहु नग पठयो सो कोस सप्त सत आई ॥45॥
ग्राम ठाम तिस दियो बताई सो अंगद पै आवा।
जगन्नाथ पै हीर गयो सो पंडा याहि सुनावा ॥
सुनत मोद अंगद मन उपज्यो प्रभु की कृपा पिछानी।
पंडा संगहिं प्रभु पै अंगद चल्यो गयो सुखधानी ॥46॥
प्रभु को दरसन कियो लियो सुख निरखि नाभि पै हीरा।
अंगद पै प्रभु भए तुष्ट अति हित करि वचन उदीरा ॥
धन्य भक्त तूँ दृढ़ मन मोसों प्रीति रीति अति ठानी।
मम हित देत कछू करि प्रीतिहिं सो मोकूँ सुखदानी ॥47॥
और लोग अस भेद न जानत मो बिन करत अलेखे।
ज्यों बिन सारथ को धन तसकर लूटत भय नहिं देखे ॥
मम अर्पण धन करत हरत नहिं ताहि धर्म के दूता।
ज्यों जोष्यो बेची के दामहि पावत नर घर सूता ॥48॥

मम हित करत द्रव्य सो मोपै दिन दिन दूणो लेई।
पै नहिं समझत लोग गमावै द्रव्य आन हित देई ॥
चोर मुसै गहि राजा दंडै अग्नि जरै धन जाई।
पै मम हित अरु मम भक्तन हित खरचत लोग डराई ॥49॥
अस अंगद कूँ ज्ञान दियो प्रभु जग में सुजस बितारा।
यहु महिमा पुनि सुनी सलहदी सोच भीति मन धारा ॥
जगन्नाथ को प्यारो अंगद जो ऊ मोपै कोपहि।
राज साज मम भ्रष्ट होय सब चलत जोर नहिं मो पहि ॥50॥
तब अंगद कूँ लेन पठाए ब्राह्मण वैष्णव सोई।
अंगद पै ते धरणो दे करि नृप की अरजि हिनोई ॥
तब कृपाल ह्वै अंगद आयो रायसेनगढ़ पासा।
तबहि सलहदी सनमुख जावा बहु उत्साह प्रकासा ॥51॥
अंगद चरणनि लग्यो सलहदी विनती अस्तुति ठानी।
चारि ग्राम अंगदहिं चढ़ाये पूजा करी निदानी ॥
अब मति मोर चाकरी कीजै तुम हरि जू के प्यारा।
अंगद ताहि लाय उर भेंटा ताको भीत निवारा ॥52॥
गृह लाए आए सुख छाए गाए मंगल गाना।
अस प्रभु अंगद को पण पाल्यो तुष्ट होय सुख ठाना ॥
ऐसे औरहु जो हरि सेवै ताहि तुष्ट प्रभु होई।
तिया सहित अंगद हरि ध्याये पाए हरि पद दोई ॥53॥

दोहा

अंगद सम अंगद भगत, भूषित ऊषित फूल।
सम अंगद की अंगदा, जाहि भई अनुकूल ॥54॥

इतिश्री मद्भक्तदामगुणचित्रनी टीकायां अंगद भक्त गुण
वर्णनोनाम एकसप्ततितमो रचनावृंद ॥71॥

भक्त भुवन चौहान

जीवनी : भक्तमालकार नारायणदासजी नाभा ने अनेक भक्तों का समासव्यासरीति से विवरण लिखा है। जहाँ नाभाजी ने अनेक सन्त-भक्तों के जीवनचरित्र लिखकर उन्हें निश्शेष होने से बचाया, वहाँ दादूपंथी सन्तों ने इनकी रचनाओं को अपनी वाणी-पुस्तकों में लिख-लिखकर काल-कवलित होने से बचाया। सन्त-भक्तों की जीवनचर्चा भक्तमाल की कथाओं के माध्यम से धार्मिक-जनता सुनती रही किन्तु इनकी रचनाएँ प्रायः अज्ञात ही बनी रहीं। दादूपंथी-पंचवाणी पुस्तकों के आधार पर सर्वप्रथम मैंने, अनेक स्रोतों से जीवनी-भाग लिखकर कुछ अल्पज्ञात सन्त-भक्तों की रचनाएँ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। जहाँतक होसका है, मैने सन्त-भक्तों का परिचय प्रामाणिकता के साथ लिखा है। अंतः साक्ष्य ढूँढें हैं। समसामयिक प्रमाणों को टटोला है। जनश्रुतियों को प्रमाणों के आधार पर परखकर सही होने पर लिखा है। भक्तमाल, परची, विगत, टीका, इतिहास, जनश्रुति, आदि अनेक स्रोतों का सहारा लिया है। अस्तु!

भक्तप्रवर भुवन चौहान का वर्णन भक्तमाल में मिलता है.। टीकाओं में जिस घटना का उल्लेख मिलता है, उसकी पुष्टि इनके दो पदों से भी होती है। फिरभी न इनकी जागीरी के गाँवों का पता लगता है और न यह पता लगता है कि ये चित्तौड़ के राणा के सामन्त थे अथवा उदयपुर के महाराणा के सामन्त थे। यह भी पता नहीं लगता कि ये इन शीशोदियाओं के ही सामन्त थे अथवा किसी अन्य राणा के सामन्त थे। अनेक इतिहासकारों से चर्चाएँ कीं किन्तु किसी से भी कोई ऐसा सूत्र नहीं मिला जिसको पकड़ कर आगे बढ़ा जाता। अतः अभीतक भक्त भुवन चौहान का ऐतिहासिक विवरण अनुसंधेय है। हमको अभीतक भक्तमाल, इसकी टीकाओं व राधावल्लभ-सम्प्रदाय के 'रसिक-अनन्य-माल' नामक भक्तमाल पर ही निर्भर रहना पड़ रहा है। राधावल्लभ-सम्प्रदाय पूर्णतः सगुणमार्गी सम्प्रदाय है जिसमें राधाकृष्ण की कुंजकेलियों की उपासना मुख्य है। भक्त-भुवन की उपलब्ध 11 रचनाओं में राधावल्लभी-उपासना की दूर-दूर तक गंध तक नहीं है। ऐसी स्थिति में यह भी अन्वेषणीय हो जाता है कि क्या वास्तव में राधावल्लभी भुवन चौहान व भक्तमालीय भुवन चौहान एक हैं अथवा भिन्न-भिन्न हैं।

जब नाभा कृत भक्तमाल की टीकाओं के तथ्यों को 'रसिक-अनन्यमाल' की सूचनाओं से मिलाया गया तब वर्णन शैली का भेद तो मिलता है किन्तु तथ्यों में छिपी घटना

एक ही मिलती है। इस घटना का पुष्टिकरण इनके उपलब्ध पदों से भी होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भुवन चौहान अलग-अलग न होकर एक है।

प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिरकार भुवन चौहान के नाम पर मिली रचनाएँ प्रामाणिक हैं या नहीं? यदि प्रामाणिक हैं तो राधावल्लभ-सम्प्रदाय के उस दावे का क्या होगा जो भुवन चौहान को गोस्वामी वनचन्द्रजी का शिष्य घोषित करता है। भुवन चौहान की रचनाएँ सम्वत् 1660, 1684, 1771, 1785, 1780, 1715, 1743, 1733 आदि-आदि में लिपिकृत अनेक हस्तलिखित ग्रंथों में लिखी मिली हैं। दो पदों में उस घटना का भी संदर्भ है जिसको राधावल्लभ-सम्प्रदाय अपने भुवन चौहान के जीवन की घटना मानता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्राचीनता की दृष्टि से भक्तमाल में वर्णित भुवन चौहान, राधावल्लभी भुवन चौहान एक ही हैं। जीवन-घटना की दृष्टि से भी एक हैं। पद प्रामाणिक हैं। भक्तमाल का विवरण प्रामाणिक है। रसिक-अनन्यमाल भगवतमुदित गौडिया की रचना है जिसमें 26 राधावल्लभी भक्तों का वर्णन है और जिसका रचनाकाल वि.सं. 1707-1720 के मध्य माना जाता है। ऐसी स्थिति में राधावल्लभीय सूचनाएँ परवर्ती जबकि पंचवाणी की रचनाएँ प्राचीन होने से प्रामाणिक हैं।

यहाँ यह बता देना सर्वथा समुचित है कि दादूपंथी सन्तों ने पंचवाणी-पुस्तकों में सम्प्रदायेतर सन्तों की उन्हीं रचनाओं को संकलित कीं जो उनके सम्प्रदाय के दर्शन के ढाँचे में उपयुक्तता से बैठती थीं। यही बात गुरुग्रंथसाहिब, रज्जब की सरबंगी, गोपालदासजी की सरबंगी, गुणगंजनामा, सर्वांगसार, सारसंग्रहबोध आदि पर लागू होती है। इस न्याय से विचार करें तो ऐसा माना जा सकता है कि भक्त भुवन चौहान पहले सन्तों के संसर्ग में अधिक रहे होंगे। इसकारण इन्होंने सन्तमतानुसारी रचनाएँ लिखी होंगी। कभी उनका वृन्दावन जाना हुआ होगा और उन्होंने गोस्वामी वनचन्द्रजी का सत्संग किया होगा। उनसे दीक्षा नहीं ली होगी। फिरभी उनसे सम्पर्क में रहते रहे होंगे। वैसे भी भारतीय राजा-महाराजा सभी-सन्तों भक्तों की अभ्यर्थना, सेवा करते थे। भक्त भुवन भी श्रीवनचन्द्र गोस्वामी के श्रद्धावान भक्त होंगे, कंठीधारी शिष्य नहीं। अतः भगवतमुदितजी ने भक्त भुवन चौहान को राधावल्लभी लिख दिया जबकि ये कंठीधारी कट्टर राधावल्लभी वैष्णव नहीं रहे होंगे।

एक बात और, यदि भुवन चौहान राधावल्लभी ही थे तो राधावल्लभ-सम्प्रदाय की पोथियों में इनके पद क्यों नहीं मिलते? आजतक कहीं से भी इनके पदों का प्रकाशन नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में भी यही निर्णीत होता है कि इनका वनचन्द्र गोस्वामी से सम्पर्क तो रहा होगा किन्तु ये कभी भी खाटी राधावल्लभी नहीं बने होंगे। इसीकारण इनकी प्राप्त रचनाएँ सन्त-मतानुसारी हैं, राधावल्लभ-मतानुसारी नहीं।

पदों में प्रयुक्त भाषा राजस्थानी है। अतः इनका राजस्थान-प्रदेश के किसी न किसी रजवाड़े से संबंध अवश्य था। इनकी जाति चौहान थी। ये शिकार खेलने जाते थे। इन सूचनाओं से इनकी जाति क्षत्रिय होना सुनिश्चित् होती है।

इनका गोस्वामी वनचंद्रजी से सम्पर्क था, इस आधार पर इनका समय निर्धारित किया जा सकता है। वनचंद्रजी विक्रमसम्वत् 1609 में अपने पिता श्रीहितहरिवंश गोस्वामी के नित्यलीलालीन होने पर उनकी गद्दी के अधिकारी बने। भुवन चौहान इनके गद्दी पर विराजने के पश्चात् ही इनके सम्पर्क में आये, क्योंकि 1609 के पूर्व वनचंद्र गोस्वामी वृंदावन में न रहकर देववन में ही रहा करते थे। अतः भुवन चौहान वनचंद्र गोस्वामी के संपर्क में सम्वत् 1609 के पश्चात् आये, इससे पूर्व नहीं। श्रीललिताचरण गोस्वामी ने वनचन्द्रजी को वि.सं. 1665 तक जीवित लिखा है **(देखें: श्रीहितहरिवंश गोस्वामी: सम्प्रदाय और साहित्य पृष्ठ 32)** यदि भुवन चौहान वनचंद्रजी के संपर्क में सम्वत् 1620 के लगभग भी आये हों तो इनका समय विक्रमसम्वत् 1580 से 1650 तक का मान सकते हैं। यही समय मानना उपयुक्त लगता भी है क्योंकि भुवन चौहान वृंदावन जाने के पूर्व ही भक्ति करने लग गये थे तथा भक्ति के बल पर सिद्ध होकर जगत्प्रसिद्ध भी होगये थे। वे वृंदावनधाम के दर्शनार्थ गये थे। वनचंद्रजी के संपर्क में आकर उनसे प्रभावित हुए और आगे भी इन्होंने संपर्क बनाये रखा; यही मानना उपयुक्त है।

भगवतमुदितजी ने रसिक-अनन्यमाल में लिखा है कि भुवन चौहान की माँ भुवन को शिकार करने पर, जीवहिंसा करने पर प्रतिदिन धिक्कारती थी किन्तु यह बात सर्वथा कपोलकल्पित है। भुवन स्वयं पदांक 7 में कहते हैं कि अब हिरणादि जीवों को देखते ही मैं उनका बध नहीं कर सकता, कर पाता क्योंकि मैं ऐसा कर नहीं सकता। **मेरे इस कार्य से मेरा सारा परिवार मेरे ऊपर क्रोधित होता है। मुझे ऐसा विश्वास होता है कि मेरा कुल-कुटुम्ब और बधिक दोनों एक समान हैं। मैं किस पर बान का संधान करूँ। मैं तो सचराचर में ही भगवान का दर्शन करता हूँ।** इस पद से स्पष्टतः संज्ञान में आता है कि भुवन का परिवार भुवन के द्वारा हिंसा-त्याग से सहमत नहीं था। परिवार चाहता था कि भुवन राजसीवृत्ति में ही रहे। ज्ञान होने पर भुवन ने हिंसादि त्याग दी। काष्ठ की तलवार रखना प्रारम्भ कर दी।

भगवतमुदितजी का प्रारम्भिक विवरण राजपूती-परंपराओं व रीतिरिवाजों और मान्यताओं के भी विपरीत है। राजपूत-माँ, दूध पिलाते समय, हिंडोले में झुलाते समय, हर समय अपने बेटे को वीरता का पाठ पढ़ाती है, कायरता का कभी नहीं। इसके विपरीत भगवतमुदितजी साधु-परंपरा के अनुसार भुवन चौहान को दया का पाठ माँ के द्वारा पढ़वाते हैं जो सर्वथा कपोल-कल्पित होने से मिथ्या है। स्वयं भुवन के पद संख्या सात से भवगतमुदितजी की मान्यता खंडित होती है। भक्तमाल की भक्तदामगुणचित्रणी

टीका के अनुसार भक्त भुवन के बारे में निम्न तथ्य ज्ञात होते हैं।

नारायणदास 'नाभा' ने भुवन के बारे में इतना ही लिखा है कि भगवान् ने इनकी काष्ठ की तलवार को लोहे की बना दी। छप्पय की पहली पंक्ति का आशय यह भी है कि भुवन ने अपनी तलवार काठ की ही बतानी चाही किन्तु उनके मुँह से निकल गया लोहे की तलवार। भगवान ने भक्त की वाणी को सत्य करने के लिये काष्ठमयी तलवार को सारमयी कर दी। यथा–

'चारौ युग चतुर्भुज सदा भक्त गिरा साँची करन॥
दारुमयी तरवार सारमय रची भुवन की।''

टीकाकार प्रियादास, बालकराम आदि एवं राघवदास दादूपंथी सहित अनेक भक्तमालकारों ने भुवन को चौहान एवं राणा का 2 लाख सालाना आमदनी का सामन्त लिखा है। नाभाजी ने केवल एक पंक्ति लिखी है जबकि राघवदास ने पूरा एक मनहर छन्द लिखा है–

राणाजी के कान लागि काहू ने कही पुकार, भुवन कमर देखो खाण्डौ बान्ध्यौ काठ को।
सबके बहाने सर माँग लियौ हाथ करि, पलट होगयौ सार रुपैया सै आठ को॥
भुवन पवन खैंचि अंतर अराध कीन्हीं, राम राम राम ध्वनि पार नहीं पाठ को।
राघौ कहै राणैं दौर पाँव गहे हाथ जोरि, साँचौ खाण्डौ तेरौ भव और झूठमाठ को॥255॥

राजस्थान में 'राणा' प्रायः चित्तौड़ के शीशोदिये कहलाते रहे हैं। इनके सामन्तों में चौहान खाँप का भुवन सामन्त जो दो लाख सालाना की जागीर भोगता हो, अभीतक की खोज में मुझे नहीं मिला। हो सकता है, आगे कभी किसी ठिकाने का पूरा इतिहास प्रकाशित होने पर भुवन चौहान का कोई विवरण मिल जाए।

टीकाकारों ने कहा है कि भुवन चौहान राणा के साथ मृगया को गये। हिरण ढूँढ़ते हुए सभी भागने लगे। राणा के निकट एक हिरणी आई। राणा ने भुवन से उसको मारने को कहा। भुवन ने तत्काल उसे मार डाला। हिरणी गर्भवती थी। उनके साथ उसके दो शिशु गर्भ में मर गये। भुवन ने सोचा, मैंने एक नहीं, तीन जीवों की हत्या की है। गंभीरता से सोचूँ तो जगत् मुझे भक्त कहता है जबकि निर्दोष जीवों को मारकर मैं बधिकों का काम कर रहा हूँ। मुझे भक्त कहलाने का अधिकार नहीं है। यदि मुझे भक्त बनना व कहलवाना है तो हत्या करनी छोड़नी होगी। दूसरी ओर, यदि मैं शस्त्रधारण करना बन्द कर दूँगा तो मेरी जागीर चली जायेगी। अतः भगवद्विश्वास धारण करके मुझे लोहे का खाण्डा धारण करना छोड़कर काष्ठ का खाण्डा धारण करना चाहिये। भुवन ने ऐसा ही किया।

कहते हैं, घर का भेदी लंका जैसे कोट को भी ढहा देता है। भुवन ने भाई ने राणा से शपथ खाकर शिकायत की कि भुवन काठ की तलवार रखता है। वह कैसे अवसर

पड़ने पर आपके हक में लड़ सकेगा। एक वर्ष तक वह चुगलखोर चुगली करता रहा। अंततः राणा के मन में परीक्षा करने की आ ही गई।

राणा ने सभी सामन्तों की एक गोठ तालाब के किनारे करने की व्यवस्था की। जब सभी सरदार भोजन करके निवृत्त होगये तब राणा ने अपनी तलवार निकाल कर कहा, देखो मेरी तलवार ऐसी है कि यह मनुष्यों को ही नहीं काटती, अन्यों की लोहे की तलवारों को भी काट डालती है। राणा ने बारी-बारी से सभी की तलवारें देखीं व सरदारों से उनकी विशेषताएँ सुनीं। भुवन को भी विशेषता बताने को कहा। भुवन ने अपनी तलवार की विशेषता काठ की होने की कहना चाहा किन्तु भगवत्प्रेरणा से लोहे की कहने में आ गया। जैसे ही खाण्डा म्यान से निकाला, वह सचमुच चमकते हुए लोहे का ही देखने में आया। राणा को विश्वास होगया, चुगलखोर ने भुवन की जागीर खालसा करवाने के उद्देश्य से ही झूँठी शिकायत की है जबकि भुवन सच्चा सरदार है।

राणा ने आदेश दिया कि मक्कार चुगलखोर का सिर कलम कर दिया जाये। मस्तक कटता, इसके पूर्व ही भुवन ने राणा से कहा, प्रभो! सच बात यही है कि कई दिनों से मैं काष्ठ की तलवार ही रखता हूँ। इसने झूँठ नहीं, सच ही कहा है। भगवत्कृपा से ही मेरी काठ की तलवार लोहे की होगई है। अतः इसको मारो मत। यह निरपराध है। राणा भुवन की सच्चाई, साधुता व अहिंसकवृत्ति से प्रभावित हुआ। उसने भुवन को मुजरा करने आने से छूट दे दी। उसकी जागीर दुगनी आमदनी की कर दी।

रचनाएँ : भक्त भुवन की हमको कुल ग्यारह रचनाएँ मिली हैं। मूलपाठ दादूद्वारा नरायना के ग्रंथांक 496 से गृहित किया गया है। इसमें कुल ग्यारह रचनाएँ मिली हैं। ग्रंथांक दो में पदांक 7, 10 व 11 तीन पद मिले हैं। ग्रंथांक 561 में पदांक 6,10 व 11 तीन पद मिले हैं। रज्जब की सरबंगी में पदांक 5 मिला है जबकि गोपालदास की सरबंगी में पदांक 2,4,5,6,7,10 व 11 कुल 7 पद मिले हैं। जहाँ-जहाँ पाठान्तर मिले हैं, वहाँ-वहाँ वे दर्शा दिये गये हैं।

पदांक 5 व 7 भक्त भुवन के जीवन की घटना-विशेष को प्रमाणीकृत करते हैं। पदों की भाषा ब्रजी मिश्रित राजस्थानी है जैसीकि मध्यकालीन भक्तों, सन्तों की रही है जिनका सम्बन्ध राजस्थान से रहा है।

पदों का वर्ण्य विषय मुख्यतः सन्तमतानुसारी है। 'अखंड मंडल लावै ध्यान', 'ना हम बंध मुकत हम नाहीं', 'अला प्यंगुला को घर सीधौ, सुषमण के गुण जाहिं', 'मेरडंड परवत सब सोधे', 'सोई राम देख्यौ देखणहारो', 'हलन चलन सब मिल्यौ चलावै, रहै गुणन थैं न्यारौ ॥' 'है निर्गुण गुण नाहिं भोगवै, अंतरजामी प्यारौं।'; 'भ्यास्यौ ब्रह्म अपारौ', 'अणभै'; 'सुन्य समानौ'; 'सहज समाध्य' 'भुवन नहीं गुण, आहि अतीत्यौ' आदि-आदि प्रयोग पूर्णतः निर्गुण-मतानुसारी हैं।

अतः भक्त भुवन चौहान राधावल्लभी नहीं हो सकते। हाँ, गोस्वामी वनचन्द्रजी के सम्पर्की होसकते हैं।

अनेक राजा-महाराजा, अनेक पंथ-सम्प्रदाय के सन्तों को भेंट पूजा, मान-सम्मान देत रहे हैं। इसका तात्पर्य यह कभी भी नहीं होता है कि वे सभी सन्त-महन्तों, ब्राह्मण-पुरोहितों के शिष्य थे। इसीप्रकार भक्त भुवन चौहान पूर्णतः निर्गुणी सन्त थे। राधावल्लभी भक्त नहीं।

भक्त भुवन ने अपनी स्थिति पदांक 8 में इसप्रकार बताई है–

जबसे मैंने गोविन्द को गोविन्द के रूप में जाना, तबसे सहज अणभै (निजात्मा का अपरोक्षबोध) का बोध होगया। गुरु के वचनों को मन ने मान लिया कि उन्होंने आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध में जो कुछ कहा, वह सर्वथा सच व अनुभवगम्य है। परोक्ष ज्ञान, विज्ञान=अपरोक्षज्ञान में विलीन होगया। व्यष्टि-प्राण समष्टि-प्राणों से एकाकार होगए। सहस्रार में अनहदनाद गूँजने लगा। मन शून्य में समा गया। शब्द=ध्वनि=नाद निरंतर होरहा है। मैं सहज समाधि में लीन होगया हूँ। अब न दिन और न रात है। नानात्व रूप भ्रम समाप्त होगया है। अब भुवन गुणों द्वारा निर्मित शरीर न होकर इनसे सर्वथा अतीत परमहंस रूप हूँ, ब्रह्म रूप हूँ।

पद नौ में कहते हैं, केवल राम की ही सत्ता है; केवल राम ही की। रामजी नटवर है जबकि तदतिरिक्त नाटक=तमासा मात्र=मिथ्या है। वह रामजी कुलहीन है अर्थात् स्वयंभू है। कला विभाग रहित=अकल है। स्वयं ही पानी व स्वयं ही पवन है। अग्नि भी वह स्वयं ही है। सबके घटों की जानने वाला है। रामजी सभी के घटों में भरपूर है। आप स्वयं ही जहरीला सर्प है तो स्वयं ही उसकी दवा है। (वेदांत का स्वयं ही स्वयं का आधार व स्वयं ही स्वयं का अधिष्ठान है, का सोदाहरण वर्णन है यह) जो ब्रह्मांड में रम रहा है, वही पिंड में भी है। उस अविगत ब्रह्म के रहस्य को भुवन जान गया है।

भुवन चौहान के पद

राग गौडी (1)

(1)

जियरा अजपा जपि सोई, जा धुनि हरि हरि होई।
जानैगा जानैगा जाना, गगनहिं मगन पिछाना ॥टेक॥
गगन पिछाना मगन में, मगनहिं लागा बंध।
उलटा पिवै अकास में, थिर अजरांवर कंध ॥
चलु रे मन तहाँ जाइये, जहाँ बिन कर बाजै बीन।

आपा पर जब चीन्हिये, भयौ मन गोब्यंद लीन ॥
रे मन जहाँ तूँ जाइ था, तूँ तो भइया सोइ।
बाड़ि जु कीजै खेत कौं, चरै त राखै कोइ ॥
रे जिय चेति यहु ब्रह्म है, अरु गुरु को उपदेस।
रूपैं सहजि सरूप है, रूपैं देस बिदेस ॥
कहै भुवन भैभीत था, संसा होता काल।
उलटि म्यंत्र सोई भया, गया भै भ्रम जिय का साल ॥1॥

मूलपाठ ग्रंथांक 496 आधारित है।

(2)

हम बैरागी माई राम बिवोग[1]।
अब कछु समझि परी जिय मेरे, छूटि गये सब संसै सोग ॥टेक॥
केवल अबल[2] कलंक कछु नाहीं, स्रुति सुम्रति सब देखे जोइ।
आसा छाडि निरास परमपद, सकलप बिकलप मिटि गये दोइ ॥
ना हम बंध मुकत हम नाहीं, ना हम जोगी ना हम भोग।
कहै भुवन ग्रिह बन दोउ नाहीं, ना द्रुम बेली ना ए लोग ॥2॥

पाठान्तर : 1. बिवोगी (गो.स.); 2. अमल (गो.स.)
पाठान्तरपाठ गोपालदास की सरबंगी से तथा मूलपाठ ग्रंथांक 496 से लिया गया है। सरबंगी मे इसकी राग धनाश्री लिखी है।

(3)

पंख बिन उडै चरण बिन चालै, तेण राम की लखी न जाइ ॥टेक॥
घटि घटि राम रह्यौ भरपूरि, गुण अतीत बेदाँ थैं दूरि ॥
अंखड मंडल लावै ध्यान, कहै भुवन तहाँ परम निधान ॥3॥

• मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित है।

राग रामगिरी (2)

(4)

इहाँ तौ गोब्यंद[1] ही आहि।
[2]अला प्यंगुला को धर सोधौ, सुषमण के गुण जाहि[2] ॥टेक॥
पाँच इंद्री करम कहिये, पाँच इन्द्री ग्यान।

राजस तामस सातिग कहिये, सोधी सक्ति नियान ॥

नलनी पत्र कँवल दल खोजे, ³खोजो पालौ³ मूर।
पाँच पवन दस भीतर सोधे, सोधे ससि हर सूर ॥
त्रिकुटी सोधी त्रिगुण आदि दे, बिसमी सूँ ब्रह्मंड ॥
मेरडंड परवत सब सोधे, सोधे सब बनखंड⁴ ॥
काल नहीं जोरा नहीं, और मींच नहिं आन।
बंध्या मुकता दोऊ नाहीं, ⁵इहीं भुवन नहीं भगवान ॥4॥

● मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित है।

● पाठान्तर गोपालदास की सरबंगी पर आधारित हैं।

● पाठान्तर : 1. गोबिन्द 2. इला पिंगुला कौ घर सोध्यौ, सुषमन के गुण चाहि। 3. खोजे पालू 4. नवखंड 5. इहाँ।

राग आसावरी (3)

(5)

हरि के संगि अहेरै¹ फिरहूँ। गुरु को² सब्द सुणि सुणि निसतरहूँ ॥टेक॥
तन करि बान³ मंन⁴ करि⁴ हरना, ⁵राम नाम साजि धन हरना।⁵
⁶नवजन घेरि अहेरै लीना, पंच⁷ तरइया बुधि⁸ करि कीन्हा ॥
⁹खेद न महिता भये निकूरा⁹, पारधी बैठ सँवारे मूरा।
स्यंघराइ¹⁰ सो बन कूँ घेरै, तामें मंछा फिरत अहेरै ॥
¹¹कूप जलै परत¹¹ कैसे डाढै, कहै¹² भुवन कोइ अरथ हि काढै ॥5॥

● मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित है।

● पाठान्तर रज्जब की सरबंगी 64/6 व गोपालदास की सरबंगी 57/2 पर आधारित है।

● पाठान्तर : 1. अहेड़ै (र.स.); 2. के (र.स.); 3. बन अरु (र.स.) 4. मन हि (गो.स.) 5. राम नाम साजि ध्यान धरना (गो.स.), राम नाम सजि धनुहर थरना (र.स.), 6. नौ (र.स.) 7. पांच (गो.स.) 8. बधि, कुछ प्रतियों में 'बुधि' भी है; 9. खेद न महता भया निकोरा (गो.स.), खेदत महिता भया निकूरा (गो.स.), 10. सिंघराई (र.स.) 11. कूप जल परवत (र.स.), कूप जलै पर (गो.स.), 12. कहि(र.स.)

राग सारंग (4)

(6)

सोई राम देख्यौ देखणहारौ।
हलन चलन सब मिल्यौ चलावै, रहै गुणन¹ थैं न्यारौ ॥टेक॥

पंच[2] तत्त परकीरति तन धरि, तरुन बिरध नहिं बारौ।
सोइ[3] ब्रह्म अभिअंतर[3] देख्यौ, सहज सुन्य उजियारौ ॥
सकल रूप रस गंधहि जानैं, खाटौ मीठौ खारौ।
है निर्गुण गुण नाहिं भोगवै, अंतरजामी प्यारौ ॥
जाके उपजी सोइ मल ज़ानैं, भ्यास्यौ ब्रह्म अपारौ।
कहै भुवन सतगुरु के परसे, मिटि गयौ प्रपंच पसारौ ॥6॥

● मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित है।

● पाठान्तर गोपालदास की सरबंगी 63/51 व ग्रंथांक 561 पदांक 1 पर आधारित है।

● पाठान्तर : 1. सबनि (गो.स.), 2. पाँच (561, गो.स.), 3. सो (561), प्यंड ब्रहांड सबनि में (गो.स.)

राग सोरठ (5)

(7)

अब मोपैं देखत बध्या न जाई। बर सब घर 'रहौ रिसाई[1] ॥टेक॥
मोहि आवै उनमाना। मेर[2] कुल अरु बधिक समाना[2]।
मैं कापरि साँधौ बाना। सब मैं देखत हूँ भगवाना॥
मैं सबही समि[3] करि जाना। अब मोपैं जाइ न ताना।
कहै भुवन[4] हरि की किरपा थैं। सहजै भरम नसाना ॥7॥

● मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित।

● पाठान्तरपाठ ग्रंथांक 2 व गोपालदास की सरबंगी पर आधारित 56/6।

● पाठान्तर : 1. रह्यौ समाई (गो.स.); मैं कापरि साधौं बाना (2), मेरे कुल अरु अधिक समाना (गो.स.); 3. समझि (गो.स.) 4. भुवन मन (2 व गो.स.)

राग मलार

(8)

जब तें गोब्यंद गोब्यंद जान्यौ।
भई परतीति सहज अनभै की, गुरु बचननि मन मान्यौ ॥टेक॥
ग्यान विग्यान माहिं उरझानौं, पवन पवनि गहि सान्यौ।
गगन गरजि मन सुन्य समानौं, सबद निरंतरि ठान्यौं ॥
सहज समाध्य रैंनि दिन नाहीं, नाना कंचन भान्यौं।
भुवन नहीं गुण आहि अतीत्यौ, परमहंस परवान्यौ ॥8॥

● मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित।

राग नट-नारायण (7)

(9)

है राम है राम और न कोई, नटवर आप तमासा सोई ॥टेक॥
आकुल अकल पवन आपै पानी, तेज तपै आपैं अंतरजामी।
सब घटि राम रह्या भरपूरी, आपैं विषहर आपैं मूरी ॥
ब्रह्मंडे सोई पिंड समाणा, अबिगत की गति भुवन पिछाणा ॥9॥

● मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित।

राग धनाश्री (8)

(10)

भवना मन हीरौ[1] भयौ, अब बेचणौं न जाई रे।
नहीं पाटण नहीं पारखू, मोल न घटाँ समाई रे ॥टेक॥
मैं जाण्यौं मन नान्हड़ौ[2], निपट न आदर दीनौं रे।
सतगुर मिलि समिता[3] भयौ, कछू बिधाता कीनौं रे ॥
मैं जाण्यौं मन ल्हाल्हरौ[4], गली गली दिखलायौ रे।
आइ मिल्यौ जब पारखूँ, निर्मोलिक नाँव कढायौ रे ॥
मैं जाण्यूँ मन पोति है, दसूँ दिसा मुकलायौ रे।
काच पलटि कंचन भयौ, तब सोलह बानि दिखायौ रे ॥
या मन का कठुँला करूँ, रतन पवालै पोऊँ रे।
कामणि काम जु आगली, जतन जतन करि जोऊँ रे ॥
भवना मन ही मन मिल्यौ[5], मिलत न जानैं कोई रे।
कै जानैं जन[6] बिरहनी, जाकी प्रीति निरंतरि होई रे ॥10॥

● मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित।
● पाठान्तर ग्रंथांक 2/2, 561/2 व गोपालदास की सरबंगी 22/5 पर आधारित
● पाठान्तर : 1. हीरा (2,561), 2. नान्हड़्यौ (गो.स.), 3. समिठा (गो.स.), 4. लालरौ (561), 5. मिल्या(2), 6. सो (2);

(11)

बुधी बनजारड़ी है, टांडौ[1] उतर्‌यौ पैली पार।
थारौ [2]बिच ही[2] नायक खेलियौ[3], टाँडै[4] भई अवार ॥टेक॥
रामराइ की चौकी मेट्‌याँ, दूणौं लागै दाण[5]।
[6]जमराजा के आइ पहूँते[6], अब क्यूँ लाभै जाण ॥

पाचौं सातौं दसौं पचीसौ, सब बणजारी साथ।
बालदि सूँ कारजि नहीं, नायक सेती हाथ ॥
काँहीं बणज्यौ कांसौ[7] तांबौ, काँही मैंण[8] मजीठ।
[9]भुवनैं कंचन बणजिया, सांवां हूवा नीठ ॥11॥

● मूलपाठ ग्रंथांक 496 पर आधारित।

● पाठान्तरपाठ ग्रंथांक 2/3, 561/3 व गोपालदास की सरबंगी 111/26 पर आधारित है।

पाठान्तर : 1 तांडौ (2); 2. बिच थैं (2); 3. खेलि गयौ (गो.स.); 4. ताडै (2); 5. दान (2, 561), सही पाठ दाण ही है। 6. जमरा जाका आइ पहूंता (2), जमरा जाके आइ पहूंते (561); (7) कासी (2); 8. चोल (2); 9. भुवनि (561);

भक्तदामगुणचित्रणी टीका में भक्त भुवन चौहान
अथ एकोनत्रिंशो रचनावृंद
मूल

चारौ युग चतुर्भुज सदा भक्त गिरा साँची करन ॥
दारुमयी तरवार सारमय रची 'भुवन' की।
'देवा' हित सितकेश प्रतिज्ञा राखी जन की ॥
'कमधुज' के कपि चारु चितापर काष्ठ जु ल्याये।
'जैमल' के जुधि माँहि अश्व चढ़ि आपुन धाए ॥
घृत सहित भैंस चौगुनी 'श्रीधर' सँग सायक धरन।
चारौ युग चतुर्भुज सदा भक्त गिरा साँची करन ॥49॥

टीका

षट आख्यान कवित इस माहीं। षट हू भक्त विष्णु प्रिय आहीं ॥
जिनि की गिरा सत्य प्रभु ठानी। नाभा चहुँ जुग साखि बखानी ॥1॥
त्रय जुग जन जस बदत पुराना। सुनिये कलिजुग जन जस काना ॥
भुवन भक्त सो क्षत्रिय जाना। जाति चुहान बसत जहिं राना ॥2॥
करै चाकरी राणा केरी। खावै पटा लाख द्वै हेरी ॥
सन्त सेव सो नीके ठानै। करै भजन भगवान पिछानै ॥3॥
एक बार राना के संगा। चढ़े सिकार निहारि कुरंगा ॥
हेरत हिरण भागि सब जावा। राना निकट मृगी इक धावा ॥4॥
भुवन वाह में मृगिनी आई। राना कही भुवन यहु जाई ॥
मारहु बेगि जान नहिं पाई। भुवन खड़ग करि ताहि हनाई ॥5॥

हुती गर्भनी द्वै सिसु छेदा। देखि भुवन मन करुणा खेदा ॥
कीन्ह विचारि कहाऊँ भक्ता। कर्म करत हम जथा अभक्ता ॥6॥
क्षत्री रीति खड़ग कर धारी। काम बनै नहिं रहत सँभारी ॥
ताते धरूँ दारु तरवारा। धारि दारु असि भुवन बिचारा ॥7॥
भुवन भ्रात इक राणा पासा। रहत हजूरयो सो खल दासा ॥
तिही राणा पै बात जनाई। भुवन काठ के खाँड़े खाई ॥8॥
राणा मन आवत नहिं बाता। तब सो दुष्ट सपथ बहु खाता ॥
खल स्वभाव पर छिद्रहिं गावै। माखी काक घाव ज्यों भावै ॥9॥
कही बरष लगि बात बनाई। झूठी ह्वै तो मोहि मराई ॥
तब राणा इक गोठ कराई। उमरावन सब लीन्ह बुलाई ॥10॥
भोजन करि बैठे सरदारा। राणै अपना खड़ग निकारा ॥
देखहु यह ऐसी तरवारा। औरनि की हूँ काटनिहारा ॥11॥
लखी भुवन सुमरत भगवाना। तबहिं गही इसकी असि राना ॥
भुवन कहत की याहि निहारा। भनत दारु मुख निकसी सारा ॥12॥
भई सारमय दारु तुरंता। भक्त गिरा साँचइ भगवंता ॥
काढ़ी असि बिजुरि सी चमकी। सो खल देखत मनु सिर दमकी ॥13॥
तब राणै उहि नीच बुलावा। मारो याहि झूठ गिर गावा ॥
सीस कबूलि लिखा निज हाथा। तजौं न लेहूँ याको माथा ॥14॥
भुवन भक्त तब अरज कराई। ताहि बचायो कही बुझाई ॥
हुती दारु कीन्हीं हरि सारा। कछू इनहिं नहिं झूठ उचारा ॥15॥
लखि प्रभाव तब रीझा राना। कही भक्त तुम हरि मन माना ॥
तुम मम मुजरे अब मति आवहु। द्विगुण पटा बैठे गृह पावहु ॥16॥

सोरठा

कही भुवन की बात, जास गिरा प्रभु सच करा।
सुनहु और आख्यात, देवा पंडा की कथा ॥17॥

श्रीभगवतमुदितजी कृत रसिक-अनन्यमाल में चौहान भुवन प्रसंग

दोहा

सकल भुवन में भुवन सो, भक्त सुन्यौ नहिं आन।
श्रीहित हरिवंश प्रसाद तें, जुगल बसे उर आन ॥1॥

चौपाई

पिता भुवन के सूर प्रधान। बहुत करै हरिजन सनमान ॥2॥
राणाजी के बंधु समान। बडे पटेत तेजसी मान ॥3॥
श्रीराधाबल्लभजी के सेवक। पतनी पति गुरु धर्म जु खेवक ॥4॥
तिनके पुत्र भुवन एक भये। पिता सु इष्ट लोक कूँ गये ॥5॥
बारह बरस वही क्रम इनको। राणा तोष कियौ बहु तिनिको ॥6॥
सवा लाख को पटौ जु दीयौ। पितु को हो सो सुत को कीयौ ॥7॥
माता भक्ति करै चित लावै। श्रीराधावल्लभलाल लड़ावै ॥8॥
भवन अखेटक खेलन जाइ। माता सुनि सुनि बहु तरसाइ ॥9॥
एकैइ पूत सु अैसे जायौ। महा निरदई दई उपजायौ ॥10॥
अैसो सुत हमकों क्यों दीनो। हिंसक क्रोध लोभ में भीनो ॥11॥
हरि भक्तनु के जस भने कोइ। प्रभु कों भजै जु श्री सम सोइ ॥12॥
यह कहि माता मोह मिटायौ। सुत सनेह को लोभ न आयौ ॥13॥
साकत पुत्र न आवै काम। देखत दुख सहियतु पलु जाम ॥14॥
तरकस डारि चौखरे दीनो। एक दिन प्रभु ही अैसो कीनो ॥15॥
फैले तीरन किनहु न जानें। सुनि धुनि भुवन उठे भहराने ॥16॥
द्वै आगुल खग भाल जु गडी। पीरा हौंन लगी अति बडी ॥17॥
हाइ माइ कहि रोवत अैसे। मात आइ समझावत कैसे ॥18॥
रे कपूत कायर क्यों भयौ। जन्म स्याम छत्री कुल दयौ ॥19॥
दया धरम में रहै सपूत। जीवन पीरा देहि कपूत ॥20॥
पर दुख देहिं तेइ दुख पावै। सबमें प्रभु यह बेद बतावै ॥21॥
काहु जीव ही दुख नहिं दीजे। देह दई ताकूँ भजि लीजे ॥22॥
कछु आई मन कछुक न आई। तन कर हिंमति बहुत घटाई ॥23॥
इक दिन राणा चल्यौ सिकारा। संग भुवन हू लयौ पुकारा ॥24॥
बन में हरष भगे निज जोरे। सबनि आप आपनि छोरे घोरे ॥25॥
सब उलटे मृगमालन पाई। भुवन एक हरनी जु दवाई ॥26॥
माता जदपि बहुत समझायौ। पै छत्रिनु सँग मन द्वै आयौ ॥27॥
दई मृगी के इक तरवारि। ग्याभ सहित कीने द्वै फारि ॥28॥
तब लखि मन उपज्यो निरबेद। व्याकुल ह्वै मन कीनौं खेद ॥29॥
आइ माइ के पगि परि रह्यौ। सबै बितांत मृगी को कह्यौ ॥30॥
माता अब मन में यह ल्याऊ। चलि वृंदावन दिछा दिवाऊ ॥31॥
यह सुनि माता बहुत सिहाइ। श्रीवनचँद पै दिछा दिवाइ ॥32॥

सुमिरत मंत्र भयौ बैराग। यह चाकरि दीजे यह त्याग ॥33॥
माता सुनि तब मतौ विचार्‍यौ। अपनों परम धरम ऊचार्‍यौ ॥34॥
जो माता तरवारहि बांधै। गुरु हरिजन सेवा क्यों साँधै ॥35॥
यों करिये हिंसा नहिं होइ। पूजें बिन जन जाइ न कोइ ॥36॥
तब तरवारि काठ की करी। मूठि सुभग कंचन नग जरी ॥37॥
केतक दिन इहिं भाँति बिताइ। इक दिन खोलि सरोवर न्हाए ॥38॥
तिहि ठा हुते बहुत रजपूत। कर ले देखत एक कपूत ॥39॥
काठि म्यानि ते न्यारी करी। द्वै कनि लखि त्योंही करि धरी ॥40॥
राणाजी सों दुहुनि सुनाइ। भुवन दारु तरवारि बनाइ ॥41॥
ये चाकर सबमें सरदारा। बांधै सदा काठ हथियारा ॥42॥
बहु दिन करी चुगल ई दोउनि। राणा ने उर धरी न कोउनि ॥43॥
कहत कहत जब लए उकताई। देखन कों मिलि कियौ उपाई ॥44॥
चौका के दिन जब इहाँ आवै। तब यो कहौ जु खबर न पावै ॥45॥
प्रात हि गोठ बाग में कीजे। राग रंग करि सब सुख लीजे ॥46॥
यो कहि करी भुवन जब आयौ। लियौ संग करि बाग सुहायौ ॥47॥
राग रु भोग पान पकवाना। नर्तक नट सबको सनमाना ॥48॥
बैठी सभी सबै मिलि आई। राणा ने इक बात उठाई ॥49॥
आप आपनि तरवारि दिखावऊ। अरु वाके गुण नाम सुनावऊ ॥50॥
पहल आपनी काढि जु लीनी। देखन रजपूतन कर दीनी ॥51॥
कमरि सों सबनि काठि दिखराई। चली सु बात भुवन पै आई ॥52॥
कही भुवन तुम हू जु दिखावहु। अरु याकौ गुण मोल सुनावहु ॥53॥
भवन भगत झूठे तें डरो। ज्यौं कछु ही त्यौं ही उचरौ ॥54॥
कह्यौ चहत है यहै दारु की। प्रभु मुख निकसाई सार की ॥55॥
सकुचे नहीं प्रसन्न सदाई। निधरक ह्वै तरवारि दिखाई ॥56॥
तुरत म्यान ते काठ जु लई। प्रभु करि दुति दामिनि सी भई ॥57॥
ताकौ तेज सह्यौ नहिं पर्‍यौ। राणा सकल सभा जुत डर्‍यौ ॥58॥
तब राना वे चुगल बुलाए। गरदन मारौ दुष्ट महाए ॥59॥
इनकौ घर धन सब हरि लेहु। कुटुँबहि देस निकारौ देहु ॥60॥
भुवन हि दया चुगल की आई। राणा सो सब कथा सुनाई ॥61॥
प्रभु की माया जगत नचावै। प्रभु की इच्छा सों बनि आवै ॥62॥
सबके हिये में वे भगवान। भली बुरी के प्रेरक जान ॥63॥
ताते इनकों दोष न कोइ। साची बात कही इन दोइ ॥64॥

मेरे मन बैराग सुहायौ। कपट ससतर बाँधि कै आयौ ॥65॥
प्रभु पंचन में राखी लाज। सबही भाँति सँवारे काज ॥66॥
सत्य बचन कही चुगल बचाए। भवन भक्त राणा मन भाए ॥67॥
पट भूषण हय गय धन दीयौ। पट्टौ देस सवायौ कीयौ ॥68॥
ठाकुर भक्तनि के हित लाजै। घर बैठे परभू सन कीजै ॥69॥
पहर एक सेवा मन धरै। तब जुहार राना कौं करै ॥70॥
पहिले परमारथ चित लावै। स्वामि काज पाछै उठि ध्यावै ॥71॥
महासूर सब मानैं कानि। राणा बहुत करै सनमान ॥72॥

दोहा

भुवन भावना में सुदृढ़, रहै एक रस नित्त।
भगवत माता के कहे, राखे प्रभु में चित्त ॥73॥

इति भवन भक्त को चरित्र संपूर्ण

सन्त रूपदास 'अवधूत'

1. उपोद्घात : बात उससमय की है जब इस निबंध के लेखक से 'परमहंस' श्रीस्वामी सुरतरामजी महाराज की अनुभववाणी के संपादन केलिए इन्हीं की गद्दी के महंत ब्रह्मलीन श्रीरामबक्षजी, आयुर्वेदाचार्य ने कहा था। महंत महाराज के आदेश-पालनार्थ लेखक ने उनसे श्रीपरमहंस महाराज के जीवनप्रसंग तथा अनुभववाणी से सम्बद्ध हस्तलिखित पुस्तकें माँगी थीं। उन्होंने जीवन सम्बन्धी 'वैराग्य-बोध' तथा 'गुरु-ब्रह्मलीन-जोग' ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियों के साथ-साथ अनुभववाणी की एक 'पड़त[1]' तथा एक 'पुस्तक[2]' प्रदान की। इन सभी पुस्तकों के आधार पर लेखक ने कठोर परिश्रम कर परमहंस महाराज की 2054 श्लोकात्मक अनुभववाणी सम्यक्प्रकारेण संपादित की, विस्तृत तथा गंभीर टिप्पणियाँ लिखीं और रामस्नेही-सदेश के विशेषांक के रूप में प्रकाशित की। उक्त विशेषांक की भूमिका में यह बात स्पष्ट रूपेण लिखी गई थी कि उक्त दोनों ही प्रतियों में परमहंस महाराज का 'मननिरूपण' नामक ग्रंथ उपलब्ध नहीं है जबकि पुस्तक में उपलब्ध कुल शब्दों[3] की विगत में इस ग्रंथ का नामोल्लेख मिलता है।

परमहंस महाराज के 40 शिष्य थे, उनकी विशाल शिष्य-परम्परा थी। पठित सन्तों की संख्या भी कम न थी किन्तु दुर्भाग्य से एक कालखंड में इनके प्रमुखस्थान जयपुर रामद्वारे का सम्पूर्ण हस्तलिखित साहित्य इधर-उधर होगया। उक्त दो पुस्तकों (पड़त तथा पुस्तक) के अतिरिक्त साँगानेर रामद्वारे में परमहंस-महाराज की वाणी की और प्रतियाँ न थीं। अतः उक्त ग्रन्थ की खोज में, मैं प्राच्यविद् श्रीगोपालनारायणजी बहुरा,

---

1. जिल्दरहित अर्थात पत्रकार को पड़त तथा

2. जिल्द युक्त बड़ी पुस्तकों को पुस्तक कहा जाता है। जो पुस्तकें बीच में सिली होकर जिल्दी युक्त व ईंट के आकार की होती हैं, साथ ही आकार में छोटी होती हैं, उन्हें गुटका कहा जाता है।

3. रामस्नेही संत सकल प्रकार के छंदों, पदों, टीकाओं (भाषा-टीका) को 'सबद' नाम से बोलते और लिखते हैं। इसके विपरीत, सिद्धसाहित्य की चाल पर संतसाहित्य-अध्येता मात्र पदों को ही 'सबद' कहते हैं। वास्तव में 'सबद', 'शब्द' पद का समानार्थी है और 'वाक्य रसात्मक काव्यं' के अनुसार वाक्य, छंद, प्रकरण और पूरा ग्रंथ ही वाक्य की परिभाषा में समाहित होजाता है। अतः सबद को वाक्य का समानार्थी मानकर सभीप्रकार के छंदों, पदों केलिए प्रयुक्त करना सर्वथा उचित है। संत-साहित्य-अध्येताओं का मत है 'संत शब्द पढ़ने के [illegible] होते हैं।' यह बात सर्वथा सार्थक है। यहाँ 'वाक्य' के स्थान पर 'सबद' शब्द का प्रयोग संतों की साहित्य को अपनी निजी देन है।

निवर्तमान उपसंचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (अब स्वर्गीय) के सम्पर्क में आया। तत्कालीन समय में श्रीबहुरा सिटीपेलेस, जयपुर के पोथीखाने के प्रधान के पद पर आसीन थे। श्रीपरमहंस महाराज की शिष्यपरम्परा का जयपुर राजघराने से अत्यंत निकट का सम्बन्ध था। अतः इस बात की प्रबल सम्भावना थी कि राजघराने के निजी पुस्तकालय में परमहंस महाराज की वाणी की कोई प्रति उपलब्ध होजाय। जब मैं सिटी-पैलेस में गया तब वहाँ उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचियों का एक रजिस्टर मुझे दिया गया और कहा गया कि मैं देख लूँ कि मेरे द्वारा चाही गयी पुस्तक वहाँ उपलब्ध है अथवा नहीं। दुर्भाग्य से उस रजिस्टर में परमहंसजी की वाणी की कोई भी पुस्तक नहीं मिली किन्तु सौभाग्य से वहाँ दो गुटके मिले जिनमें से एक में श्रीस्वामी रूपदासजी अवधूत महाराज की वाणी (छाँटवाँ) तथा एक में सन्त श्रीमनोरथरामजी की वाणी का संकलन मिला। सन्त श्रीमनोरथरामजी, श्रीस्वामी निश्चलरामजी झिलायवालों के शिष्य हैं। श्रीनिश्चलरामजी, महाराज रामचरणजी के शिष्य थे। इनकी वाणी बहुत ही सरल, मधुर तथा प्रभावकारी है। छंद पिंगलानुसार तथा विषय सन्तमतानुमोदित हैं। वाणी का आकार भी अच्छी मात्रा में है।

जब मैंने अवधूत महाराज की वाणी के गुटके को पढ़ा, तब यकायक मुझे याद आया कि मेरे परमश्रद्धास्पद गुरुमहाराज श्रीस्वामी कीर्तिरामजी महाराज के एक गुरुभाई सन्त श्रीसज्जनरामजी आजीवन लाखेरी रामद्वारा में रहे थे और लाखेरी का रामद्वारा श्री अवधूत-महाराज की परम्परा से सम्बद्ध है। सन्त श्रीसज्जनरामजी का गृहस्थाश्रम का नाम शंकरलाल सिंहल पुत्र रामचंद्र सिंहल था। ये विक्रमसम्वत् 1983 में अपने पुत्र हरिराम (मेरे गुरु स्वामी कीर्तिरामजी का पूर्वाश्रमीय नाम) के साथ करौली के सन्त पण्डित श्रीरामरतनजी, आयुर्वेदाचार्य के शिष्य बने थे और वि.सं. 2001 में करौली रामद्वारे में ही ब्रह्मलीन हुये थे। ये आजीवन लाखेरी रामद्वारे में ही रहे थे। लाखेरी के सन्त श्रीभजनारामजी परमहंस की इन पर विशेष कृपा थी।

जब मेरा मेरे मूल निवासस्थान गंगापुरसिटी जाना हुआ तब मैंने गुरुमहाराज से श्रीस्वामी रूपदासजी अवधूत के बारे में जानकारी चाही तब उन्होंने मुझे इनके जीवन की बहुत ही अहम घटनाओं की जानकारी दी तथा इनकी वाणी का एक गुटका भी बक्षीश किया जिसमें छाँटवाँ वाणी तथा मुक्तिविलास नामक ग्रंथ का संग्रह है। गुरुमहाराज ने सन्त श्रीभजनारामजी के जीवन की आँखों देखी घटना भी बताई जो पाठकों को आगामी पृष्ठों में उपलब्ध होगी।

2. गुटका : मेरे संग्रह में मेरे गुरुमहाराज द्वारा बक्षीश किए हुए ऐसे दो गुटके हैं जिनमें अवधूत महाराज की वाणी का संग्रह है। दोनों ही गुटकों के लेखक सन्त श्रीदुर्लभरामजी हैं जो श्रीअवधूत-महराज के शिष्य थे। प्रथम गुटका जिसमें अवधूत महाराज की 1724 शब्दात्मक वाणी तथा मुक्तिविलास ग्रंथ का संकलन है सवा पाँच गुणा साढ़े तीन इंचीय

आकार वालों पृष्ठों का है जिनकी कुछ संख्या 655×2×2=2620 है। यह गुटका विक्रमसम्वत् 1894 में लाखेरी रामद्वारे में लिखा गया है और इसमें "स्वामी सन्तदासजी का शब्द सर्व 830; श्रीरामचरणजी महाराज का शब्द सर्व 3536; रामजनजी महाराज का शब्द सर्व 933; रूपदासजी महाराज का सर्व शब्द 1724; फुटकर ग्रंथ 26; साखी 126; सर्वांगसार का प्रकरण 37; सर्व श्लोक 32071" का संग्रह है। इसकी पुष्पिका संकलनकार ने इसप्रकार दी है। रूपदास महाराज की, कृपा भई भरपूर। द्रुलभराम **गुटको लिख्यो, राम राम भरपूर ॥ राम राम भरपूर सैर लाखेरी जानों। रामदुवारौ खूब धरम सुभ जान बखानों ॥ अठरासै चौरानवै भयो ज आप संपूर। रूपदास महाराज की कृपा भई भरपूर ॥1॥ दोहा—आसोज बदि दुवादसी, बार मंगल होय। द्रुलभराम गुटको लिख्यौ, सतगुरु किरपा सोय ॥2॥**

दूसरा गुटका विक्रमसम्वत् 1903 में गोविन्दगढ़ में लिखा गया जिसमें 28 भुजंगी छंद; 84 सवैया, 90 कवित्त; 5 परचियाँ, 15 ग्रंथ, 836 पद, सर्व 1058 शब्दों का संकलन है। वास्तव में शब्दों की संख्या ज्यादा है क्योंकि संकलनकार ने 5 परचियों तथा 15 ग्रंथों के शब्दों का योग न करके इन्हें ही योग में सम्मिलित कर लिया है। इस गुटके में 329×2×2=1316 पृष्ठ हैं। मूलतः इस गुटके में भजनों का संकलन है जिसमें संकलन का क्रम इसप्रकार है, पहले श्रीस्वामी रामचरणजी के पद, तत्पश्चात् श्रीस्वामी रामजनजी वीतराग के पद और तत्पश्चात् अवधूत श्रीरूपदासजी के पद। इस गुटके में श्रीरूपदासजी महाराज की कई ढालों का सुंदर संकलन है। दोनों ही गुटकों की लिपि सुंदर व सुवाच्य है तथा स्थिति सुदृढ़ है। इस गुटके की पुष्पिका इसप्रकार है **"चंद्रायणा : रूपदास महाराज कृपा मोपै भई। उनकी बुधी विचार गोटको लिख्यो सई ॥ गोयंदगढ़ के माँहि गुणीसै तीन रे। परिहाँ द्रुलभराम कर जोर कही है बीन रे ॥1॥ महा सुदी जो अष्टमी, जाण बगीची माहिं। द्रुलभराम गुटको लिख्यो, भयो संपूरण आहिं ॥2॥"**

3. वाणी परिचय : गुटका क्रमांक प्रथम में उपलब्ध वाणी की विगत इसप्रकार है—

स्तुति : कूण्डल्या 2, कवित्त 2, कुल 4।

साखी : गुरुदेव 52, सुमरण 68, विनती 23, विरह 24, ग्यान-विरह 4, लै 5, प्रेमप्रकास 11, पीव-पिछाणन 4, परचा 16, पतिव्रता 15, बिभचारणी 10, बिसवास 63, बिरकत 19, निरवरति 7, साध 25, असाध 12, साध-संगति 34, कुसंगति 9, अकल 8, बेअकल 7, बिचार 6, निहचा 26, जीवत-म्रितक 7, सजीवण 5, लछि बिदेही 12, सारग्राही 4, औगणग्राही 5, बाचक-ग्यानी 8, अग्यानी 9, रामबिमुख 7, काल 14, चितावणी 40, उपदेस 16, जिग्यासी 7, गुरुपारख्या 7, सिषपारख्या 4, गुरु-सिष-पारख्या 16, गुरुबिमुख 5, लोभीगुरु 15, चितकपटी 6, देखादेखी 15, सूरातण 13, टेक 12, हतप्रीति 5, किस्तूरिया मृग 9, मन 21, सती 7, बेहद 13,

मधिमारिग 4, निरपख 4, रस 6, सुखममारिग 4, भगति 32, सुभकरमी 4, दया 4, माया 9, कामीनर 19, सील 11, जरणा 6, रहति 5, सहज 3, बहुआरंभी 4, लोभीनर 15, आसाबेली 6, निद्रा 19, निंद्या 12, साँच 9, भ्रमबिंधुस 9, भेष 16, चाणक 29, सर्व 964 ॥

चंद्रायणा : गुरुदेव 4, सुमरण 16, बिरह 25, प्रेमप्रकास 3, लै 2, परचा 5, पतिबरता 2, बिसवास 11, बिरकत 3, सन्त-महिमा 3, साध 12, असाध 7, साध-संगति 5, कुसंगति 5, अकलि 2, बेअकलि 1, बिचार 4, उपाय 4, निहचा 3, समरथाई 8, अग्यानी 11, चितावणी 23, उपदेश 19 जिग्यासी 6, सिषपारष 3, लोभीगुरु 2, कायर 2, सूरातण 2, टेक 7, मन 3, दया 4, कामीनर 5, सील 4, लोभीनर 6, भेष 5, चाणक 2 ॥सर्व 235॥

झूलणा : गुरुदेव 3, सुमरण 2, सिवधरमी 2, प्रेमप्रकास 1, परचा 2, बिरकत 6, साध 6, असाध 2, काल 8, चिंतावणी 3, उपदेस 8, दया 4, विचार 1, टेक 3, सील 2, साँच 1, भेष 1 ॥सर्व 55॥

सवैया मनहर : सुमरण 1, बिरह 2, बिरकत 2, उपदेस 4, ग्यानी 3 ॥सर्व 12॥

कवित्त : गुरुदेव 8, सुमरण 5, बिनती 4, परचा 3, बिसवास 7, बिरकत 3, असाध 3, साध 2, साध-संगति 4, चिंतावणी 6, उपदेस 3, लोभीगुरु 2, गुरु-सन्मुख-बिमुख 3, अग्यानी 2, टेक 4, दया 4, भगति 2, साँच 4, भेष 3, चाणक 2 ॥सर्व 74॥

कूण्डल्या : गुरुदेव 26, सुमरण 9, बिनती 4, विरह 2, प्रेमप्रकास 2, परचा 2, पतिबरता 2, बिसवास 25, साध 10, साध-लछ 15, बिरकत 11, असाध 9, साध संगति 12, कुसंगति 4, गुरुपारख्या 5, गुरु-सनमुख 7, लोभीगुरु 2, अग्यानी 6, वाचक-ग्यानी 3, बेअकलि 4, अकलि 2, अभिमानी 5, लोभीनर 5, चिंतावणी 13, उपदेस 20, टेक 7, दया 4, सांच 7, भ्रम-बिंधुस 3, भेष 9, चाणक 8 ॥सर्व 248॥

रेखता : गुरुदेव 5, सुमरण 4, नाम-महिमा 4, विनती 8, बिरकत 6, साध 1, साध-संगति 2, काल 7, उपदेस 3, परचा 3, सूरातण 1, मन 1, अग्यानी 2, भेष 3 ॥सर्व 50॥

ग्रंथ गुरुमहिमा : दोहा 9, चंद्रायण 3, चौपाई 25, कूण्डल्या 2 ॥सर्व 39॥

ग्रंथ मनसुख : चौपाई 50, दोहा 33, कूण्डल्या 4 ॥सर्व 87॥

ग्रंथ रजमाबोध : दोहा 35, चौपाई 110, चंद्रायण 2 ॥सर्व 147॥

ग्रंथ दयाबोध : दोहा 9, चौपाई 36, चंद्रायण 4, कूण्डल्या 2 ॥सर्व51॥

ग्रंथ ग्रहणसार : दोहा 12, चौपाई 55 ॥सर्व 67॥

ग्रंथ मनउपदेस : दोहा 31, चंद्रायण 1 ॥सर्व 32॥

ग्रंथ ग्यानरतन : 662 (संकलनकार ने छंदानुसार संख्या नहीं दी है। यहाँ छंदानुसार संख्या से अधिक सबेकार न होने से हमने भी उनकी गणना नहीं की है। इस ग्रंथ

में ग्रंथकार ने कई शब्दों की टीकाएँ भी दी हैं किन्तु उन्हें संख्या में शामिल नहीं किया है। यथार्थ में इन बचनका शब्दों को शामिल करना चाहिए।

ग्रंथ रूपबोध : संस्कृत श्लोक 62, टीका का दोहा 13, चौपाई 10, अरेल 23, कूण्डल्या 19, छंद 3 ॥सर्व 130॥

ग्रंथ विनती : 20।

पद : विभिन्न रागों में 51।

कुल शब्द संख्या 2924। संकलनकार ने शब्दों की संख्या 1724 दी है। उन्होंने 1724 संख्या कैसे निकाली, इसका उत्तर है 4+964+235+55+12+74+248+50+8 (ग्रंथों की संख्या) +51+20=1721। लिपिकार से योग करते समय 3 का फर्क रह गया है। जब कभी संपूर्ण वाणी की उपलब्धि होगी तथा प्रकाशित करने की व्यवस्था होगी, तब इस पर विस्तृत गवेषणा प्रस्तुत की जायगी। दूसरे गुटके से इस गुटके में उपलब्ध वाणी का मिलान; इसमें प्राप्त अधिक शब्दों की संख्या निर्धारणादि का कार्य इस उम्मीद से छोड़ दिया है कि यदि इनकी पूरी वाणी ही मिल जाएगी तो यह परिश्रम व्यर्थ चला जाएगा। पहले लाखेरी रामद्वारे में पूरी वाणी उपलब्ध थी, अब इन्द्रगढ़ में है। प्राप्त करने के प्रयास जारी हैं।

4. ग्रंथकार-परिचय : श्रीस्वामी रूपदासजी महाराज का परिचय देने वाला साहित्य हमारे समक्ष दो रूपों में उपलब्ध है–(1) स्वयं अवधूत महाराज द्वारा निर्मित रजमा-बोध ग्रंथ में दिया गया आत्मपरिचय तथा (2) सन्त श्रीआत्मारामजी महाराज द्वारा ग्रंथ मुक्ति-विलास में दिया गया परिचय। दोनों ही ग्रंथों के आधार पर उपलब्ध परिचय का सारांश निम्नप्रकार है–

1. श्रीस्वामी रूपदासजी महाराज के पिता का नाम श्रीदुलीचंदजी बाकलीवाल था जो अजमेर के पास पीसांगन नामक गाँव के निवासी तथा जैन धर्मावलम्बी थे।
2. श्रीअवधूत महाराज सेठ श्रीबिरदीचंदजी के गोद चले गये थे।
3. इनका परिवार धन-दौलत की दृष्टि से सम्पन्न तथा धार्मिक-संस्कारों की दृष्टि से सुसभ्य तथा सुसंस्कृत था।
4. ये स्वयं जैन आम्नाय के अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने संस्कृत-भाषा का भी अध्ययन किया था। इनकी वाणी में सुभाषित तथा पंचतंत्र के कई श्लोकों का अक्षरशः अनुवाद मिलता है जिससे अनुमान होता है, इन्होंने इन ग्रंथों को बचपन में खूब याद किया होगा। इन्हें संस्कृत में श्लोक बनाने में भी कुशलता प्राप्त थी तबही इन्होंने 'रूपबोध' नामक ग्रंथ संस्कृत श्लोकों में बनाया और उसपर स्वयं ने ही टीका लिखी है।
5. इनका जन्मसम्वत् तथा बचपन का क्या नाम था, का विवरण दोनों ही ग्रंथों में उपलब्ध नहीं है।

6. श्रीस्वामी रामचरणजी महाराज का उपदेश ग्रहण करने के पूर्व इनका विवाह हो गया था; इस बात की पुष्टि इस बात से तो होती है ही क़ि इन्होंने विरक्त-चक्र-चूड़ामणि श्रीस्वामी रामचरणजी महाराज के विक्रमसम्वत् 1828 के चैत्र मास में शाहपुरा में प्रथमतः दर्शन करने पर शीलव्रत की धारणा की थी, साथ ही इस बात से भी होती है कि जब ये शीलव्रती बनकर पीसांगन पहुँचे और अपनी पत्नी से शारिरिक-सम्बन्ध स्थापित करना परित्याग कर दिया तब उसने इन्हें शाप देने का दुःसाहस किया था। उससमय की घटना की पुष्टि में इन्होंने एक साखी फरमाई है **"आठ धनाजी तज गये, सालभद्र बत्तीस। इक रंडी की रूपदास, क्या लागे दुरसीस ॥"** जिसका तात्पर्य है—'रूपदास अब रामजी केलिए बिक गया है, रामजी का होगया है। अतः उसपर तेरी जैसी काम-पिपासिनी नारी की दुराशीषों का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। रूपदास ने अब रामनाम रूपी कवच पहन लिया है जिसे भेदना किसी के द्वारा भी शक्य नहीं है।"

7. विक्रमसम्वत् 1823 अथवा उससे कुछ पूर्व की किसी रात्रि में इन्हें भयंकर दुःस्वप्न आया जिसमें इन्होंने देखा 'मैं मर गया हूँ। यमदूतों ने मुझे पकड़ लिया है। मैं सहायता केलिए पुकार रहा हूँ किन्तु कोई भी सहायता केलिए उपस्थित नहीं होरहा है।' जागकर इन्होंने इस स्वप्न पर गंभीरता से विचार किया और रामजी की भक्ति करने का निश्चय किया। इन्होंने इधर-उधर कई सन्तों, पंडितों, मुल्ला-मौलवियों, भट्टारकों, मुनियों से सम्पर्क किया और भगवत्प्राप्ति कराने की प्रार्थना की किन्तु कोई भी इन्हें सन्तुष्ट न कर सका। इसी मध्य विक्रम-सम्वत् 1823 के ज्येष्ठ महिने में इन्हें श्रीस्वामी रामचरणजी महाराज के बारे में ज्ञात हुआ और ये मन-ही-मन उनकी शरणापन्न होगए। ये उनके दर्शनार्थ जाने का नित्यप्रति विचार करते किन्तु **'गृह कारज नाना जंजाला'** जाने में अवरोध बन जाते। इसप्रकार ऊहापोह में ही इनका पाँच वर्ष का बहुमूल्य समय व्यतीत होगया। यद्यपि यह सच है कि इससमय इनका मन अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में था तथापि यह भी सच है कि यमराज के द्वारा दिए जाने वाले कठोर कष्टों का भी इनके मस्तिष्क पर पूरा-पूरा असर था। अतः ये योग्य गुरु की शरणापन्न होने की प्रबलेच्छा को दबा न सके। ये श्रीस्वामी रामचरणजी महाराज के दर्शन पाने को लालायित रहने लगे।

8. अंततः वह शुभ दिन भी आगया जब इन्होंने श्रीस्वामी रामचरणजी महाराज के दर्शनों का लाभ लेकर शीलव्रत की धारण करते हुए रामस्नेही-धर्म धारण किया। यह शुभ दिन था, विक्रमसम्वत् 1828 के चैत्र महिने के शुक्ल पक्ष की तृतीया। ये कुछ दिन शाहपुरा में रहकर रामस्नेही-साधना-पद्धति की बारीकियों को सीखते रहे। जब इन्हें पूरा विश्वास होगया कि इन्हें रामस्नेही-साधना-पद्धति

भली-भाँति हृदयंगम होगई है तव ये अपने पैतृक गाँव पीसांगन में पधार आये।

9. जब इनके परिवारवालों ने सुना कि इन्होंने जैनधर्म का परित्याग कर रामस्नेही धर्म धारण कर लिया है तब उन्होंने इनका उग्र विरोध किया। सर्वाधिक विरोध इनकी पत्नी ने किया जो इनकी प्रबलतम शत्रु बन गई। ये अपने पथ से विचलित नहीं हुए। रामनाम का अखंड जप करने लगे। शीलव्रत का दृढ़ता से पालन करने लगे। इनका स्वभाव अत्यंत सहनशील था। अतः ये पत्नी, परिवार और जातिवालों का विरोध सहन करते हुए भी घर-गृहस्थी का भार ढोते हुए रामभजन करते रहे। जब इनकी पत्नी का विरोध चरमसीमा पर पहुँच गया तब अंततः इन्होंने साधु होने का निश्चय कर लिया।

10. साधु होने का निश्चय श्रावण शुक्ला चतुर्दशी, विक्रमसम्वत् 1836 को किया। इसी दिन इन्होंने गृहस्थी के कपड़ों का परित्याग किया और रामस्नेही-साधुओं जैसे कपड़ों को धारण किया। इसीदिन इन्होंने पीसांगन गाँव का परित्याग किया और श्रीस्वामी रामचरणजी महाराज के शाहपुरा में दर्शन किए। इसीसमय इन्होंने गुरुमहाराज के समक्ष अपनी विकट स्थिति निवेदित की। तब महाराज रामचरणजी ने इन्हें सारी स्थिति का दृढ़ता-शूरवींरता के साथ मुकाबिला करने का परामर्श दिया। महाराज रामचरणजी ने उससमय इन्हें जो उपदेश फरमाया, वही ग्रंथ **रजमाबोध** का प्रतिपाद्य विषय है।

11. ग्रंथकार ने ग्रंथ रजमाबोध में महाराज रामचरणजी द्वारा प्रदत्त उससमय के उपदेश को बहुत ही विस्तार के साथ पौराणिक और भक्तमालिक उदाहरणों के द्वारा लिखा है जिसका सार इतना ही है कि साधक को साधना उसीप्रकार लक्ष्यारूढ़ होकर सुदृढ़ता-पूर्वक करनी चाहिए जिसप्रकार शूरवीर सभी प्रकार की चिंताओं, विचारों तथा घटनाओं का परित्याग करके मात्र शत्रु-संहारपूर्वक स्वराज्य-प्राप्ति रूप लक्ष्यारूढ़ होकर लड़ता है। यदि साधक सांसारिक क्रिया-कलापों में ही चित्त की वृत्तियों को उलझाए रखता है अथवा संसार के लोगों से ही लड़ाई-झगड़ा करता रहता है तो निश्चय ही वह स्वलक्ष्य-मोक्ष की प्राप्ति कदापि नहीं कर पाता। यथार्थ में साधक स्वरूपावस्थिति तबही प्राप्त कर सकता है जब वह संसार का राग-सम्बन्ध सुदृढ़तापूर्वक परित्याग करदे और चित्तवृत्तियों को स्वात्मचिंतन में लगा दे। संसार को छोड़ने पर अन्य संसारी विघ्न उपस्थित करते हैं। उन विघ्नों को शूरवीरों की तरह साधक विनष्ट करता रहे, यही उसमें उसका रजमत्व-शूरवीरत्व है।

12. महाराज रामचरणजी के उपदेश को सुनकर श्रीरूपदासजी ने संसार के प्रति बची-खुची आसक्ति का भी परित्याग कर दिया और कह उठे 'चाहे कोई मेरा सिर ही क्यों न काट दे, मैं निर्गुण-भक्ति का परित्याग नहीं करूँगा। मैं

रजमा-शूरवीरता को बीसों-विस्वा = पूर्णरूपेण धारण करूँगा। कोई मुझे कितना ही विचलित करने का प्रयत्न करे, मैं विचलित नहीं होऊँगा। मनुष्य को एकबार मरना होता है, रोज-रोज नहीं। जब मरना ही है तब बेमौत क्यों मरा जाय? रामजी का भजन करते हुए रामजी के निमित्त ही क्यों न मरा जाय। अब मुझे गुरुमहाराज ने रजमा-शूरवीरता का पाठ पूरी तरह पढ़ा दिया है। अतः मैं उसे धारण करके रामजी का भजन करूँगा।" पाठकों को श्रीरूपदासजी महाराज के उक्त विचारों को उनके मूल शब्दों में ही पढ़ना चाहिए। क्या ही सुंदर लिखा है **"गुरू महरि सूँ रूपदास, रजमा बिसवाबीस। निरगुण भगती नैं तजूँ, भावै काटो सीस ॥144॥ रजमा ले सुमरण करूँ, तन मन दे करतार। रूपदास साँचे मते, मरणों है इकबार ॥145॥ सतगुरु रजमों मो दियो, बीसू बिसवा पूरि। रूपदास अब नैं तजै, तन मन करि दे धूरि ॥146॥"**

13. श्रीरूपदासजी महाराज साधु होकर ढूँढाड़, हाड़ौती, मेवात, मेरवाड़ा, मेवाड़, व्रज और मारवाड़ में रामभजन करते हुए रामधर्म का प्रचार-प्रसार करने लगे। ये अधिकांशतः लाखेरी, चौमूँ, गोविन्दगढ़, कालाडेहरा, शाहपुरा (जयपुर के पास), मनोहरपुर, कोटपूतली तथा बहरोड़ और इनके आस-पास के क्षेत्र में रहते थे। इन्हें लाखेरी (हाड़ौती) और चौमूँ (ढूँढाड़, जयपुर से 30 किलोमीटर) अधिक पसंद थे।
14. उपलब्ध साहित्य के अनुसार इनके वाणीकार विरक्त शिष्यों के नाम हैं—(1) श्रीनानकरामजी (2) सन्त श्रीआत्मारामजी (3) सन्त श्रीकिशोरदासजी (4) सन्त श्रीसुखरामजी। शीलव्रती गृहस्थ शिष्यों के नाम जो वाणीकार भी थे। (1) श्रीश्योजी ब्राह्मण तथा (2) श्रीगिरधरजी ब्राह्मण। इनके अतिरिक्त विरक्त सन्त शिष्यों में सन्त श्रीदुर्लभरामजी का नाम भी मिलता है जो अच्छे लेखक थे। इनके ही लिखे हमें दो गुटके मिले हैं जिनके आधार पर ऊपर का विवरण प्रस्तुत किया गया है।
15. इनकी वाणी के गुटके लिख-लिखकर इनके शिष्य ले जाया करते थे तथा उससे आत्मबोध प्राप्त करते थे, ऐसा सन्त श्रीआत्मारामजी ने ग्रंथ मुक्ति-विलास में लिखा है।
16. ग्रंथ मुक्तिविलास में लिखा है, लाखेरी के निवासी मनमुखी थे। वे किसी के भी उपदेश को ग्रहण नहीं करते थे क्योंकि वे अपने आपको विद्वान् तथा ब्रह्मज्ञानी मानते थे किन्तु श्रीरूपदासजी के व्यक्तित्व के सामने वे सभी नतमस्तक होगए और रामजी का भजन करने लगे।
17. श्रीस्वामी रूपदासजी महाराज, जैसा ऊपर बताया गया है अधिकांशतः लाखेरी और चौमूँ में रहते थे। लाखेरी में इनके निवास केलिए इनके सामने ही रामद्वारा वन गया था किन्तु चौमूँ में नहीं। चौमूँ में तालाब की पाल पर एक छत्री में ही ये निवास करते थे जिसके सामने बड़ का विशाल वृक्ष था। छत्री के पीछे

एक बावड़ी तथा एक बगीचा भी था। सामने तालाब और उसके आगे जंगल था। इनकी स्थिति चौमूँ में वैसी ही थी जैसी गलता में श्रीअग्रदास तथा कील्हदासजी की, और काशी में रामानंदजी की थी। मुक्तिविलासकार के अनुसार तो इनका प्रमुख निवासस्थान चौमूँ ही ठहरता है, क्योंकि इन्होंने इन्हें यहीं प्रकट होना लिखा है। पाठक ध्यान रखें, प्रकट होने का तात्पर्य जन्मने से नहीं होकर, प्रसिद्ध होने से है। जिसप्रकार रामानंदजी काशी में प्रसिद्ध हुए, अग्रजी तथा कील्हजी गलता में हुए। रामस्नेही-संप्रदाय में यह मतवाद प्रचलित है कि श्रीरूपदासजी महाराज का प्रधान स्थान लाखेरी का रामद्वारा है किन्तु उक्त विवरण के आधार पर यह धारणा गलत सिद्ध होती है। **"राम नाम रसना सूँ गायो। बहु जीवन कूँ भेद बतायो ॥ चौमुँ नग्र जन भया उजागर। रूपदास भगती का आगर ॥82॥**

18. श्रीस्वामी रूपदासजी किस गाँव में ब्रह्मलीन हुए, का उल्लेख मुक्तिविलासकार ने स्पष्टतः नहीं किया किन्तु पूर्वा पर विवरण से चौमू में ही ब्रह्मलीन होना सिद्ध होता है। समय का उल्लेख अवश्य किया है जिसके अनुसार ये विक्रमसम्वत् 1870 की चैत्र वदि तीज, बुधवार को अर्धरात्रि में रामराम का उच्चारण करते हुए ब्रह्मलीन हुए। इनके सत्संगियों ने बहुत ही श्रद्धा, भक्ति और जोरदार ढंग से इनकी उत्तरक्रिया की जिसके लिए सामग्री-पीपल की लकड़ी, रूई, घृत, खोपरा, नारेल, कपूर आदि भी वे ही लाए। सुंदर विमान बनाया गया और उसमें इनके शरीर को विराजमान करके उस स्थान तक ले जाया गया जहाँ इनके लाँपा देना था। ब्राह्मण श्योजीराम ने इन्हें लाँपा-मुखाग्नि दी।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना सर्वथा उचित है कि रामस्नेही-संप्रदाय में प्रारम्भ से ही यह परम्परा रही है कि सन्तों को मुखाग्नि सन्त न देकर गृहस्थ रामस्नेही देते हैं। वर्तमान में भूल से कुछ सन्त अपने गुरुओं को मुखाग्नि देने की जिद करते हैं जो प्राचीन परम्परा के सर्वथा विपरीत है। महाराज रूपदासजी को, जैसा ग्रंथ मुक्तिविलास में स्पष्टरूपेण उल्लेख है, ब्राह्मण श्योजीरामजी ने मुखाग्नि दी थी जबकि उससमय उनके विरक्त सन्त शिष्य भी उपस्थित थे। इसीप्रकार श्रीस्वामी रामचरणजी महाराज को श्रीनवलरामजी मंत्री के भाई पाथूरामजी मंत्री ने मुखाग्नि दी थी जबकि उससमय श्रीमहाराज के 40 शिष्य उपस्थित थे। वर्तमान समय में भी आचार्यश्रीजी के ब्रह्मलीन होने पर उनको मुखाग्नि मंत्री परिवार का कोई पुरुष ही देता है। अतः सन्तों को चाहिए कि वे पुरानी मर्यादाओं को श्रद्धा के साथ पालें।

19. ग्रंथ मुक्तिविलास में श्रीरूपदासजी महाराज के शिष्यों के नाम आए हैं। उन नामों में सन्त श्रीदुर्लभरामजी का नाम नहीं है। इससे जान पड़ता है कि ग्रंथ

मुक्तिविलास में मात्र उनही शिष्यों के नाम आए हैं जो वाणीकार थे। अस्तु! इन शिष्यों अथवा सभी शिष्यों के कितने शिष्य-प्रशिष्य हुए, ज्ञात नहीं होता क्योंकि लगभग 75 वर्ष पूर्व ही इनकी शिष्य-परम्परा समाप्त हो गई थी। अन्तिम सन्त श्रीभजनारामजी परमंहस थे जो लाखेरी रामद्वारे में ही ब्रह्मलीन हुए थे। इनके बारे में बताते हुए मेरे गुरुमहाराज बताते हैं कि ये लाखेरी के ही जाये-जन्मे थे और शरीरेण इनकी जाति तमोली थी। पूर्वाश्रम की इनकी एक लड़की थी। इन्हें जब ज्ञान हुआ, तब ये घर-गृहस्थी छोड़कर रामस्नेही सन्त बन गये। ये पढ़े-लिखे और अच्छे गायक सन्त थे। चूंकि इन्हें ज्ञान पाकर वैराग्य हुआ था। अतः इन्होंने अपना बहुमूल्य समय इधर-उधर के प्रपंचों में न बिताकर रामभजन करने में विताना श्रेयस्कर समझा। प्रारम्भ में जब ये भजन करने बैठते तब इन्हें नींद अधिक सताती थी। अतः इन्होंने छत में लगे लोहे के कड़े से अपनी शिखा को बाँधकर बैठना प्रारम्भ कर दिया जिसका सुपरिणाम यह निकला कि ये बहुत शीघ्र ही निद्राजयी सन्त होगये। निद्रा को जीतकर ये सन्तुष्ट नही हुए, इन्होंने जिह्वा को भी नियंत्रित करने की सोची और आजीवन मौनव्रत धारण कर लिया। इनका नियम था—प्रातःकाल उठकर कमण्डलु उठाते, उसमें छानकर जल भरते और जंगल को जाते। जंगल से आकर कमण्डलु को रामद्वारे में रख देते और तत्काल झोली लेकर गाँव में चले जाते। किसी भी एक जगह खड़े होकर एकबार राम की आवाज़ करते। इनकी आवाज़ सुनते ही रामस्नेही लोग भोजन इनकी झोली में रख देते और तत्काल ये उस भोजन को लेकर रामद्वारे आते और उसे कमण्डलु के जल में भिगो देते। भींगे हुये भोजन को जल की तरह पीकर पद्मासन लगाकर भजन करने बैठ जाते और दूसरे दिन जंगल जाने (शौच जाने) के समय ही उठते। इसप्रकार इन्होंने 28 वर्ष तक अहर्निश अखंड रामनाम जप किया। इस अवधि में न ये सोये और न नहाए। मात्र एक कोपीन धारण करके भजन करते। जब झोली लेने जाते या अन्यत्र जाते तब खलका पहन लेते। 28 वर्ष नहीं नहाने के उपरान्त भी इनके शरीर से केशर की सी सुगन्धि आती थी। ये सिद्ध महापुरुष तथा भूत-भविष्य और वर्तमान को जानने वाले थे। एकबार मेरे गुरुमहाराज ने इनसे लिखकर पूछा कि रामजी महाराज! आपने कोई शिष्य नहीं बनाया है, क्या आपको बुढ़ापे में सेवा करने वाले शिष्य की आवश्यकता नहीं होगी। तब इन्होंने लिखकर उत्तर दिया था कि मुझे सेवा कराने की आवश्यकता नहीं होगी। मैं तो रामभजन करता हुआ ही शरीर का परित्याग कर दूँगा। हुआ भी ऐसा ही। जब ये झोली लेने गाँव में गए, तबही दो सांड लड़ते-लड़ते इनकी ओर झपटे और एक सांड ने अपने सींग इनके पेट में घुसा दिए। सींग घुसते ही इनके पेट से रक्त बहने लगा किन्तु ये

बेचैन नहीं हुए। इन्होंने अपने दोनों हाथ दोनों घावों पर रखे और जल्दी-जल्दी रामद्वारे की ओर लौटे। रामद्वारे में आकर इन्होंने पद्मासन लगाया और जोर-जोर से राम-राम का उच्चारण करने लगे। उससमय ये पूर्ण होश में थे। राम-राम करते-करते ही इन्होंने प्राणों का उत्सर्जन कर दिया। इस समय लाखेरी रामद्वारा में करौली-रामद्वारे के सन्त सज्जनरामजी इनकी सानिध्य में रहते थे। यह समय विक्रमसम्वत् 1993 का था। ये मोहजीत महात्मा थे। जब ये पद्मासन लगाकर जोर-जोर से राम-राम का उच्चारण कर रहे थे तब इनकी पुत्री इनके अन्तिम दर्शनार्थ रामद्वारे में आने लगी किन्तु इन्होंने इशारे से उसे आने से रुकवा दिया था। ये अपने परिवारवालों को रामद्वारे में आने तक नहीं देते थे। कारण, परिवार का मोह साधना से डिगावे वाला होता है। वैसे, ये शाहपुरा भी बहुत कम ही जाते थे किन्तु जब भी जाते थे तब महाराज निर्भयरामजी इनके लिए अन्य सन्तों से कहते थे—**'श्रीमहाराज का भेख ऐसे परमहंस सन्तों के पीछे ही चल रहा है। ये ही श्रीमहाराज के कमाऊ पूत हैं। सभी को इनसे शिक्षा लेनी चाहिए।'** एकबार इन्द्रगढ़ के सन्त श्रीरामरतनजी ने इनसे प्रार्थना की कि 'मुनिमहाराज! इन्द्रगढ़ की बर्षी में पधारो।' ये वर्षी में पधारने केलिए तत्कालं तैयार होगये। सन्त श्रीरामरतनजी बहुत जल्दी-जल्दी चलते थे। अतः उन्होंने इनसे कहा—'मैं थोड़ा जल्दी चलता हूँ। अतः मेरे साथ चलने में आपको असुविधा हो सकती है। इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।' तब इन्होंने उनसे कुछ नहीं कहा और अपना कमंडलु उठाकर उनके साथ चल दिए। सन्त रामरतनजी का आश्चर्य का ठिकाना उससमय नहीं रहा जब ये श्रीरांमरतनजी से घंटों पहले ही इंद्रगढ़ रामद्वारे पहुँच गए थे। वास्तव में ये आकाशमार्ग से उड़कर इंद्रगढ़ पहुँच गए थे। इनका करौली के सन्त पं॰ श्रीस्वामी रामरतनजी महाराज से बहुत ही प्रगाढ़ स्नेह था क्योंकि वे भी इन जैसे ही वैराग्यवान, परम-भजनानंदी तथा सिद्ध सन्त थे। श्रीरांमरतनजी महाराजं तीस वर्ष तक सोये नहीं और अहर्निश रामभजन करते रहे। इन्हींके शिष्य सन्त श्रीसज्ज्जनरामजी, श्रीभजनारामजी महाराज की सेवा में रहे थे। सन्त श्रीभजनारामजी ने सम्वत् 1981 का चातुर्मास श्रीस्वामी निर्भयरामजी महाराज के साथ करौली में किया था जिसमें 86 सन्तों की उपस्थिति थी और जो अपनी ऐतिहासिकता केलिए रामस्नेही-सम्प्रदाय में चर्चित व प्रसिद्ध है।

ये अपने पास गृहस्थ-रामस्नेहियों को भी एक-दो मिनिट से अधिक नहीं टिकने देते थे। इशारा करने पर भी यदि कोई इनका सानिध्य न छोड़ता था तो ये जलपात्र लेकर रामद्वारे को खुला का खुला छोड़कर जंगल में चले जाया करते थे। परमविरक्त, परमवीतरागी संत थे।

ग्रंथ मुकति-विलास

दोहा

रूपदास गुरुदेवजी, आप रूप जगदीस।
आत्माराम बंदन करै, नाय चरण में सीस ॥1॥
बंदन करुँ गुरु राम कूँ, तुम चरणाँ की आस।
हिरदै आप बिराजिहो, ज्युँ भाखूँ मुकति बिलास ॥2॥
सतगुरु मुकति सरूप हो, मैं हूँ जीव निधान।
हिरदै आप बिराजिकै, मेट्यौ सकल अग्यान ॥3॥

गुरु की स्तुति कहिए हैं, छंद भुजंगी

बड़े गूरूदेवं क्रिपावान भारी, रखो आप चर्णा आयो सर्ण थारी।
देवो जोग वैराग्य निर्मल्ल ग्यानं, धरो कर्र मस्तक्क मिटाओ अग्यानं ॥4॥
मै हुँ दास तुम्हरौ करो बोध भ्यासा, देवो राम नामं मिटावो ज आसा।
सदा तुष्ट पुष्टं लियाँ ब्रह्मआसं, कहै आत्मारामं नमो रूपदासं ॥5॥
नमो गूरुदेवं दयावान दाता, बड़े बीतरागा लियाँ सम्म साता।
नमो आप स्वामी महातेज धारी, लियाँ सील समुता स ममुता निवारी ॥6॥
नमो ग्यान दाता गुरूजी बिराजो, भए ब्रह्म रूपं गिरा ग्यान गाजो।
नमो आप स्वामी किए कर्म नासं, कहै आत्मारामं नमो रूपदासं ॥7॥
नमो रूपदासं बडे दान पत्ती, लियाँ उर्र समता तजी निद्धि छत्ती।
कियो बन्न बासा तजी जग्ग आसा, लियो रामनामं बिदेही बिलासा ॥8॥
मनोबिच्चि काया उपाया न कोई, अभंगी असंगी अगंजी अमोई।
लियाँ भक्ति दसधा स नामं उपासं, कहै आत्मारामं रखूँ चर्ण आसं ॥9॥
सदा आप अलिप्त मनों व्योम रूपा, जसे भान तेजं असे ही अनूपं।
जसे सोम सीतल्ल असे तदाकारी, मनों दत्त सोहै असी वृत्ति भारी ॥10॥
जसे ध्रुब्ब ज्ञानी असे आप ध्यानी, हुए रिष्भदेवं असे ही बिग्यानी।
भए हर्रि रूपा स ब्रह्मं विलासं, कहै आत्मारामं नमो रूपदासं ॥11॥
तुमै जोग दाता भए आप स्वामी, तुमै ब्रह्मरूपं सुणौ अंत्रजामी।
तुमै भक्ति धारे मनो बेग मारे, हुए रूप नौका किते जीव त्यारे ॥12॥

मनो मेघ रूपा सबै भोमि बर्षे, तुमै सांति कारी सदा सम्म दर्षे।
लियाँ भक्तिजोगं किरीया उपासं, कहै आत्मारामं नमो रूपदासं ॥13॥
तुमै कल्लु माहीं स औतार धारे, आए निज्ज चर्णा किते जीव त्यारे।
तुमै भक्ति हेतं मनों तन्न लीए, दिए राम नामं बडे धर्म कीए ॥14॥
भए नाम दाता सबै धर्म टीको, जपै नर्र केते उधारण्ण जी को।
असे जग्ग त्यारो मिटै जम्म त्रासं, कहै आत्मारामं नमो रूपदासं ॥15॥
मनी मोह माया सबै आप त्यागी, तजे गुण्ण तीनूँ असे अन्नुरागी।
गह्याँ सील समता असाता निवारी, भए मन्न भावं सबै लच्छ धारी ॥16॥
लियां निर्रवेदं किया बन्नवासं, हटे काम क्रोधं किए कर्म नासं।
धरी ऊच आसा कियो पद्द बासं, कहै आत्मारामं नमो रूपदासं ॥17॥
सदा क्रांति भारी दिपै तेज स्वामी, सबै लच्छ लीयाँ भए आप नामी।
दयावान दाता किते जीव त्यारो,देवो रामनामं युं पारं उतारो ॥18॥
आवै सर्ण तुम्हरी सबै सुक्ख पावै, गुरुजी उधारै असै सन्त गावै।
करूँ मै सतूती रहूँ चर्ण पासं,कहै आत्मारामं नमो रूपदासं ॥19॥

अबै सतगुरु औतार धारि कारिज किया

चौपाई

कलिजुग में औतार ज लीना। माहाजन घर बासा कीना ॥
जनमत घर घर बँटी बधाई। वे जन माया लिपै न काई ॥20॥
गर्भ ग्यान की सुधी रहाई। बाल केलि छक झूठ सदाई ॥
केई दिन ग्रिह में चित दीया। अरू सुक्ख नाना विधि लीया ॥21॥
पिता मात कुटम्मै परिवारा। इन सबहिन कूँ लागै प्यारा ॥
धन दौलत अरु बहु सुख नाना। और सर्व सुख जानू आना ॥22॥
इन सुक्खन में मन नहिं दीना। माया झूठि त्यागि सब कीना ॥
एक दिवस ऐसी मनि आई। रामभगति कीजे मन माँई ॥23॥
अरध रैनि का समा ज होई। तन में आसा बरती सोई ॥
जाय जनाँ का सत्सँग कीजे। तन मन अरपि चरन में दीजे ॥24॥
भाति भाति षट दरसण देखा। जोगी जंगम ढूंढ्या भेखा ॥
सबही आप आपकी भाखै। राम नाम हिरदै नहिं दाखै ॥25॥

दोहा

सबही का मत हेरिकै, देखि लिया निरताय।
बिना भगति भगवान की, एक न आया दाय ॥26॥

रामचरणजी परगट्या, साहिपुरै सुभ गाँव।
भगति प्रकासी देस में, सुण्यौ सरवणाँ नाँव ॥27॥

चौपाई

नाम सुणत मन उठ्यौ हुलासा। तब कीनी दरसण की आसा।
जाय जनाँ का दरसण कीया। तन मन अरपि चरण में दीया ॥28॥
अठरासै तेईस ज होई। जेठ स मास जाणिए सोई।
वा समत जाइ दरसण कीया। निर्गुण ग्यान जनाँ का लीया ॥29॥
तब जन बोल्या कहाँ सूँ आया। करि परणाम र बचन सुणाया।
अजमेर परगणे पिसाँगण होई। जहाँ हमारा बासा होई ॥30॥
बैस घर में जन्म हम लीयो। अब सतगुरु को दरसण कीयो।
ग्यान भगति बैराग बतावो। हम जीवन कूँ सरणि लगावौ ॥31॥
तब गुरु राम जु नाम सुणाया। भिन्न भिन्न करिके समझाया।
और भरम सब दूरि उठाया। राम नाम निज तत्त बताया ॥32॥
जबही नेम सील व्रत लीया। तब गुरु सीसि हाथि परि दीया।
ले अग्या अपणे ग्रह आया। राम नाम सूँ मन्न लगाया ॥33॥

दोहा

टेक पकड़ि निज नाम की, भजन करै दिनराति।
ग्रीहधरम के कारणै, पचिहारी सब जाति ॥34॥
जाति पाति अरु कुटम की, बरज न मानै एक।
गुरु रामचरण परताप सूँ, गही न छाँडी टेक ॥35॥

चौपाई

टेक पकड़ि हूवा जन न्यारा। जाति पाति का तज्या पसारा ॥
को निंदै को विंध्न कराई। उनकी संक न मानै काँई ॥36॥
निसदिन सुमरै आतमरामा। और सर्व ही त्याग्या कामा ॥
प्रेम मगन में रहै सदाई। राम नाम हिरदै ल्यौ लाई ॥37॥
एक दिना ऐसी मन आई। सतगुरु दरसण कीजे जाई ॥
त्याग बिराग धारण कीजे। ग्रीह त्याग हरि का होइ रीजे ॥38॥
अठरासै छत्तीस ज होई। सावण सुदि चौदसि दिन सोई ॥
जाइ राजोसी लियो बिरागा। और सकल आरँभ को त्यागा ॥39॥
त्याग बिराग धारणा पूरा। टेक निभावण जन बड़ सूरा ॥
ग्यान भगति हिरदै ढिढि होई। राम नाम में सुरती पोई ॥40॥

साहिपुरै सतगुरु को ठामा। वहाँ जाय कीनी परनामा ॥
सीस नँवाय चरण में दीना। सतगुरु कर मस्तग परि कीना ॥41॥
जब उठि हाथ जोड़कर बोल्या। बचन सभाषण सबही खोल्या ॥
तब गुरु नेम धरम सब दीया। सबही आप धारणा कीया ॥42॥
जाइ बनखँड में ध्यान लगाया। राम राम रसना सूँ गाया ॥
रटत राम भया प्रेम प्रकासा। तब हिरदै आयो बिसवासा ॥43॥
सुरति सबद का मेल मिलाया।.................................... ॥
रस पीवत मन भया अनंदा। अब मोहि मिलसी परमानंदा ॥44॥
सबद ब्रह्म कँठ हिरदे गया। नाभि कमल जाइ बास ज कया ॥
उलटि र सबद गिगन कूँ ध्याया। वहाँ राम का दरसण पाया ॥45॥
दरसण करि मनि आनँद होई। गुपत भेद नहिं जाणै कोई ॥
कै जाणै कोइ सन्त सधीरा। कै जाणै सतगुरु मन पीरा ॥46॥
वहाँ सूँ उपजी अणभौ वाणी। सो परगट या जग में जाणी ॥
साखी सबद कवित छँद होई। अरिल रेखता निसाणी होई ॥47॥
मनहर छंद झूलणा जाणौ। भाँति भाँति का सबद प्रमाणौ ॥
या बिधि सबद बहुत ही कीया। पुस्तक अरबौ बोल्या लिखिया ॥48॥
मेवाड़ देस हाड़ौती होई। मारवाड़ ढूंढाहड़ सोही ॥
मेवाति आदि अरु बिरज प्रमाणौ। ज्याँ ज्याँ मुलकाँ रामति जाणौ ॥49॥
देस देस का दरसण आवै। चरण कमल रज सीस चढ़ावै ॥
हाथि जु जोड़ि दीनता भाखै। सतगुरु सबद हिदा में राखै ॥50॥
सतगुरु राम नाम पिछणावै। सोही सब सिष रसना गावै ॥
रसना राम नैन सूँ दरसन। गुरु सुनमुख होवै सब परसन ॥51॥
और बहुत जिग्यासी आवै। गुटका अरु बोल्या ले जावै ॥
या बिधि बाणी भई उजागर। बाँचै ताहि मिटै दुख आगर ॥52॥
केता सिष्य ग्रेसती कीया। राम नाम सबही कूँ दीया ॥
या बिधि सबका काज सुधार्‌या। भौसागर सूँ पार उतार्‌या ॥53॥
भजन करत बहुता सुध होई। जिनके ग्यान परापति जोई ॥
ग्यान पाय ग्रह त्यागन कीया। जा सतगुरु का सरणा लीया ॥54॥
भेष धारि बिराग ले दासा। सतगुरु सबकी पूरै आसा ॥
त्याग बिराग रु भगति बतावै। सील सँतोष सु लच्छि डिढावै ॥55॥

या बिधि सबकूँ दे उपदेसा। सब सिस्यन का मिट्या अँदेसा ॥
आप अचाही जत मत धीरा। परमारथ कूँ धर्‌यौ सरीरा ॥56॥
सिष साखा बहु महिमा गावै। बंदन करि अर बैन सुनावै ॥
तुम गुरु ब्रह्मरूप अवतारा। तुम गुण अगम लहै को पारा ॥57॥

कूण्डल्या

रूपदास महाराज को महा तीबर बैराग।
भरथर गोपीचंद ज्यूँ मेटी जग की राग ॥
मेटी जग की राग राम रत रहै सदाई।
टेक निभावण जन्न कहाँ लग करूँ बडाई ॥
गुरु रामचरण परताप सूँ भली बजाई खाग।
रूपदास महाराज को महा तीबर बैराग ॥58॥

कवित्त

सतगुरु कृपानिधान ग्यान बिग्यान बिचारण।
जत सत सील सँतोष धारणा ढिढ़ता धारण ॥
गही टेक निज नाम कदे नहिं ममत डिगाया।
लीना तन मन जीत साँच सतगुरु सूँ पाया ॥
जत्त मत्त हरि भगति बिनि छाड्या सकल असार।
राम नाम निज तत गह्या सब धरमाँ का सार ॥59॥

दोहा

गुप्त भेद है राम नाम, सतगुरु दीना सोय।
कै पावै कोइ पारखी, और न पावै कोय ॥60॥
राम नाम सतगुरु दियो, सब धरमाँ को सार।
साँस उसाँसा ध्याय कै, उतरि गए भौ पार ॥61॥
दय्यानंद दयालजी, कलि में धरि अवतार।
राम नाम की नाव करि, किते पतित किए पार ॥62॥
रूपदासजी गुरु मिल्या, बकसि राम का नाम।
नानगराम बंदन करै, बेर बेर परणाम ॥63॥

चंद्रायणा

सतगुरु ब्रह्म सरूप झूठ कछु नाहिं रे।
याही साखी प्रगट बेद के माहिं रे ॥

औसा दूजा और न दीसै कोय जी।
परहाँ नानगराम गुरु सरणि ममोखी होय जी ॥64॥

कूण्डल्या

रूपदासजी परगट्या कलजुग में तन धार।
राम नाम धन बकसि करि किते पतित दिए त्यार ॥
किते पतित दिए त्यार सरण चरणाँ की लीया।
जम जालम सूँ काढ़ि जीव नर मुकता कीया ॥
नानगराम बंदन करै मोहि लीन्हौ आप उबारि।
रूपदासजी परगट्या कलजुग में तन धार ॥65॥
छता सुक्ख संसार का छांडि र भया फकीर।
गुरु रामचरण परताप सूँ खुली ग्यान की सीर ॥
खुली ग्यान की सीर महत जन मन कूँ मार्‍या।
नौ तत का करि नास आपणा कारिज सार्‍या ॥
रूपदास निपज्या भला साँचा सन्त सधीर।
छता सुक्ख संसार का छांडि र भया फकीर ॥66॥
लाखेरी का लोग के लगै न किसको ग्यान।
देस देस काफिंर सदा बड कुल को अभिमान ॥
बड कुल को अभिमान पाण किसको नहिं लागे।
रूपदास को धान होइ रह्यौ जागै जागै ॥
अच्चाही हरिजन असा छाड्यौ मान अमान।
लाखेरी का लोग के लगै न किसको ग्यान ॥67॥
रूपदासजी ब्रह्म है जामें नहीं सँदेह।
गुण इंद्री सब जीति के निसदिन रहै बिदेह ॥
निसदिन रहै बिदेह देह की सोधी नाहीं।
सुक ज्यूँ सुमरण साधि मिल्या हरि का पद माहीं ॥
आत्माराम सरणै सदा उन चरणूँ की खेह।
रूपदासजी ब्रह्म है जामें नहीं सँदेह ॥68॥
रूपदास महाराज के सदा एकरसि ग्यान।
सुक ज्यूँ सुमरण साधिहैं ध्रू ज्यूँ धरिहैं ध्यान ॥
ध्रू ज्यूँ धरिहैं ध्यान बोध नारद ज्यूँ जाको।
टेक लीह प्रहलाद मतो औसो ही ताको ॥

आत्माराम रिष्भदेव ज्यूँ तन मन जीत्या प्राण।
रूपदास महाराज को सदा एकरसि ग्यान ॥69॥
रूपदासजी गुरु मिल्या कलजुग में औतार।
भौसागर सूँ काढ़िके लिया आपकी लार ॥
लिया आपकी लार भरम सब दूरि भगाया।
रामनाम ततसार हाथि हीरा पिछणाया ॥
गुराँ बिना किसोरदास कूण उतारै पार।
रूपदासजी गुरु मिल्या कलजुग में औतार ॥70॥
रूपदास महाराज को मैं खानाजाद गुलाम।
सदा हजूरी राखजो या मन में अठजाम ॥
या मन में अठ जाम सरण मैं थाँकी आयौ।
......................................॥
किसोरदास कूँ राख्ज्यो सदा हजूरी स्याम।
रूपदास महाराज को मैं खानाजाद गुलाम ॥71॥

पद राग चरचरी

रूप रँगीला रँग में रँगि रह्या, आठ पहरि इक धारा रे ॥टेक॥
काम क्रोध अर लोभ मोह कूँ, मार मिलाया छारा रे ॥
जे कोइ उनके सरणै आवै, ताहि उतारै पारा रे ॥1॥
ब्रह्मा बिसन महेसर गावै, सैस रटै इक सारा रे ॥
सनकादिक नौजोगी ध्यावै, सुकदेव उतर्‌या पारा रे।
सोजी बामण सति करि गावै, ए मांगू करतारा रे ॥
रूप सरण मैं जुग जुग पाऊँ, ऐही करूँ बिचारा रे ॥72॥

साखी

रूपदास महाराजजी, कलजुग में औतार।
सोजी का सब दुख मिट्‌या, भेट्‌या परम उदार ॥73॥

कवित्त

कर में करवा लीन मूंज बंधण कोपीना।
सर्व जीव प्रतिपाल सलिल कू छाणि र लीना ॥
सील धारि उर मांहि उसन दारुण नहिं लागै।

ग्यान गूदड़ी देखि तास सूँ सीतहि भागै ॥
ब्रह्म चीन दयावंत झूठ कूँ दूरि भगाई।
ग्यान खड़ग ले हाथि कुबुधि कूँ मार हटाई ॥
सोच कियौ सब दूरि राम के सरणै आयौ।
द्विज्ज गिरधर कहै रूप सँत योही गायौ ॥74॥

साखी

रूपदासजी कहत है, ब्रह्मा का सा बैण।
और सरबणाँ सामलौ, ए नहचल देख्या नैण ॥75॥

रेखता

रूप महाराज की महरि मोपै सदा रूप का नाम सूँ विघन भाजै।
जोग को रूप अरु भेष में भूप है च्यार ही संप्रद माहिं गाजै ॥
जगत सूँ तरक अरु गरक हरि नाम में रामहीचरण के भेष छाजै।
सुक्ख ही राम पर त्या अवधूत की उन्न का दरस भै काल भाजै ॥76॥

चौपाई

सतगुरु महिमा अगम अपारा। कोई कहत लेय नहिं पारा।
सिष साषा कछु एह कर गाई। सतगुरुजी की बहुत बढाई ॥77॥
चौमू नगर दिरावड़ होई। जहँ रामानुज प्रगटे सोई।
यहाँ रूपजी धरि अवतारा। केते जीव उतारे पारा ॥78॥
राम रसायण भरि भरि पावै। काल जाल को बंध छुड़ावै।
राम नाम रस अजरा होई। ताकूँ पीवै सूरा कोई ॥79॥

चंद्रायणा

राम नाम रस अखँड रूपजी भरि पियौ।
तन मन इंद्री जीति ध्यान हिरदै गयौ ॥
अैसो परचो सुक्ख घट्ट में होय रे।
परहाँ गुप्त बात को भेव गुराँ पै होय रे ॥80॥
सब धरमाँ को सार नाम निज राम को।
ताकूँ रटि भए पारि पंथ प्रम धाम को ॥
अैसो तत निरताय आप कारज कियो।
परहाँ अमृत प्यालो राम रूप निरभै पियौ ॥81॥

चौपाई

राम राम रसना सूँ गायो। बहु जीवन कूँ भेद बतायो ॥
चोमु नग्र जन भया उजागर। रूपदास भगती का आगर ॥82॥
भाति भाति नगरी सुखदाई। छत्रिधाम ज्याँ बणी सबाई ॥
वहाँ जन आप बिराज्या रूप। जाकी सोभा परम अनूप ॥83॥
बाग बावड़ी पीछे जाणों। आगे बड़ सीतल परमानों ॥
तल तलाव बन आगे होई। जाति जाति का पंछी सोई ॥84॥
या बिधि नगर ऊपमा भारी। जाहाँ सन्त रहै उपकारी ॥
ठौर ठौर सब मंगल गावै। साध संग करि अति सुख पावै ॥85॥

दोहा

अति सोभा कासीपुरी, जहँ रामानँद बास।
अगर कील गलतै हुवा, ज्युँ चौमूँ रूपहिदास ॥86॥

चौपाई

रूपदास जन सुख का सागर। राम राम रटि भया उजागर ॥
रामरस्स केही दिन पीया। पीछै गमन अमर कूँ कीया ॥87॥
परगट भया सबैहिन देख्या। गमन कियो जब कहुँ नहिं लेख्या ॥
राम राम कह तन छिटकाया। अरध रेनि का समा ज पाया ॥88॥
अट्ठारा सौ सत्तर होई। चेत जु बुदी जाणिए सोई ॥
तीज जु तिथी बार बुधि आया। ज्याही सतगुरु धाम सिधाया ॥89॥

कूंडल्या

समत अठरा सै सत्तर्‌यौ तीज तिथी बुधवार।
राम राम धुनि तास में जन रूप भए निरकार ॥
जन रूप भए निरकार झूँठ तन त्यागि सरीरा।
जाय मिले पद ब्रह्म जसे धर भरियो नीरा ॥
जा पद माहिं समाइया जाहाँ नब्ब अपार।
समत अठरासै सत्तर्‌यौ तीज तिथी बुधवार ॥90॥
चैत बुदी तिथि तीज है बार बुद्ध सुभ ठाम।
सिष साषा ढिंग बस्सि के कहत्त राम ही राम ॥
कहत राम ही राम धुनी हिरदै परकासा।
अरध रैनि तन त्यागि ब्रह्मपद कीना बासा ॥

वा पद में जन मिल गए सन्तन को निज धाम।
चैत बुदी तिथि तीज है बार बुद्ध सुभ ठाम ॥91॥
रूपदास गुरुदेवजी त्यागन कियो सरीर।
देह गेह मिथ्या गिण्यौं अैसा सन्त सधीर ॥
अैसा सन्त सधीर राम रटि राम समाया।
जाय मिले निरकार जहाँ कोइ करम न काया ॥
आत्माराम का सीस पर सदा रहै गुरु पीर।
रूपदास गुरुदेवजी त्यागन कियो सरीर ॥92॥

दोहा

गुरुदेव गया प्रमधाम कूँ, सिस्यन कूँ दे पोष।
निहचल पद में जाय के, पाया परम सँतोष ॥93॥
काचो तन त्यागन कियो, जीरण बसतर जाणि।
रूपदास गुरुदेवजी, पूँच्या पद निरवाण ॥94॥

चौपाई

सतगुरु त्याग देह का कीया। आप अमरपुर बासा कीया।
सब सतसंग्याँ मता उपाया। बहुत भांति सामगरी लाया ॥95॥
कासट लकड़ि पीपला होई। रूई घिरत मगाया सोई।
नारेल कपुर केसरि सब जाणों। या बिधि सबही सूँज प्रमाणों ॥96॥
फेरि विमान बनायो आई। ताके ऊपर धजा उडाई।
स्नान कराय तन्न कूँ ल्याया। लेकरि सो विमाण पधराया ॥97॥
राम राम धूनी सब कोई। गावत बहि ले विमाण चलाई।
लाय चिता पै पौंच्या जबही। धर्‍यौ विमाण चिता में तबही ॥98॥

दोहा

सोजिराम लापौ दियो, राम राम धुनि गाय।
गुरु रूप मिले परब्रह्म में, तन झूठो दियो जलाय ॥99॥

चौपाई

नर नारी सब मंगल गावै। मन मानें सोहि दरसण आवै।
और सबद पद कहै कहावै। मंगलपद सबही कूँ भावै ॥100॥
एक पहरि में क्रिया तब भया। राम राम सबही ने कह्या।
आप आप मिल मंगल गाया। सतगुरु सबद हिदा में आया ॥101॥

दोहा

सबही अपने गृह गया, सतगुरु को जस गाय।
सिष साषा गुरुदेव का, रह्या चरण चित लाय ॥102॥
गुरु महिमा तो अगम है, कही कूण पै जांय।
सेस पार पावै नहीं, मैं क्युँ करि बरणूँ गाय ॥103॥
सात समद स्याई करूँ, लेखणि सब बनराय।
धर्ति कागद सारद लिखै, गुरु गुण लिख्या न जाय ॥104॥
धाटि बाधि तुक झड़ि बणी, मो मति सारूँ आय।
आत्माराम लघु भोलिकी, चूक बकसि दे माय ॥105॥
मुक्तिविलास यो ग्रंथ है, सतगुरु को गुण सार।
याकूँ सुण रामै भजै, सो उतरै भौ पार ॥106॥
पंथ मुक्ति को है सई, जन महिमा बिसतार।
याकूँ सुणिकर ग्यान ले, सो पावै ब्रह्म बिचार ॥107॥

इति मुक्तिबिलास संपूर्ण ॥दोहा 21॥ भुजंगी 16॥ कूण्डल्या 11॥ कवित्त 2॥ साखी 2॥ चंद्रायण 3॥ पद 1॥ रेखता 1॥ चौपाई 50॥ सर्व 107॥

ग्रंथ 'रजमाबोध' में स्वयं चरित्रनायक द्वारा दिया गया आत्मपरिचय

दोहा

रजमा में सब सिद्ध है, रजमै पावै ग्यान।
रजमै सबही काम है, रजमै लेत विग्यान ॥1॥
जेता काम ब्योहार का, जिती भगति की टेक।
रजमा बिन झूठा सबै, रूपदास सति देख ॥2॥

झूठ किम्

रजमै पावै रामजी, रजमै धरम विग्यान।
गुरुध्रम देही धर्म जो, रजमैं लेत निधान ॥3॥

निधान किम्

दिल में ग्यान ज ऊपजै, जदि ही भगती होय।
साँसौ भानै मन मही, रूपदास कहुँ तोय ॥4॥

पाके मन पाके मते, एक भगति का रंग।
द्वैत भास सबही मिटै, रूपदास गुरु संग ॥5॥
गुरु के सरणैं रूपदास, रजमा पावै पूरि।
परमजोति हिरदै जगै, चिंता भागै दूर ॥6॥

चिंता किम्

इक दिन सूता राति नैं भया अचम्भा मोय।
हरि की भगति ज कीजिए, चिंता लागी सोय ॥7॥
हरि की भगति ज कीजिए, ऊठ्या एह हुलास।
आछ्या देखि र लीजिए, सतसंगति का बास ॥8॥
ठौड़ि ठौड़ि ढूँढ़त फिऱ्या, छ दरसण लिया सोधि।
कहूँ न देख्या रूपदास, एक सबद परमोध ॥9॥
रामचरणजी परगट्या अठ्ठारासै साल।
बीसाँ वर्ष ज रूपदास, सत्त फकीरी ह्वाल ॥10॥
जिनकी संगति परगटी, हम भी लीनी सोधि।
रूपदास देख्या सही, एक सबद परमोधि ॥11॥
मन माहीं निरणा किया, जत मत साँची टेक।
दया भजन इकतार का, ग्यान लिया हम देखि ॥12॥
अठरासै तेईस के, जेठ मास जो होय।
रामचरण का ग्यान की, पड़ी पारख्या मोय ॥13॥
कान सुण्यां देख्या नहीं, मन में उपजी प्यास।
निजऱ्याँ देख र मानिलूँ, साँचा सबद निवास ॥14॥
ध्यान करूँ आठूँ पहर, एक राम का सोय।
पै रामचरण का दरस की, आतुर ऊठी मोय ॥15॥
अठरासै अठाइस के, सुदी चैत जो तीज।
साहिपुरै दरसण कऱ्या, कारिज मेरा सीज ॥16॥
दया बिचारी बहुत ही, मोकूँ पुनि बतलाय।
कहाँ तुमारा बास है, जाति ज कूण समाय ॥17॥
अज्जमेर के परगणै, गाँव पिसाँगण होय।
तहाँ हमारा बास था, कुल्ल सरावग सोय ॥18॥
गोत बाकलीवाल है, दलीचंद का पूत।
गोधाँ बिरदा साह की, अब हर सूँ राख्या सूत ॥19॥

साहिपुरै मेवाड़ में, तहाँ बिराजै साध।
रामचरण महाराज सूँ, रूप ज कर्‌या समाध ॥20॥
हरि की भक्ति ज दीजिए, भाँति भाँति करि मोय।
तुम पद पाऊँ तुरत ही, ग्यान दीपता होय ॥21॥
तीनूँ पद रजमा मिल्या, ग्यान ध्यान वैराग।
रजमा बिन मिथ्या सबै, खंडण जग की राग ॥22॥
रजमा बिन पावै नहीं, सत्संगति की टेक।
ग्यान ध्यान बैराग जो, रजमा माहिं बमेक ॥23॥
आपा में रजमा दुड़ै, आपै पावै राम।
बन घर का नाता नहीं, रजमा सारै काम ॥24॥
दोहू कर माथै धर्‌या, राखै सत की टेक।
भजन करौ मन हो खुसी, चावौ ग्यान बमेक ॥25॥
सील बरत हमने लिया, साँच मत्त सत होय।
पणि गिरह जाल की तपति में, रह्या न जावै कोय ॥26॥
अठरा सै छत्तीस के, सुदि सावण चौदस दिन्न।
ले बैराग ज मैं गया, तहाँ बिराज्या जंन ॥27॥
तब जन मुख सूँ बोलिया, भजन माहिं बैराग।
साँचे मत तुम नीसर्‌या, तो खंडौ जग की राग ॥28॥
राग खँडी सुख ऊपज्या, पाया पूरा ग्यान।
तब हम रजमा पहुँचिया, रजमा कह्यौ निधान ॥29॥
रजमा सूँ कुण ऊधर्‌या, सतगुरु भाखो मोय।
सोही मैं निरणा करूँ, तुम पद पाऊँ सोय ॥30॥

निर्णय, चौपाई

रजमा सूँ सिवजी पद लीन्हौ। पारवती कूँ ग्यान ज दीन्हौ ॥
तंमोगुण का ग्यान न होई। रजमै अमर्‌या कलि में सोई ॥31॥
रजमै ब्रह्मा वेद उचार्‌यौ। रजोगुंण पद हिरदै धार्‌यौ ॥
रजोगुंण से रचना कीनी। अकलि बहुत हिरदा में लीनी ॥32॥
लछमी रजमै रूप सँवार्‌यौ। बिसनू बस करि कारिज सार्‌यौ ॥
सक्ति नाम रजमा सूँ पायो। नानावत को रूप बणायो ॥33॥

करणी करके करुणा बागी। सुरति जये करि मये लागी ॥
भइ मोहणि भगवत बसि होई। सक्ति बिना जग तिर्‌या न कोई ॥34॥
सक्ति करी विष्णु अवतारा। दाणा राकस सबही मार्‌या ॥
सक्ति बिना भगती नहिं होई। भगति सकति से पावै सोई ॥35॥
नारदजी ब्रह्मा सुत भयो। रजमा सूँ हरि को पद लयो ॥
बहुत भाँति ब्रह्मा दुख दीन्हौ। मन मत से वैराग ज लीन्हौ ॥36॥
ग्यान ध्यान बहु कला बिचारी। बोहत तिर्‌या जगत नर-नारी ॥
भगवत पदवी मन की दीन्हो। नारद रजमै भगती लीनी ॥37॥
रजमा बिन मिथ्या सब ग्यान। रजमा छोडै जगत अग्यान ॥
रजमा सूँ साहिबजी राजी। बिन रजमा सूँ झूँठी बाजी ॥38॥
सनकादिक ब्रह्मा सुत होई। रजमै ग्यान बिचार्‌या सोही ॥
जाय पिता पै ग्यान ज शाख्यौ। ब्रह्म ग्यान को निरणौ दाख्यौ ॥39॥
माया ब्रह्म जुदा करवाया। ब्रह्मा बचन फेर नहिं अग्या ॥
प्रभू हंस औतार ज लीन्हौ। रजमै ध्यान सिद्ध जो कीन्हौ ॥40॥
लोक तीन में बिचर्‌या सोही। आप रूप सनकादिक होई ॥
बहुत जीव ले पार उतार्‌या। राजा परजा मिल्या ज सारा ॥41॥
वैद धनंतरि रजमै भयौ। अकलि औषधाँ निरणौ कयो ॥
आप माहिंली खबर बिचारी। औषदि रोग पुस्तग में धारी ॥42॥
सोही जग में चाली जाई। वस्तु जसो गुण बरतै भाई ॥
ब्यासदेव ने रजमौ लीन्हौ। बेद ग्यान हिरदा में चीन्हौ ॥43॥
पदवी जन औतारी पाई। रजमै ग्यान परगट्‌यौ भाई ॥
रजमा बिना बात सब झूठी। बस्तु बिना सब खाली मूठी ॥44॥
परथू राजा रजमौ कीनौ। पिरथी को निरणौ जो लीनौ ॥
मरजादा जिन बांधी ठीक। सीव नीव की साँची भीख ॥45॥
कपिलदेव तप रजमै कीन्हौ। बहुत भांति हरि को पद लीन्हौ ॥
रजमै ग्यान ध्यान बहु धार्‌या। आप तिर्‌या बहु पार उतार्‌या ॥46॥
रिषभदेव ने रजमौ कीन्हौ। नौखँड राज त्याग जिन दीन्हौ ॥
रतनसिंघासन नवनिधि होई। सब तजि सुरति रमैए पोई ॥47॥
रजमा सूँ अमर्‌या फल सोही। रजमा बिना तिर्‌या नहिं कोई ॥
रजमै त्यागै मिलता भोग। रजमा बिना न सुधरै जोग ॥48॥
ध्रूजी रजमौ खूब बिचार्‌यौ। उतानपाद बोहत पचि हार्‌यौ ॥
हरि को पद जबरी करि लीन्हौ। अटलपदी हरि तुरतहि दीन्हौ ॥49॥
चाँद सूरज परिकरमा देवै। सुणै ध्यान एकन्तर लेवै ॥

रजमा बिना ध्यान नहिं होई। बेद ग्रंथ सब भाखै सोई ॥50॥

दत्त डिगम्बर रजमौ कीन्हौ। बिसन अंस औतार ज लीन्हौ ॥
चौबीस गुराँ की लीनी साख। हिरदै ग्यान लियौ सत भाख ॥51॥
राजा जदु कूँ ग्यान सुणायौ। अपणा पद में तुरत मिलायो ॥
चेला बिन गुरु परगट नाहीं। चेला गुरु की करै बड़ाही ॥52॥
नाम पिता का जग सब बूझै। गुरु का नाम ज चेला पूजै ॥
परथम बूझै जग सब आई। गुरू नाम तुम द्योह बताई ॥53॥
सँकराचारज दत का दासा। दस जु नाम जिन खूब प्रकासा ॥
पाकौ मत मन में ठहरायौ। रजमै संकर दत पद पायौ ॥54॥
पुनि पहलादू भया ज सोही। रजमै भगति करी जिन सोही ॥
बहुत ताप हिरणाकुस दीनी। रजमौ पकड़ि टेक जिन लीनी ॥55॥
राकस सबही पचि कर हार्‌या। हरि प्रह्लाद का कारिज सार्‌या ॥
आप लियौ डीलाँ औतारा। रजमा सूँ कीन्हौ जग पारा ॥56॥
पुनि सुग्रीव देखल्यौ भाई। रजमै हरिजी करी सहाई ॥
एकै साह तुलाधर देखौ। रजमै हरिपद लियौ बिसेषौ ॥57॥
ग्रीह माहिं भगती जो कीन्ही। सन्ताँ की सेवा सत चीन्ही ॥
हनूमान ने रजमौ कीन्हौ। सीता जाय सनेसौ दीन्हौ ॥58॥
कोस चारसै एक फलंगा। दूनागिरि रजमै लियौ अंगा ॥
रजमै गयौ पताल ज माहीं। नाम प्रताप कह्यौ नहिं जाही ॥59॥
रजमै बलि ने दान ज दीनौ। मांग्या सूँ नाकार न कीनौ ॥
तब हरि ने लीनौ औतारा। वामन रूप आए बलि द्वारा ॥60॥
साढातीन पैंड धरती दे भाई। और न माँगू राम दुहाई ॥
बलि ने भाखी बधती लीजे। मेरौ जस्स जगत में कीजे ॥61॥
एक आतमा मेरे होई। आसण जिती लेत हूँ सोई ॥
तब हरि अदभुत रूप बनाई। तीन पैंड सब धरती आई ॥62॥
आधा पैंड फेरि दे भाई। तब बलि देही आप मपाई ॥
रजमै बचन न छाड्यौ सोय। देही सूँपि अमर पद होय ॥63॥
रजमा बिन सीझ्यौ नहिं कोई। धरम सकल ही आ फल होई ॥
एक नाम की पकड़ी टेक। रजमै भयौ विभीषण देख ॥64॥
राम नाम ही हिरदै गायौ। सारा घर में नाम लिखायौ ॥
नाम जु बिना इष्ट सब फीकौ। खूण जु बिना नाज नहिं नीकौ ॥65॥
गोतम रिषि रजमौ जो कीन्हौ। ग्यान पदी को मारग लीन्हौ ॥
सोनक भीष्म अमरीष ज होई। रजमै भगत भया कलि सोई ॥66॥

तिलोचंद के गाढ़ी टेक। रजमै पाया असल बिमेक ॥
सेवा उलटी हरिजी कीन्ही। साँचे मते अमर पद लीन्ही ॥67॥
नौ जोगेसुर रजमौ कीन्हौ। निज बैराग साँच मत लीन्हौ ॥
हरिचँद राजा साँच सम्हाया। विस्वामित्र तोलवा आया ॥68॥
रजमा सूँ गाढौ मत कीन्हौ। तन मन धन परभू हित दीन्हौ ॥
सन्तन की अग्या पग धारे। जीव दया सारी विधि पाले ॥69॥
सत्सँग बिना धरम जो होई। जाकूँ रती न मानै कोई ॥
मन में पकड़ी गाढी टेक। सन्त मतौ हरिचँद को देख ॥70॥
रघु राजा अरु जनक बिदेहा। रजमौ करि त्यारी जिन देहा ॥
जदू राज तजि बन में भागा। रजमौ करि हरि पद से लागा ॥71॥
नाम टेक पकड़ी जिन भाई। रजमै हरिजी करी सहाई ॥
रजमा बिना बात सब थोथी। आठूँ पहरि बाँचल्यौ पोथी ॥72॥
साँचा मत पोथी में गावै। करणी बिना पार नहिं पावै ॥
करणी मतौ जिना का साँचौ। हीरा ज्यूँ एकण रँग राच्यौ ॥73॥
फटिकमणी की देख बडाई। तैसो रँग तैसो हो जाई ॥
एकारंग जगत में सोभा। इकरस बिना जहाँ तहाँ रोभा ॥74॥
बसेसष्ट रजमा से होई। याका ग्यान लिया जिन सोई ॥
नारद मिलिया गैले आई। एक घड़ी की सँगति बिताई ॥75॥
एक घड़ी लीजे बिसराम। या बिन धरम सकल बेकाम ॥
निरगुण पद नीका निरताया। नाम महातम रजमा आया ॥76॥
नाम बिराग बसेसट गायौ। रामचंद्र को गुरू कुहायौ ॥
नारद उपदेस नाम सत राख्यौ। नाम बिना असत्त मुख भाख्यौ ॥77॥
विस्वामित्र तपस्या कीन्ही। रजमै देही खंडत चीन्ही ॥
चौसट सैंस बरस तप कीन्हौ। बिना नाम हंकार ज लीन्हौ ॥78॥
बसेसष्ट के लाग्यौ पाई। आधी तपस्या चरण चढाई ॥
तबै बसेसट बोल्यो सोय। फल सतसँग घटिका दिया तोय ॥79॥
तपस्या बल किरोध जो कीन्हौ। सत्सँग ध्रम नहिं हिरदै चीन्हौ ॥
सस्तर लेर गयौ इक बारा। राजरिषी तब बचन उचारा ॥80॥
गुरुभाइ मारि हत्या जब लीन्ही। गुरू मारबा की मति कीन्ही ॥
बसिसट तप की महिमा चीनी। सस्तर त्याग प्रणाम ज कीनी ॥81॥
पीछै मतौ भगति को पायौ। बसेसष्ट गुरु साच बतायौ ॥
सेसनाग पै पहुँच्या जाई। नाम बिना सब मिथ्या भाई ॥82॥

सतसँग भाखी साँची रेख। बिसवामित्तर लीनी देख ॥
सेसनाग भी सुमरण करिहैं। रजमै धरती मसतग धरिहै ॥83॥
बालहिमीक नाम की टेक। मरा सबद से लिया बमेक ॥
गुरु दीनौ सो लीनौ राखि। फेरि न बोल्यौ दूजी साखि ॥84॥
दोय जनम भगती जन लीन्हीं। सौ करोड़ रामायण कीन्हीं ॥
फेर जिगाँ पँडवाँ का माहीं। रजमै परगट भया ज आहीं ॥85॥
नाम प्रताप जु रजमौ साँचौ। दूजौ रजमौ सबही काचौ ॥
रजमा सूँ पायौ हरि आप। रजमा सूँ पाकै मत जाप ॥86॥
रजमै बिना जगत सब हार्‍यौ। नाकारा को नैंम बिचार्‍यौ ॥
आपा सूँ काँई बणि आवै। काचा मत से हारि दिढावै ॥87॥
काचे मत हरिजी नहीं राजी। जब तब बिगड़ै साधन बाजी ॥
हारि भता से धार न झूठा। हारि मता से साहिब रूठा ॥88॥
मोहोमरद मोरधज राजा। रजमै ग्यान सवार्‍या काजा ॥
रति अहाल तन कूँ नहिं आया। रजमै कलि में थिर ठहराया ॥89॥
कागभुसुँडि रजमा सूँ सीज्या। ग्यान पदी परभू मन रीज्या ॥
काग जूणि में ग्यान ज पायौ। तन मन सब कंचन होइ आयौ ॥90॥
और देही कुण जो काम। भगति बिना सब जूणि निकाम ॥
अयसत मुनि रजमै पद पाया। संचा संग्रह दूरि बुहाया ॥91॥
पारासर ने रजमौ लीन्हौ। जत मत ध्यान भली बिधि कीन्हौ ॥
रजमा से सारा गति पाई। हीमत मरदाँ मदत खुदाई ॥92॥
ऊधौ अरजुन साँची टेक। गीता अरु पारायण देख ॥
हरि को बचन न अपूठो डार्‍यौ। रजमा सूँ अपणपौ त्यार्‍यौ ॥93॥
ग्यान बात सत भाषी ठीक। गुरु कूँ त्याग भरी नहिं भीक ॥
कछु न बिगड्या उनका सोय। साँचे मत कलि अमर्‍या होय ॥94॥
और तिर्‍या औरन कूँ त्यार्‍या। ऊधौ अर्जुन सत्त बिचार्‍या ॥
सत्य मतै भाख्यौ हरि ग्यान। बहुता बाँचि र करै कल्याण ॥95॥
रजमै राज तज्यौ सुलताना। बलख छाँड बन कियौ पयाना ॥
रजमा सूँ बाँदी पुनि बोली। बात सुल्तान खाँ साँची तोली ॥96॥
जग में जीतब कहिए थोड़ौ। वोछौ सुक्ख ठिगावै भोरौ ॥
सुख दुख मुकति कदे नहिं पावै। भजन करै सो भिस्त समावै ॥97॥
अैसी जाण तज्यौ जिन राजू। भीसत मिल्या सँवार्‍या काजू ॥
ग्यान बिना भीसत नहिं होई। बेद कुराणाँ गावै सोई ॥98॥
रजमै जती ज गोरखनाथा। सत जत मत में भया बिख्याता ॥

कोड़ि निनाणू त्यार्‌या मीर। च्यारि जुगाँ लूँ अमर सरीर ॥99॥
भरथर जोगी रजमा पाया। रजमा लिया किया मन भाया ॥
रजमै कलि में अमर्‌या होई। सब सुख त्यागि र दुविधा खोई ॥100॥
चरपट कानड़ रजमा लीन्हा। जोगारँभ का मारिग चीन्हा ॥
जलँधरपाव क साचानाथ। धुंधलीमल रजमा सूँ साथ ॥101॥
रामानँद हरि को औतारा। गाढे मत बैराग ज धार्‌या ॥
बरस सातसै कियो संन्यासा। कालबाण की उपजि न त्रासा ॥102॥
तब रजमै बैराग ज लीन्हौ। साढासातसै बर्ष जु कीन्हौ ॥
एक अगरि जपियौ हरि जाप। पुन्न पाप से लिप्या न आप ॥103॥
निरगुण नाम एक आराध्यौ। और धरम कोई नहिं साध्यौ ॥
अनँत जीव कीया भौ पारा। कहँ लूँ नाम बतावूँ सारा ॥104॥
दूजा पुनि नीमानंददेवा। रजमा सूँ लाग्या हरि सेवा ॥
रजमा करि जिन ग्यान बिचार्‌यौ। याको मत हिरदा में धार्‌यौ ॥105॥
साधूमत की चाल चलाई। भजन दया की टेक समाई ॥
साँचा मन सूँ परगट होई। रजमै करिकै तिर्‌या ज सोई ॥106॥
मधवाचारज बिसनजस्यामि। रजमै पायौ मन बिसराम ॥
रजमौ दास कबीरै कीन्हौ। हरि को पद सुरलभ सो लीन्हौ ॥107॥
रजमा सूँ पकड़ी सत टेक। साँचा लीना भगति बमेक ॥
बहुता दुक्ख जगत ने दीन्हा। रजमा से परभू बसि कीन्हा ॥108॥
नामदेव पुनि छीपा होई। भगति करी साँचे मत सोई ॥
रजमा सूँ कारिज सब सर्‌या। निरगुण पद में बासा कर्‌या ॥109॥
किसनदास ने रजमौ कीन्हौ। गल्तान मत्त गलता में लीन्हौ ॥
मन्न गल्याँ से गलता होई। फेरि जनम पावै नहिं कोई ॥110॥
अगर कील ने रजमा कीन्हा। किसनदास का सरणा लीन्हा ॥
सरणै पाया भगति बिलासा। रजमा सूँ निज पद में बासा ॥111॥
निराणमुनी रजमा सूँ बाज्या। ग्यान ध्यान का मारिग साज्या ॥
हृदै दीत हिरदै हरि गायौ। गलता में रजमौ ठहरायौ ॥112॥
घाटम रजमौ लीनौ पूर। साचे मत हरि लिया हजूर ॥
फेरि कसाई सजना होई। साँचे मते देखिल्यौ सोई ॥113॥
रजमै करी प्रभू की सेवा। रामानँद पै लीनौ भेवा ॥
रजमै सेन सिर अरप्यौ सोई। साधू टहल सुरति में पोई ॥114॥
टहल न छाँडूँ मारै राजा। परभू आण सँवार्‌या काजा ॥
साध टहल को यो फल पायो। आपहि ठाकुर नाम कुहायौ ॥115॥

रजमै सूरदास जो भयौ। ग्यान ध्यान हिरदा में लयौ ॥
हरि दरसण दे आँख खुलाई। सूरदास ने उसी कराई ॥116॥
आप देख देखूँ जो आन। सुरति बीखरै छूटै ध्यान ॥
सूरदास ने असी बिचारी। रजमै अपणी देह उधारी ॥117॥
रजमै जाट धना जो भयौ। बीज बाँट धरती जो लयौ ॥
संमन रजमै हरिपद लीन्हा। सीस काटि पुत्तर का दीन्हा ॥118॥
देवमुरार कुवा जो होई। रजमै ग्यान कथ्यौ जिन सोई ॥
लालदास मुरली जो रामा। रजमै भगति सँवार्‌या कामा ॥119॥
पुनी गैस जो रजमौ कीनौ। बाणी बिमल हरीपद लीनौ ॥
परसराम पीपा पुनि होई। रजमै काम सुधार्‌या सोई ॥120॥
चतुरानागा खोजी सोय। रजमा सूँ पद पाया सोय ॥
रजमा से लीना वैराग। रजमै खंडी जग से राग ॥121॥
मुरारदास तुलसी जु मलूका। रजमाँ बल्ल कदे नहिं चूका ॥
रजमा सूँ निज मारिग पाया। ये काँटे कहरी कूँ गाया ॥122॥
नानिक दादू रजमौ लीन्हौ। न्यारौ पंथ परगटै कीन्हौ ॥
रजमा बिन सीझ्‌या नहिं कोई। भै त्यागाँ रजमा दिल होई ॥123॥
बारा पंथ निरंजणि होई। रजमै काज सँवार्‌या सोई ॥
त्याग बिराग साँच मत लीन्हा। अमर लोक में बासा कीन्हा ॥124॥
सन्त जु दास नाम की टेक। और धरम मान्या नहिं एक ॥
निरगुण वाणी खूब उचारी। मन मनसा नीकी बिधि मारी ॥125॥
रजमा से हरि कौ पद पावै। रजमा बिना भगति नहिं आवै ॥
रजमा दिन पै काई होई। काचा मन से कदे न जोई ॥126॥

काचा मत क्यं, उत्तर, चंद्रायणा

लाल पड़ै मुख नींद बराती क्या करै।
बिन रजमा सूँ जोग कदे नहिं सूधरै ॥
रजमौ नहिं दिल माहिं बैद गुरु जोर क्या।
परहाँ रजमा कूँ दे धन्न गाढ मत मोर क्या ॥127॥
सूरा साँवत राव सती जो होय रे।
रजमै पावै दादि कहै सब कोय रे ॥
राति दिवस का खेल राम सूँ माँडिया।
परहाँ बिन रजमा सूँ रूप होत है भाँडिया ॥128॥

भांडी किम्, उत्तर, दोहा

गुरू ग्यान रजमा महीं, रजमा में सति टेक।
रूपदास रजमा बिना, सबही फीका देख ॥129॥

फीका किम्, उत्तर, चौपाई

रजमा बिना वेद क्या करै। रजमा बिना काज नहिं सरै ॥
सास्तर में सूरापण नाहीं। सूरमता है रजमा माहीं ॥130॥
बिन पूंजी सूँ रीती हाट। बिन रजमै नर बाराबाट ॥
पानहि बिना पेड जो होई। रजमा बिन नर औसा जोई ॥131॥
जल बिन देखी झूठ निवाणि। रजमा बिन फीका सब जाण ॥
माया बिन भोगी जो फीका। रजमा बिना ग्यान नहिं नीका ॥132॥
नर बिन नारि सोभ नहिं पावै। रजमा बिन बैराग गुमावै ॥
चंद्र बिना रजनी जो होई। रजमा बिना भगति नहिं कोई ॥133॥
रजमा बिना ग्यान नहिं नीकौ। रजमौ सकल धरम को टीकौ ॥
जितना धरम जगत में सारा। रजमा विन सब झूँठ पसारा ॥134॥
रजमै सती अगनी में जलै। रजमै तेरू सायर तिरै ॥
सूरा रजमै रण में लड़िही। सतरै घाव न पाछा फिरही ॥135॥
रजमा बिना धरंम नहिं होई। केती कला बणावौ कोई ॥
पतिबरता रजमा सूँ सोहै। रजमा बिना सरब जग रोवै ॥136॥
रजमा बिना गुरू क्या करै। इक पुड़ चक्की चून न पड़ै ॥
दोऊ पाव सरोवरि होई। सूधा धरती चालै सोई ॥137॥
लेखण अंट एक किस काम। बिना बलीते अगनि निकाम ॥
जल बिन धरती निपजै नाहीं। कोरा जल में बीज गलाई ॥138॥
पुरुष बिना तिरिया क्या करै। तिरिया बिना पुरुष पचि मरै ॥
सिसही उतपति इक सूँ नाहीं। त्रिया पुरुष का जोग मिलाई ॥139॥
युँ रजमा बिन सतगुरु क्या करै। हार्‌या पै ससतर नहिं चलै ॥
कायर रती न झेलै तीर। बिरथा रजमा बिना सरीर ॥140॥
एका होट सबद नहिं फुरै। सिष काचौ सतगुरु क्या करै ॥
काचौ बरतन तुरत गलावै। पाका परि चौमासौ जावै ॥141॥
रजमा बिन रजपूती काची। रजमा बिना भगति नहिं साँची ॥
रीति बिना नै राजा सोहै। रजमा बिना बस्तु नहिं ज़ोहै ॥142॥
बिन रजमै नर आँधा होई। च्यारूँ आँख ग्यान बिन खोई ॥
बस्तु बिना रीता जौ ठाँव। रजमा बिना न पावै गाँव ॥143॥

दोहा

गुरू महरि सूँ रूपदास, रजमा बिसवाबीस।
निरगुण भगती नै तजूँ, भावै काटौ सीस ॥144॥
रजमा ले सुमरण करूँ, तन मन दे करतार।
रूपदास साँचे मते, मरणौ है इकबार ॥145॥
सतगुरु रजमौ मो दियौ, बीसूँ बिसवा पूरि।
रूपदास अब नैं तजै, तन मन करि दे धूरि ॥146॥
अठरासै त्रेपन समै, सुदि चैती आठै होय।
कालाडेरा ढुँढाड़ में, ग्रंथ ऊतर्‌या सोय ॥147॥

इति ग्रंथ रजमाबोध संपूर्ण ॥दोहा 35॥ चौपाई 110॥ चंद्रायणा 2॥ सर्व 147॥

महिमा का रेखता

रूप महाराज की महरि मोपै सदा रूप का नाम सूँ बिघन भाजै।
जोग को रूप अरु भेष में भूप है च्यारि ही संप्रदा माहिं गाजै ॥
जगत सूँ तरक अरु गरक हरि नाम में रामहीचरण के भेष छाजै।
सुक्खहीराम पै दया अवधूत की तिनू के दरस भै काल भाजै ॥1॥
जगत को जीव जग माहिं रुलतौ फिरै सोग का रोग में सरब छीज्यौ।
बिषै अरु भोग बिष माहिं बहता बुरा आप ईं ताप कूँ दूर कीज्यौ ॥
पाप को फूतलौ आप दरस्याँ तिरै राम अरु सन्त उपगार कीज्यौ।
सुक्खहीराम लख बेर बंदन करै रूप महाराजि मोहि दरस दीज्यौ ॥2॥
रूप महाराज का ग्यान सुणियाँ थकाँ और को ग्यान नहिं दाँय आवै।
भरम की आतमा भरम में बह रही ग्यान की आतमा मुकति जावै ॥
साँच अरु झूँठ को सन्त निरणौ करै बिषै बकवादि में मुलगुमावै।
सुक्खहीराम जो सरणि ले रूप की छाँड दे जनम निज रूप पावै ॥3॥

विशेष : ऊपरिलिखित तीनों रेखते सन्त श्रीसुखरामजी रचित हैं। ये श्रीस्वामी रूपदासजी अवधूत के शिष्य थे। इन्होंने ये रेखते श्रीअवधूत की वाणी को मंगल करने के उपरांत लिखे हैं। इनमें से प्रथम रेखता सन्त श्रीआत्मारामजी ने ग्रंथ मुक्तिविलास में क्रमांक 76 पर भी संग्रहित किया है। हमें ये तीनों ही रेखते उसी गुटके में मिले हैं जिससे हमने उक्त ग्रंथ को उतारा है।

परिशिष्ट 'क'

श्रीरूपदासजी अवधूत के शिष्य आत्मारामजी के पद

राग होरी

गुरु रूप हमारा दाता हो, होरी खेल खिलावै ॥टेक॥
रामचरणजी सतगुरु सिर पै, जिन सँग फगवा पावै।
फागण में सब गुण तत जीतै, सब सन्तन मन भावै ॥
तबै होरि खेल खिलावै ॥1॥
राम रसायण अंम्रत प्याला, पीवै आप पिलावै।
छकि कै राम रंग में रँगिया, सबके रंग चढावै ॥2॥तवै.॥
सील सिंगार सहाजी तन ऊपर, ग्यान गुलाल मंगावै।
धीर हौद में गाल भली बिधि, पेम पिचकारी वाहै ॥3॥तवै.॥
जत सत केसर अर्थ अरगजौ, भजन र भाव मिलावै।
अैसो रंग डारि के हरिजन, अपणा रंग रंगावै ॥4॥तवै.॥
राम पिया संग होरी खेलै, नोतम नेह बधावै।
अैसा जन निर्मल निज प्यारा, भव जल पार लंघावै ॥5॥तवै.॥
खेलत होरी हरिजन अैसी, राम अमीरस पावै।
आत्माराम जनाँ की संगति, आनँद अति दरसावै ॥6॥तवै.॥
गुरु रूप तणौं दरबार, होरी रची सुखकारी ॥टेक॥
राम रंग में रूप रँगे हैं, हरि के हैं हितकारी।
सुरति सबद की होरी खेलै, लगी उनमनी तारी ॥1॥होरी.
तरक त्याग बैराग जना को, दसा बिदेही धारी।
राम नाम जपि कारज कीया, पाँचू इंद्री हारी ॥2॥होरी.
सील सँतोष दया की केसरि, धिरज होद में गारी।
पेम पिचकारी भर भर बाहै, सब सन्तन पर मारी ॥3॥होरी.
दया धरम सिर पाव बनाए, ग्यान गुलाल बिचारी।
पाँच पचीस नारि बस करकै, इन सबहिन परि डारी ॥4॥होरी.
मन कूँ मारि मनोरथ मारै, तिरगुण पास निकारी।
आसा चितवन चिंता चेरी, ए सबहिन सँग जारी ॥5॥होरी.

ऐसी होरी सतगुरु खेलै, सुणज्यो सब हितकारी।
आत्माराम जनाँ की संगति, भव तिरिहैं नरनारी ॥6॥2॥
हरि भगति बेलि मन में लगाय। ताके मन मुकता लागै फल रे ॥टेक॥
बुधी मालिनी सींचनहारी, तामें प्रेम प्रभाव हो जल रे ॥1॥
आतमराम खरो रखवारो, तासे होय अचल रे ॥2॥3॥

राग खुमायची

जी. कोइ म्हांनैं अब राम मिलावै ॥टेक॥
प्यारे दी खातिर आतरि बिरहनि, छिन छिन अति कुमलावै ॥1॥
पल पल आव घटै निसबासर, पिव परदेस रहावै ॥2॥
जल बिनि मीन लीन होइ तिल तिल, यूँ जियरा तरसावै ॥3॥
आत्मराम राम तेरि आतरि, कब्र दीदार दिखावै ॥4॥4॥
जी मैंडा प्यारा मुजि कब दिखलावै ॥टेक॥
तिस ज लागी पीव सूँ सैंडी, तुस विनि तिस न जावै ॥1॥
दम दा यार दिल के मरम, कब मुखड़ा बतलावै ॥2॥
आसिक इस्क तु सैड़ाइ समंदी, अंदरि एक हुलसावै ॥3॥
आतमराम आसिक रबाना, कब महबूब ज पावै ॥4॥5॥
ऐसे नहीं धीजिए, सठन प्रीति न कीजिए ॥टेक॥
थाह बताय डबौवे ऊडै, पीछै ही पछतीजिए।
मुख के मीठे अंतर चीठे, उर ले दुख की दहीजिए ॥
ऐसे को संग कबहुँ न कीजे, हेत देखि ही पवीजिए।
आत्मराम सठन के सँग ते, बार बार तन छीजिए ॥6॥
दिलदार मेरे सइयाँ, ताकी बारबार बलि ज़इया ॥टेक॥
सब घट अंदर सब से न्यारे, सब में मिल रइया ॥1॥
सब सुख दाता सब रस माता, सब सुख के तुम लइया ॥2॥
सब सूरत में नूर तुम्हारा, तुज बिनि खाक मिलइया ॥3॥
आत्मराम तुमारी सरणैं, तुमरी लगन लगइया ॥4॥7॥
दिलदार मेरे प्यारे, तेरि सूरति ऊपरि वारे ॥टेक॥
सब सुखदायक सकल सिरोमणि, अगणित अधम उधारे ॥1॥
हम अवगुन तुम कोटि निवारे, कहा कहूँ गुन थारे ॥2॥
आसिक कूँ तुम लागत नीके, कहा जाणैं जगत बिचारे ॥3॥
आत्मराम आसिक तुसाडा, राखो कदम तुमारे ॥4॥8॥

परिशिष्ट 'ख'

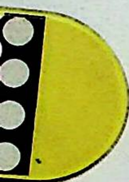
श्रीरूपदासजी 'अवधूत' की शिष्या पिसांगन (जिला अजमेर) निवासी भक्तिमती सरूपांबाई के पद

राग सुगन सोरठ

साथणि म्हारी यै हरिजन आया म्हारै पावणा। भवन पावन हुवा आज ॥टेक॥
दरसण करि मन हरषियौ, पाया छै गुरु दीदा।
तन धन बसतर त्यागिया, कोइ ले भेट कराय ॥
तन मन अरपुँ मैं आपणा, चरणाँ में सीस नवाय।
चरण सेव नित की करूँ, पल पल प्रीत बधाय ॥
द्रसण देखि गुरु का दिल भरूँ, और न आवै म्हारै दाँय।
आन दिसाँ भटकाँ नहीं, रैस्याँ महैं गुरुंजी के पास ॥
चरणा सुणौंगा म्हैं तो निरमली, ब्रह्म ग्यान की छोल।
सरूपाँ सतसंग में बसै, सतगुरु को परताप ॥1॥
साथणि म्हारी ये आज म्हारै आनंद भया, पाया छै चरण सरोज ॥टेक॥
सन्त चरण बंछै देवता, उनकूँ भी प्रापति नाहिं।
दुर्लभ पर हम पाइया, ब्रह्म बंछै दिनरात ॥
संतं दया हम परि करै, ग्यान भगति दिया भेव।
दसूँ दिस भया चांदणा, सतगुरु दिया दीपक जोय ॥
ग्यान दीपक घट में जलै, भरम करम गया दूर।
सरूपाँ कहै गुरु महरि सूँ, राम रह्या भरपूर ॥2॥
साथणि म्हारी ये राम नाम गुरु बक्रसियौं, सब ग्रंथन को सार ॥टेक॥
राम नाम निज तत्त है, सेस जपै दिन रात।
ब्रह्मा चौमुख सूँ रटै, येक नाम की टेक ॥
सीवजी निज नाम सूँ, अमर हुवा कलि माहिं।
पारवती परसण भई, सिवजी दियौ उपदेस ॥
सोहि नाम सुकजी सुण्यौ, प्रीखत कूँ दीनौं छै भेव।
पिसांगण में निज नाम की, सरूपाँ ने दई स्वामी टेव ॥3॥
साथणि म्हारी ये दरसण चावाँ स्वामी रूप का, दिल भर कराँ दीदार ॥टेक॥
अरज हमारी स्वामीजी मानज्यो, मैं भाखूँ सिर नाय।
तुम संम्रथ सब बिधी हो, कृपा करो अब आय ॥
पद रज सिर परि मैं धरूँ, करूँ चरण की सेव।

तन मन धन अरपण करूँ, दियौ छै भक्ति को भेव ॥
अगम अचिंत ब्रह्म रूप हो, गम कहुँ लखियन न जाय।
सर्णै आय गुरु के दीन होय, भौ जल कूँ तिर जाय ॥
तर्क त्याग अणभै सबद, ये सतगुरु की छोल।
संगति करै कोइ सूरवा, दूर रहैगा ढोल ॥
दया दीन परि कीजियो, इंम्रत प्याला पाय।
सरूपाँ सरणौं नित रहै, पद रज सीस चढाय ॥4॥

卐 卐 卐



परिशिष्ट

सन्त सैन और उनकी रचनाएँ

सिखों के परमपवित्र गुरुग्रंथ में सन्त सैन का एक पद[1] उपलब्ध है। वस्तुतः गुरुग्रंथ का यह पद, पद न होकर आरती है किन्तु आरती[2] भी पदों में ही वर्गीकृत होती है। अतः इसको पद कहना सर्वथा समीचीन है। गुरुग्रन्थ में इस आरती के उपलब्ध होने से आधुनिक शोधकों का ध्यान सन्त सैन की ओर भी आकृष्ट हुआ है किन्तु इस महान् सन्त के बारे में अभीतक यथेष्ट जानकारी प्रकाश में नहीं आई है। यद्यपि नारायणदास 'नाभा' ने सन्त सैन के बारे में एक पूरा छप्पय'[3] छंद लिखा है और टीकाकारों ने विपुल छन्दों में टीका[4] की है तथापि आधुनिक शोधक इन लेखकों के उल्लेखों को भक्तिभावना-प्रसूत मानकर विशेष वज़न नहीं देते। शोधकर्ताओं के साथ संभवतः यह विडम्बना ही है कि वे इन तथ्यों को सिरे से नकारते हुए इधर-उधर भटकते हैं और कभी-कभी बेसिर-पैर की बातें लिख मारते हैं जिनका न कोई लिखित और न कोई मौखिक आधार ही होता है। आगे के लेखक[5] पीछे वालों की बातों को दुहराते रहते हैं और धीरे-धीरे वही सत्य-तथ्य स्थापित हो जाता है। वस्तुतः शोधकर्ता का दायित्व होता है कि वह उपलब्ध समस्त सामग्री का गंभीर अनुशीलन कर उसमें छिपे अंतःसूत्रों को ढूँढ निकाले। फिर उनको तात्कालीन अन्य स्थापित तथ्यों के संदर्भ में जाँचे-परखे। जब प्रमाण व तर्क की कसौटी पर वे सूत्र स्थापित हो जाएँ तब उनको लिखकर प्रकाशित करे। सन्त सैन के बारे में भी आचार्य परशुरामजी चतुर्वेदी ने एक ऐसा ही प्रवाद लिखा जिसको आज भी सन्त सैन पर लिखने वाले प्रायः दोहराते देखे जाते हैं।

आचार्य चतुर्वेदी ने लिखा कि सन्त सैन महाराष्ट्रीय-महान् संत ज्ञानदेव (समय वि. सं.1332 जन्म व समाधि वि. सं. 1353) के समकालीन व उनकी मंडली के महत्त्वपूर्ण सदस्य थे। इन्होंने मराठी-भाषा में अभंग लिखे जिनमें से 150 के करीब आज भी उपलब्ध होते हैं। इन अभंगों में प्रतिपादित विषय के अनुसार ये वारकरी भक्त भी सिद्ध होते हैं। साथ ही साथ आचार्य चतुर्वेदी ने लिखा है कि बीदर के राजा की सेवा में ये नियुक्त थे और तैल-मर्दन की घटना बांधवगढ़ के बघेले राजा से सम्बद्ध न होकर इसी बीदर के राजा से सबन्धित है।[6] उन्होंने न बीदर के राजा का नाम बताया और न उसका समय ही बताया।

जब हम उक्त मत पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं तब ज्ञात होता है कि बीदर-राज्य की भाषा मराठी न होकर कन्नड़ है। कन्नड़भाषी सैन ने मराठी-भाषा में अभंगों की रचना की होगी, संभव नहीं है। ये बीदर छोड़कर पण्ढरपुर आ गए हों और ज्ञानदेवादि के

संसर्ग से इन्होंने मराठी-अभंगों की रचना की होगी, लिखना भी सर्वथा असंगत है क्योंकि गुरुग्रंथ में संग्रहित आरती में इन्होंने प्रसिद्ध भक्तिभानु रामानन्दाचार्य का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है जिसका तात्पर्य है कि राम की भक्ति का रहस्य रामानंद पूर्णरूपेण जानते हैं और पूर्ण परमानंद में निमग्न स्वामी रामानंद उस भक्ति का प्रामाणिकता के साथ वर्णन करते हैं।[7] इस पंक्ति का सीधा-सीधा तात्पर्य इतना ही है कि सन्त सैन या तो स्वामी रामानंद के समकालीन होने चाहिए अथवा आसन्न परवर्ती। उन्होंने स्वामी रामानंद की भक्ति-व्याख्या को या तो उनके श्रीमुख से सुना होगा अथवा उनके शिष्यादि के द्वारा सघनता के साथ प्रचारित-प्रसारित होते हुए देखा होगा। अंतःप्रमाण से बड़ा प्रमाण और कोई प्रमाण नहीं होता। अतः यह मानने में तनिक भी शंका नहीं होनी चाहिए कि संत सैन का न बीदर के राजा से कोई सम्बन्ध था और न उनका ज्ञानदेव व वारकरी सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध था। सन्त सैन जाति के नाई[8] थे और अपना पैतृक-धंधा बाल काटने, तैल-मर्दनादि का किया करते थे। इस तथ्य को सभी मानते हैं। मराठी-परम्परा के साथ-साथ हिन्दी-परम्परा भी इस तथ्य को यथारूप मानती है।

समय

जैसा ऊपर कहा गया है, सन्त सैन, रामानंद स्वामी के समकालीन थे। स्वामी रामानंद का समय वि. सं. 1356 से 1467 तक[9] का सुनिश्चित् है। सन्त रैदास ने अपने एक पद[10] में नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, सधना और सैन को स्वात्मस्थ होना लिखा है। साथ ही जाट-जाति में उत्पन्न सन्त धन्ना ने भी अपने राग आसा के पद[11] में सन्त सैन का स्मरण अपने पूर्ववर्ती के रूप मे किया है। इस पद में नामदेव, कबीर, रैदास व सैन नामक भक्तों के भक्ति करने के कारण संसार में प्रकट होना-प्रकाश में आना लिखा है। भक्तमालकार के अनुसार रैदास, कबीर, धन्ना और सैन-सभी स्वामी रामानंद के शिष्य ठहरते हैं।[12] अतः इन सभी का समय वि. की 15वीं शती के प्रारंभिक दशकों से लगाकर 16वीं शती के अधिकतम मध्य तक होना चाहिए। जिन विद्वानों ने सैन के समय के सम्बन्ध में अपने मंतव्य व्यक्त किये हैं उनके विचार नीचे लिखे अनुसार हैं।

1. प्रो. रानाडे ने सन्त सैन का निधन-समय वि. सं. 1505 बताया है।[13]
2. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने सैन को रामानंद का समकालीन मानते हुए इनकी स्थिति विक्रम की 14वीं शती के उत्तरार्द्ध से पंद्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध तक मानी है।[14]
3. द सिख रिलीजन, लेखक एम0 ए0 मैकालिफ ने सैन का समय, क्रिश्चयन-युग की चौदहवीं शती के अंत तथा पंद्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध तक माना है।[15]
4. डॉ. महीपसिंह ने इनका समय 1448 ई0 माना है। यह समय जन्म का अथवा मृत्यु का है, कुछ भी स्पष्ट नहीं किया है।[16] वैसे डॉ. सिंह ने प्रो. रानाडे के मत को

ही दुहरा दिया है।

5. भक्तमाल के टीकाकार सीतारामशरण भगवानप्रसाद रूपकला ने सैन का समय विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी माना है।[17]

6. आदिग्रंथ के हिन्दी टीकाकर डॉ. मनमोहन सहगल ने सैन का समय ईस्वी 15वीं शती का पूर्वार्द्ध माना है।[18]

7. रींवानरेश रघुराजसिंहदेव ने सैन का समय अपने पूर्वज राजा रामसिंह के समय का बताया है।[19] राजा रामसिंह बघेले का राजत्व-समय वि. सं. 1612 से 1648 तक इतिहासकारों ने निर्धारित किया है।[20]

8. महाराजा रघुराजसिंहदेव ने रामरसिकावली नामक भक्तमाल की टीका के अंत में अपने कुल का इतिहास लिखा है जिससे स्पष्ट होता है कि सर्वप्रथम वीरसिंह बघेले ने कबीर का शिष्यत्व ग्रहण किया। वीरसिंह अतीव पराक्रमी राजा था और इसीने बाँधौगढ़ को जीतकर अपनी राजधानी बनाई थी। सन्त कबीर ने वीरसिंह के पौत्र राजा रामसिंह को वरदान दिया था कि तेरी 42 पीढ़ियों तक बघेलों का राज्य अविच्छिन्न चलता रहेगा[21] तथा तेरी 10वीं पीढ़ी का राजा मेरे ग्रन्थ बीजक की टीका लिखेगा। उक्त राजा रामसिंह इस वीरसिंह की तीसरी पीढ़ी का राजा है (1) वीरसिंह (2) वीरभानुसिंह (3) राजा रामसिंह। राजा रामसिंह भी कबीर का ही शिष्य था जिसको कबीर ने आशीर्वाद आदि दिये। राजा रामसिंह के ही भगवान ने नापित बनकर तैलमर्दन किया था।[22] राजा रामसिंह के पुत्र का नाम वीरभद्र और इसके पुत्र का नाम विक्रमादित्य था। विक्रमादित्य का पुत्र अमरसिंह हुआ जिसने रींवा को बघेलों की राजधानी वनाई।[23]

9. ऊपर बिंदु क्रमांक (7) में इतिहासकारों द्वारा उपलब्ध कराया गया राजा रामसिंह का समय बिल्कुल सही है। ऐसी स्थिति में संतप्रवर सैन व राजा रामसिंह बघेले का समकालीन होना सर्वथा असंभव है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का भी मंतव्य ऐसा ही है।[24]

10. अनेक संतों व भक्तों की 'परचई'[25] के रूप में जीवनी लिखने वाले संत अनन्तदास ने सैन की परचई तो नहीं लिखी किन्तु रैदास की परचई में सैन की उपस्थिति उससमय बताई है जब चित्तौड़ की झाली रानी रैदास से दीक्षा लेकर चित्तौड़ की ओर चल पड़ी। काशी से 5 कोस चित्तौड़ की ओर पहुँचने पर पुरोहितों को मालूम हुआ कि झाली रैदास नामक चमार से दीक्षित होकर आई है। ब्राह्मणों, पुरोहितों ने झाली से कंठी-माला झीन लीं व कहा, यातो रैदास का मंत्र रैदास को लौटा दो अन्यथा हम मर जाएंगे। झाली डरकर वापिस काशी आगई। रैदास से आपबीती कही। रैदास कुछ भी निर्णय नहीं कर सके। अंततः वे और सैन परामर्श प्राप्त करने को कबीर के पास गए। उससमय कबीर के यहाँ बघेला राजा-रानी आये हुए थे। कबीर ने कहा, जिसप्रकार तुमने पहले ब्राह्मणों द्वारा विवाद करने पर निर्णय शालग्राम पर छोड़ दिया

था। अबकी बार भी निर्णय शालग्राम पर छोड़ दो। रात्रि में सैन, रैदास व कबीर तीनों कबीर के यहाँ ही रहे। रात्रि में सगुण भगवान ने चतुर्भुज रूप में प्रत्यक्ष दर्शन दिये। कबीर ने सगुण भगवान का खंडन तथा रैदास ने मंडन किया। इस गोष्ठी के साक्षी सैन भक्त थे। आगे चलकर सैन ने इस वाद-प्रतिवादात्मक चर्चा को 'कबीर-रैदास-गोष्ठी' के नाम से छंदबद्ध करके लिखित रूप दिया। अनन्तदास ने इस प्रसंग में बघेला राजा का नाम तो नहीं दिया किन्तु उसकी रानी का नाम 'मकनादे' लिखा है। यह मकनादे रानी, वीरमदेव (1460 से 1485 वि.) नरहरिदेव (1485 से 1527 वि.) भेदचंद्रदेव (1527 से 1552 वि.) शालिवाहनदेव (1552 से 1557) अथवा वीरसिंह (जन्म 1524 गद्दी 1557 मृत्यु 1597 वि.) की पत्नी थी अथवा रामसिंह (वि. 1612 से 1648 तक) की थी, निर्णायक बिन्दु है, रैदास, कबीर, सैन आदि के समय का निर्धारण करने का।[26] रघुराजसिंहदेवजी ने वीरसिंह की पत्नी का नाम [27]मणिदे व रामसिंह की पत्नी का नाम सुवचनकुंवरि[28] लिखा है। मणिदे व मकनादे दोनों नाम एक ही रानी के हैं, कहना मुश्किल है। भेदचन्द्रदेव (1527-1552) की एक पत्नी चित्तौड़ के राणा लाखा की पुत्री थी। यही पटरानी थी। इसका नाम रींवा राज्य के इतिहास में लिखा नहीं मिला है किन्तु संभावना पूरी-पूरी है कि यही रानी मकनादे होगी क्योंकि झाली रानी के प्रसंग में जहाँ मकनादे का नाम आया है, वहाँ मकनादे ही झाली की सहायतार्थ अपने पति के साथ गई थी। चूँकि झाली व उक्त मकनादे का सम्बन्ध चित्तौड़ से था। अतः मकनादे ने झाली की सहायता की। राणा लाखा का समय गद्दीनशीनी वि.सं. 1439 व मृत्यु 1485 से 1487 के मध्य तक म0 म0 गौरीशंकर हीराचंद्र ओझा ने उदयपुर राज्य का इतिहास भाग एक पृष्ठ 259 से 270 तक में लिखा है। अतः इतिहास के साक्ष्य से प्रसंगस्थ बघेला राजा भेदचंद्रदेव व उसकी रानी मकनादे ही होने चाहिये।

11. कबीर की परचई से ज्ञात होता है कि काशी नगर में जब कबीर की प्रतिष्ठा अत्यधिक बढ़ गई तब कबीर के भजन में जनता के अत्यधिक आवागमन के कारण बाधा पड़ने लगी। इस बाधा को हटाने के लिये कबीर ने एक वेश्या को अपने साथ लेकर पूरे बाजार में फेरी लगा डाली। उस समय बघेला राजा वीरसिंह अपनी रानी के साथ काशी में आया हुआ था। वह कबीर का शिष्य था फिरभी कबीर के इस व्यवहार ने उसके मन में उथल-पुथल मचा दी। उसने कबीर को बैठने के लिए आसन तक नहीं दिया। इतनी ही देर में पुरी के जगन्नाथ-मंदिर का पंडा जल गया। कबीर ने काशी में ही जल का घड़ा जमीन पर फैलाया। देखकर जनता ने पूछा, यह क्या माज़रा है। तब कबीर ने कहा, मेरे कहने से तुम्हें विश्वास नहीं होगा। जगन्नाथ - मंदिर के पंडे से जाकर पूछो। राजा ने दूत भेजा। पंडे ने जल से आग बुझाने की घटना को सत्य बताया और कहा, काशी का कबीर भगवान् का सच्चा भक्त है। उसने ही मुझ जलते हुए के ऊपर जल डाला था जिससे मैं बच गया। दूत ने आकर राजा को

सारे समाचार कहे। सुनकर राजा अवाक् रह गया। उसे अपनी गलती का अहसास हुआ। उसने सोचा, मैंने नाहक ही गुरु-महाराज पर शक किया। मुझे उनसे अपराध क्षमा कराना चाहिए। राजा-रानी ने लकड़ी के गठ्ठर माथे पर रखे व दोनों दीन-हीन रूप में कबीर के आश्रम पर पहुँचे। कबीर ने कहा, मेरे मन में कोई राग-द्वेष नहीं है। तुम मेरे ही हो। यह घटना बघेला राजा वीरसिंह से सम्बद्ध है। अनन्तदास ने वीरसिंहदेव का नाम स्पष्ट रूप में उल्लिखित किया हैं।[29]

वस्तुतः वीरसिंहदेव बहुत ही पराक्रमी व प्रतापी राजा था। इसने वि. सं. 1552 में अपने दादा भेदचंद्रदेव के समय में ही सिकन्दर के आक्रमण का कठौली घाटी में सामना किया। भेदचंद्रदेव के समय बघेलों की राजधानी बांधवगढ़ में ही थी जिसको पुनः वीरसिंहदेव ने व्यवस्थित करके अपनी राजधानी बनाया था। चूंकि इसके दादा (भेदचन्द्रदेव) व दादी संत कबीर के शिष्य रहे थे। अतः यह भी उनके प्रति गुरुभाव रखता था। साथ ही भेदचंद्रदेव की अपेक्षा यह अत्यंत प्रतापी राजा हुआ है। अतः संभव है, अनंतदास गच्चा खा गया और उसने भूल से भेदचन्द्रदेव के स्थान पर वीरसिंहदेव का नाम लिख दिया। अनंतदास संत था। उसके पास संतों से सुने हुए विवरण थे। इसके विपरीत रघुराजसिंहदेव पठित, विद्वान् बघेला राजा थे जिनको अपने यहाँ के सारे अभिलेख ग्रंथादि सुलभ थे फिरभी उन्होंने सैन का सम्बन्ध राजा रामचंद्रदेव से लिख दिया जो कैसे भी ऐतिहासिक समसामयिक घटनाओं से पुष्ट नहीं होता। अतः हमको लगता है कि अनंतदास की नाम सम्बंधी यह सूचना पूर्णतः विश्वासयोग्य नहीं है।

12. उक्त परचियों की दोनों घटनाओं को एक ही समय की व एक ही राजा से सम्बद्ध मान लेने पर, सैन का सम्बन्ध रामसिंह बघेले से हटकर उसके किसी पूर्वज से जुड़ जाता है जैसा कि हमने ऊपर सिद्ध किया है, जिससे सैन का समय विक्रम की 16वीं शती के प्रथम दशक तक जाकर ठहर जाता है और यही समय सैन का उचित भी लगता है। प्रो0 रानाडे, आचार्य चतुर्वेदी आदि का मंतव्य लगभग इसी कालखंड के समर्थन में है। अतः हमारा उक्त ठोस प्रमाणों के आधार पर पक्का मत है कि सैन अधिक से अधिक 1515 या 1520 विक्रमसम्वत् तक जीवित थे। इसके पश्चात् नहीं। यदि उन्होंने 90 वर्ष की भी उम्र पाई हो तो उनका जन्मसम्वत् 1425 से 1430 तक जाता है। इस कालखंड को मान लेने से सैन और रामानंद का समय भी एक बैठ जाता है और सैन के उस कथन संगति भी बैठ जाती है जिसमें उसने रामानंद को भगवद्भक्ति का असली रहस्य प्रकाशित करने वाला कहा है। रामानंद और सैन गुरु शिष्य थे, यह गुत्थी भी स्वतः ही सुलझ जाती है। राजर्षि पीपा ने अपने एक पद[30] में कबीर, रैदास आदि का स्मरण अत्यधिक श्रद्धा-भक्ति के साथ किया है। पीपा की चौथी पीढ़ी[31] का खींची राजा अचलदास वि. सं. 1480[32] में होशंगशाह से युद्ध

करता हुआ मारा गया। यह तथ्य इतिहास-पुष्ट है। अचलदास के समकालीन[33] व दरबारी चारण कवि शिवदास गाडण ने अचलदास खींची री वचनिका ग्रंथ वि. सं. 1492 में बनाया[34] जिसमें उक्त युद्ध का पूर्ण व प्रामाणिक विवरण उपलब्ध है। ऐसी दशा में कबीर, रैदास, पीपा, सैन, धन्ना आदि के समयों को वि. सं. की 16वीं शताब्दी के अन्त तक खींचकर ले जाना सत्य तथ्यों से मुँह चुराना किंवा सत्य को ढँककर असत्य का झण्डा फहराना है। हमारा दृढ़ मन्तव्य है कि आचार्य रामानंद का समय वि. सं. 1356 से 1467 तक ही सत्य है। इसे आगे खिसकाने की कोई जरूरत नहीं है। कुछ अनैतिहासिक लेखकों ने निरंजनी पीपा व गागरोन के राजर्षि पीपा को एक करके राजर्षि पीपा के समय को काफी पीछे धकेलने का दुष्प्रयत्न किया है जो ऐसे लेखकों के अज्ञान अथवा भ्रमित-ज्ञान का परिचायक है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि संत सैन का समय वि. सं. 1425 से 1515 के बीच का है जो प्रमाणों व ऐतिहासिक-सत्यों पर आधारित है।

जीवन की विशिष्ट घटनाएँ

जैसाकि पूर्व में उल्लिखित किया गया है, संत सैन जाति के नाई और बघेलों की राजधानी के निवासी व वहीं के बघेले राजा के खवास[35] थे। वे उनके बाल काटने का काम तो करते ही थे,[36] आवश्यकता पड़ने पर तैल-मर्दन भी करते थे। बघेला राजा वायुरोग से पीड़ित था।[37] अतः सैन को प्रतिदिन राजा की तैल-मालिश भी करनी पड़ती थी। सैन भगवद्भक्त थे, रामानन्दाचार्य के शिष्य थे।[38] अतः प्रातःकाल जल्दी ही उठकर भगवान का भजन-ध्यान भी किया करते थे। एक दिन जब वह नित्यनियम से निवृत्त होकर राजा के महल की ओर जा रहे थे तब रास्ते में उन्हें कुछ संत, भगवद्भक्त मिल गए। सैन उन्हें घर ले आये। उनके बाल काटे। उनको स्नानादि कराया और उनको भोजन कराने के उपरान्त राजा की सेवा में उपस्थित हुए। जब सैन राजमहल में पहुँचे, तबतक दोपहर बीत चुका था। राजदण्ड के भय से सैन ने राजा के एक अन्य हजूरिये[39] से आपबीती कही। वह हजूरिया और सैन दोनों राजा की खिदमत में हाजिर हुए। सैन ने देरी से आने के लिए क्षमायाचना की तो बघेला राजा ने कहा, अभी-अभी तो तुम तैलमर्दन करके गये ही थे। क्या पुनः और पुरस्कार प्राप्त करने आये हो। वस्तुतः आज तुमने मेरी इतनी अच्छी तरह से तैलमालिश की कि मेरा वायुजनित रोग समाप्त हो गया और अब मुझे प्रतिदिन मालिश कराने की जरूरत भी नहीं रह गई है। तुम्हारी आज की विशिष्ट सेवा से मैं इतना अधिक प्रसन्न हुआ कि मैंने तुम्हें अनेक उपहार बख्शीश किये।[40] लगता है, तुम्हारे मन मे लोभ घुस आया जिसके वशवर्ती होकर तुम यहाँ पुनः आये हो।

राजा की बातें सुनकर सैन हक्का-बक्का रह गया। वह अनुनय-विनय करने लगा कि भगवन् ! मैं तो आया ही अभी हूँ। मेरे घर में कुछ संत आ गए थे। उनके बाल

काटने आदि में समय लग गया जिसकारण मैं देरी से आया हूँ। चाहें तो आप मेरे घर से व आपके इस हजूरिये से मेरी बात की पुष्टि करा लें। राजा ने सैन की बात की पुष्टि कराई। सही पाने पर राजा ने सैन को मान-सम्मान प्रदान किया और आगे से तैल-लगाने, बाल काटने आदि की सेवा से मुक्त कर दिया। सैन की इस भक्ति, भगवत्कृपा व राजा द्वारा दिये गये सम्मान की चर्चा घर-घर में होने लगी। सैन भगवद्भक्त मे परिगणित होने लगा।[41] राजा सहित समस्त जनता उसे सम्मान की दृष्टि से देखने लगी। समय-समय पर सैन, राजा के साथ विशिष्ट हजूरये के रूप में भी जाने लगा।

रचनाएँ

भक्तप्रवर सैन की रचनाओं के नाम पर अभी तक विद्वानों का ध्यान मात्र उस पद की ओर गया जो सिखों के आदिगुरु ग्रंथसाहिब में दर्ज है तथा जिसकी चर्चा पूर्व पृष्ठों में आ चुकी है। वस्तुतः इस पद अभिधानात्मक आरती का संग्रह दादूपंथी-पंचवाणी-पुस्तकों में भी मिलता है। उक्त पंचवाणी-पुस्तकों में मात्र उक्त आरती ही नहीं मिलती, एक पद और मिलता है जो अभीतक अप्रकाशित है और संभवतः इसके माध्यम से विद्वानों के समक्ष पहली बार प्रकाश में आयेगा। यद्यपि इस पद को अप्रकाशित भी नहीं कह सकते क्योंकि इसका दादूशिष्य रज्जब की 'सरबंगी'[42] और दादू-पौत्र-शिष्य गोपालदास की 'सरवंगी-सरह-चिन्तामणि'[43] में प्रकाशन होचुका है किन्तु विद्वानों का ध्यान अभीतक इस पद की ओर आकर्षित नहीं हुआ है। हम दादूधाम, नरायना के ग्रंथांक 496, 497, 561, 2 व 4 तथा राजस्थान-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, जयपुर के ग्रंथांक 12 व 74 के आधार पर इस पद का पाठ नीचे दे रहे हैं। आरती का पाठ ग्रंथांक 497 के आधार पर दिया जा रहा है। साथ ही जिस 'कबीर-रैदास-गोष्ठी' की पूर्व पृष्ठों में चर्चा आई है और जिसके रचयिता सन्त सैन हैं का पाठ हमारे संग्रह की पुस्तक जो धार (म. प्र.) रामद्वारे में मानदास रामस्नेही द्वारा वि. सं. 1869 में लिखित है से दे रहे हैं। यह गोष्ठी उक्त रा. प्रा. वि. प्र. के ग्रंथांक 12 में भी उपलब्ध है जिसका लेखनकाल वि. सं. 1741 व 1743 है।

1. राग गौड़ी, ग्रंथांक 496, पृष्ठ 243

दास नहीं छाडिये हो, तेरौ जन जे अपराधी होइ ॥टेक॥
अमृत अनूप सरोदिका, संतति भीतरि बास।
एक बूंद प्रापति नहीं, जन क्यूँ पावै बिसवास ॥
हूँ तुझ कारनि बीनऊँ, निसदिन खरौ उदास।
उदक तीर पसु बांधियो, बिन छूटाये मरै पियास ॥

और नहीं अवलम्बना, जन सैन कहै समझाइ।
तुम्ह ठाकुर मैं सेवगा, क्रिपा करौ रामराइ[14] ॥

2. राग धनाश्री, ग्रंथांक 497, पृष्ठ 556-557

मंगला हरि मंगला। नित मंगल राजा रामराइ की ॥टेक ॥
धूप दीप गृह साज आरती। वारणैं जाऊँ कँवलापती ॥
उतिम दिवला निरमल बाती। तूँ हि निंरजन कँवलापती ॥
रामा भगति रामानँद जाणैं। पूरण परमानंद बखाणैं।
मंगल मूरति भौ तारि गोविंद। सैंन भणैं भजि परमानंद[15] ॥

3. अथ कबीर-रैदास की गूष्ठ लिषंते

रैदास कहत है : स्वामी कुमत तणा दल बादल फाटा, सुमत भई परकासा।
ग्यान ध्यान हिरदै धर देखौ, सत भाखै रैदासा ॥1॥
कबीर कहत है : ब्रह्म ग्यान बिन, ब्रह्म ध्यान बिन, हिरदौ सूध न होई।
ऐकहि ब्रह्म सकल में व्यापिक, और न दुतिया कोई ॥2॥
रैदास कहत है : एकि एक क्या भाषै स्वामी, दूजि प्रकृति कहाँ जाई।
ता परक्रिति कौ तिरगुण रूपा, साधाँ सदा बताई ॥3॥
कबीर कहत है : किदर फूल है किदर बासना, किदर पवन और पानी।
उतपति परलै कून करत है, परक्रिती कहाँ समानी ॥4॥
रैदास कहत है : प्रकृति समाणी परमपुरस में, जो ब्रिंदावन आया।
गोपिन के सँग ग्वालन के सँग, चटकी देर नचाया ॥5॥
कबीर कहत है : नहिं वे नाचै नहिं वे गावै, नहिं वे ताल बजावै।
वे तो ब्रह्म सकल सूँ न्यारा, सो औतरि नहिं आवै ॥6॥
रैदास कहत है : जो लीला औतार न होते, तौ सबहि जीव नहिं तरते।
अंध धुंध की खबरि न होती, तौ सब जीव नरक में परते ॥7॥
कबीर कहत है : कहा नरक है कहा सरग है, कहौ काहु किन देखा।
जा दिन हंसा करत पयानौं, चलत न काहू पेखा ॥8॥
रैदास कहत है : देखे वाहि कदम की छँहिया, नैनकँवल भ्रू लीन्हा।
पीतांबर बैजंती माला, मोर मुगट सिर दीन्हा ॥9॥
कबीर कहत है : माटी का यो पिंड बनाया, नाद जु बिन्द समाना।
घट बिनसै को नाम धरेगा, पसवा भरम भुलाना ॥10॥
रैदास कहत है : नारद व्यासजी आदि भक्ति है, जिन या राह बताई।
साधन की सेवा अधिकाई, चवद भवन सुखदाई ॥11॥

कबीर कहत है : कौन नंद है कौन जसोदा, कौन कहाँ सूँ आया।
पारब्रह्म सबही ते न्यारा, सो कोइ बिरले पाया ॥12॥

रैदास कहत है : चहुँ दिस नंद चहूँ दिस लाला, चहुँ दिसि नंद कहाया।
ज्याँ-ज्याँ पाप परगट्यौ जग में, जहाँ-जहाँ उठ धाया ॥13॥

कबीर कहत है : नहिं वांके पाप नहीं ताके पुंन, नहीं वेद नहीं वाणी।
नहिं वाके रूप नहीं वाके रेखा, जहाँ का तहाँ समानी ॥14॥

रैदास कहत है : भूले हो तुम ब्रह्मग्यान में, हरिचरणा बिसराया।
जीवन छोड निरंतर ध्यावो, मिथ्या जगमग माया ॥15॥

कबीर कहत है : हम गावैं सो गावौ भाई, हमरो ग्यान बिचारौ।
कहै कबीर सुनौ रैदासा, तौ भौजल उतरौ पारा ॥16॥

रैदास कहत है : निरगुण कथता कौ पंच मरता, को गह उतरे पारा।
भली लूट है राम खजीना, राम क्रिसन अवतारा ॥17॥

कबीर कहत है : राम क्रिसन कूँ तुमही ध्यावौ, सबही काल झकोरा।
सत्त सबद चीने बिन सबही, त्रिगुण नदी में बोरा ॥18॥

रैदास कहत है : माय तुरकड़ी पिता जुलाहा, पुत्र बने ब्रह्मग्यानी।
बेद कतेब की बात न मानैं, बात आपनी ठानी ॥19॥

कबीर कहत है : माय चमारी बाप चमारा, पुत्र कह्वै रैदासा।
बेद कतेब की राह चलोगे, तौ पड़ोगे जम की पासा ॥20॥

रैदास कहत है : ऐसी अंदभुत जनि कथिहौ स्वामी, कथौ तौ धरौ छिपाई।
वेद कतेबाँ में नहिं लिखिया, कैसे को पतिआई ॥21॥

कबीर कहत है : वेद कतेब दोउ हम देखे, इनकी झूठी आसा।
सकल जीवन के दंड पड़ेगा, बेदन के बिसवासा ॥22॥

रैदास कहत है : अैसी तौ मत भाखो स्वामी, बेद बड़ा अधिकारी।
जा दिन बेद प्रलै हो जासी, जा दिन जुग अंधियारी ॥23॥

कबीर कहत है : बेद बेद तुम कहा पुकारो, ये सब ऊली तीरा।
बेद कथै जे सब्द निरंतर, जाकूँ जपै कबीरा ॥24॥

रैदास कहत है : कहो सबद कैसा है स्वामी, कहौ कौंण है देखा।
ग्यान ध्यान में जो नहिं आवै, क्यूँकर करूँ विवेखा ॥25॥

कबीर कहत है : वाही सबद ब्रह्म कूँ पावै, सतगुरु देह बताई।
वाहि सब्द कौ ध्यान धरेगा, तौ आवागमण नसाई ॥26॥

रैदास कहत है : अकथ कथा कहा भाखौ स्वामी, जो मानन नहिं आवै।
है कोइ अैसा तीन लोक में, सो यो न्याव चुकावै ॥27॥

कबीर कहत है : एती गूष्ठ जहाँ भई, तीन भवन भए संसा।
तेतीस क्रोड़ देव चलि आये, जहाँ कबीर रैदासा ॥28॥

देवता कहत है : तेतीस करोड़ देव उठ बोल्या, हम यो न्याव चुकावैं।
सत्त भगति रैदास करत हैं, कबीर भगति न जानी ॥29॥

कबीर कहत है : सकल देव तुम भरम भुलाना, मानौं सबद हमारा।
परमपुरस कूँ चीनत नाहीं, जावौगे जमद्वारा ॥30॥

सकल देवता कहत हैं:
तीनलोक में पूजा हमरी, जुलहा निंदा ठानैं।
सकल देव मिलि मतौ विचारैं, हम जुलहा कौं मारैं ॥31॥

कबीर कहत है : कहै कबीर सुनौं तुम देवा, कहो कून तुम मारी।
हमरे आगे काल कर जौरै, गिनती कून तुमारी ॥32॥

दुरघा उवाच : सिंघ चढ़े जब दुरघा आई, बोलै मधुरी बानी।
सत्त भगत रैदास करै है, कबीर भगति न जानी ॥33॥

कबीर कहत है : आठम चवदस गला कटावै, घर घर खाती डोलै।
जा जा री जगत की चंडी घर आपनैं, झूठ साष क्यूँ बोलै ॥34॥

दुरघा उवाच : सहस भुजा धर दुरघा कोपी, महादेव मुरताना।
मार हक्क परलै कर डारूँ, तौ कबीर तुम जाना ॥35॥

कबीर कहत है : को तुम मारे को तुम तारे, को तेरा तार्‌या तरहै।
जा जा री जगत की चंडी, तू हि नरक में परहै ॥36॥

संकर उवाच : बैल चढे सिव शंकर आये, बोले तमगुण वाणी।
सत्त भगत रैदास करत है, कबीर भगति न जानी ॥37॥

कबीर कहत है : भूत पिचासन के तुम राजा, तुम जोग भक्ति कहा पाई।
जगतगुरू सिवसंक्र कहावै, मिथ्या साख भराई ॥38॥

संकर उवाच : पलट महादेव जाहाँ गए, जहाँ बैठे गोविन्द राई।
कोपे संकर ऐसे बोले, हमरे नहीं सहाई ॥39॥

ब्रह्मा उवाच : हंसवान चढ़ि ब्रह्मा आए, बोले इंम्रत बानी।
सत्त भगत रैदास करत है, कबीर भक्ति न जानी ॥40॥

कबीर कहत है : झूठा ब्रह्मा झूठा बोलै, झूठा बेद पुराणा।
झूठा ब्रह्मा भरम न जाना, झूठे भरम भुलाना ॥41॥

ब्रह्मा कहत है : अैसि बात कहा कैत हो जुलहा, और हि बात उठाई।
आदि विष्णु कूँ जानत नाहीं, कौन पुरस ठहराई ॥42॥

कबीर कहत है : चत्रमुखि तुम ब्रह्मा कहावौ, तेजो पार कहाँ पाया।
पारब्रह्म कूँ चीनत नाहीं, नाभकँवल भरमाया ॥43॥

ब्रह्मा कहत है : कौन तुमारा गुरवा कहिए, कून तुमारी बानी।
कहा लेत तुम आगे जूझौ, कौन भगति तुम ठानी ॥44॥

कबीर कहत है : सवद हमारा गुरवा कहिए, सुरत हमारी बानी।
रामनाम ले हम आगे झूझै, सत्त भगति हम ठानी ॥45॥

ब्रह्मा कहत है : अलख निरंजण जोत सरूपी, सोहि निरंजन स्वामी।
वाहि जोति की निंद करत हो, नरक परोगे प्रानी ॥46॥

कबीर कहत है : जोत निरंजन काल सरूपी, सोहि निरंजण राया।
पारब्रह्म तैं चीन्या नाहीं, नाभिकँवल भरमाया ॥47॥

ब्रह्मा कहत है : ऊठे ब्रह्मा बिनती कीन्हीं, तुम सतगुर हम देवा।
तूमारी गत तुमही जाणों, हम नहिं जाणैं भेवा ॥48॥
सिव ब्रह्मा और दुरगा चाली, जहाँ गरुड़ गोपाला।
जम कूँ भूत प्रेत कर थरपै, जुलहा कथै अपारा ॥49॥
कह महादेव सुनौं बीसनजी, हमकूँ जोर तुमारा।
कछु जोरावर जुलहा जान्या, जासों तुम भारी डर मान्या ॥50॥

विसनु उवाच : जो तुम विसनुजी आदिपुरस हो, तो मार करौ पैमाला।
जब हम सुख पावैं हो स्वामी, जुलहा लागै चरण तुम्हारा ॥51॥

कबीर कहत है : तीन लोक वैकुँठ कवलासा, ए सब जग की आसा।
आद अंत परलै होइ जासी, जब कहाँ करोगे बासा ॥52॥

किसनजी कहते है: धंन कबीर धंन रैदासा, साध कहावै सोई।
गरुड़ चढे गोपाल कहत हैं, सत्त भगत मेरे दोई ॥53॥

कबीर कहत है : उठ कबीरजी उत्तर दीना, सुन गोपाल बिवेकी।
छोटे मोटे जीव कहावै, सारवस्तु किन देखी ॥54॥

क्रिस्न कहत है : सार वस्तु का ब्यौरा देहौं, आदि अंत का ग्यानी।
कहै क्रिष्ण सुणौं कबीरजी, सारवस्तु हम जानी ॥55॥

कबीर कहत है : सार वस्तु तुम जानी नाहीं, धोखे जनम गँवाया।
तीनलोक इक्यासी ब्रह्मँड, स्रपनी नाच नचाया ॥56॥

किसन कहत है : जो तत ले वप भई, आदर नाम प्रवाणी।
कहै कृष्ण सुनो कबीरजी, सार वस्तु हम जानी ॥57॥

कबीर कहत है : सार वस्तु है अगम अगोचर, नहिं आवै नहिं जाई।
नेह तत ततपर कँवल विराजै, नेह तत तत है भाई ॥58॥

कृष्ण कहत है : अलख निंरजण जोत सरूपी, सोहि निरंजण स्वामी।
कहै कृष्ण सुनौ कबीरजी, सारवस्तु हम जानी ॥59॥

कबीर कहत है : जोत निंरजण काल सरूपी, जाकी जगत करत है सेवा।
कहै कबीर सुनौं क्रिसनजी, नहिं जान्या सार सब्द का भेवा ॥60॥
बह्म सरूपं ब्रह्म सरूपी, ब्रह्म ऊठि एक ठानी।
डालपात रैदास कथत है, मूल कबीरा ठानी ॥61॥

ऐती सुन कृष्णजी चलत भए, रैदास लाग्यौ पाय।
सार सबद कबीर है, संतौ लागौ धाय ॥62॥
इति कबीर-रैदासजी की गूष्ठ सम्पूर्ण ॥45

संदर्भ व टिप्पणी

1. आदि-गुरुग्रंथ-साहिव, सैंची-2, पृष्ठ 939, टीकाकर : डॉ. मनमोहन सहगल।
2. निर्गुण-निराकार-परमात्मा के भक्त-संतों ने आरतियाँ वनाई तो चौपाई छंदों में हैं किंतु वे गाते उन्हें राग धनाश्री में हैं। अतः गुरुग्रंथ तथा दादूपंथी-वाणियों में आरतियाँ राग धनाश्री शीर्षक के अन्तर्गत ही मिलती हैं। रामस्नेही-सम्प्रदाय, शाहपुरा, मेवाड़ के संतों ने भी आरतियाँ तो चौपाई छंदों में ही वनाई हैं किन्तु उनकी वाणियों में वे इन्हें राग धनाश्री में वर्गीकृत नहीं करते। गाते समय इन्हें वे राग धनाश्री मे गाते भी नहीं।
3. विदित बात जग जानिये हरि भये सहायक सैन के ॥
प्रभू दास के काज रूप नापित कौ कीनौं।
छिप्र छुड़हरी गही पानि दरपन तहँ लीनौं॥
तादृस ह्वै तिहिं काल भूप के तेल लगायौ।
उलटि राव भयौ शिष्य प्रगट परचौ जब पायौ ॥
स्याम रहत सनमुख सदा ज्यौं बच्छा हित धेनु के।
विदित बात जग जानिये हरि भये सहायक सैन के ॥63॥
-रूपकला-संस्करण, आठवीं आवृत्ति, सन् 2001, पृष्ठ 525
4. प्रियादास ने 2 मनहर छन्दों में टीका लिखी है।
वालकराम रामस्नेही ने 44 चौपाई व 1 दोहा छंदों में टीका लिखी है। यह टीका प्रियादास की टीका से भी अधिक विस्तृत, प्रामाणिक व विद्वतापूर्ण है। इसका रचनाकाल वि.सं. 1833 है। इसका प्रकाशन अभी हाल ही में भक्तमाली नारायणदासजी ने कराया है।
रघुराजसिंहदेव ने रामरसिकावली में 17.1/2 चौपाई, 3 दोहा व 1 सोरठा छंद लिखे हैं।
5. आदिग्रंथ में संग्रहित संत कवि; लेखक : डॉ. महीपसिंह, पृष्ठ 65-66।
6. उत्तरीभारत की सन्तपरम्परा, पृष्ठ 230-231, प्रथम संस्करण
हिन्दी-साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग 4, पृष्ठ 106, द्वितीय संस्करण।
संतकाव्य, पृष्ठ 90, चतुर्थ संस्करण।
7. "रामा भगति रामानंदु जानै। पूरन परमानंदु बखानै ॥" आदि श्रीगुरुग्रंथसाहिब, 2 सैंची, पृष्ठ 939।
8. नाभा कृत भक्तमाल, छप्पय क्रमांक 63, रूपकला-संस्करण, पृष्ठ 525 व इसकी टीकाएँ।
राघवदास दादूपंथी कृत भक्तमाल, छंदांक 139-140, अगरचंद नाहटा संस्करण, पृष्ठ 64
दयालदास रामस्नेही कृत भक्तमाल, छंदांक 229, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 162 टीकाकार भगवद्दासजी, सींथल

किशनदास कृत भक्तमाल, छंदांक 111, किशनदासजी महाराज की अनुभववाणी, पृष्ठ 197 प्रथम संस्करण।

'जन्मलो न्हावीय चें उदरी' तथाकथित भक्त सेन कृत मराठी अभंग, स्रोत : उत्तरी-भारत की सन्त-परम्परा, पृष्ठ 230।

The Sikh Religion by M.A. Macauliffe, VI Volume, Pp 120.

आदिग्रंथ में संग्रहित संतकवि, पृष्ठ 66, डॉ. महीपसिंह।

सन्तकाव्य, पृष्ठ 90

हिन्दी-साहित्य का वृहत् इतिहास, पृष्ठ 106, आ. परशुराम चतुर्वेदी।

रैदास-रचनावली, पृष्ठ 59, डॉ. गोविन्द रजनीश, 2009 का संस्करण।

आदिगुरुग्रंथ, राग आसा, पद् धन्ना भगत का, पृष्ठ 395, सैंची 2.

'सैनु नाई बुतकारीआ, औहु घरि घरि सुनिआ।
हिरदै बसिआ पारब्रह्म, भगता महि गनिआ ॥'

और भी पुस्तकों से इसकी पुष्टि होती है। अतः अधिक संदर्भ जुटाने का कोई विशेष प्रयोजन नहीं रह जाता।

9. हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग-2, पृष्ठ 527, द्वितीय संस्करण; धीरेन्द्रवर्मा व अन्य।
10. आदिगुरुग्रंथ, राम मारु, पद रैदास का, पृष्ठ 978, सैंची 3।
नामदेव कबीर तिलोचनु, सधना सैनु तरे।
कहि रविदास सुनहु रे संतहु, हरि जीउ ते सभै सरे ॥
11. आदि गुरुग्रंथ, राग आसा, पद धन्ना भगत का, पृष्ठ 395, सैंची 2।
12. श्रीरामानँद रघुनाथ ज्यौं दुतिय सेतु जग तरन किय ॥
अनतानंद कबीर सुखा सुरसरा पदमावति नरहरि।
पीपा भावानंद रैदास धना सेन सुरसर की घरहरि।
औरों शिष्य प्रशिष्य एक ते एक उजागर।
विश्वमंगल आधार सर्वानंद दशधा के आगर।
बहुत काल वपु धारिके प्रणत जनन को पार दियो।
रामानँद रघुनाथ ज्यौं दुतिय सेतु जग तरन कियो।
भक्तमाल, रूपकला-संस्करण, पृष्ठ 282 छंदांक 36
13. हिन्दी-साहित्य का वृहत्-इतिहास, भाग 4, पृष्ठ 106, द्वितीयावृत्ति।
14. उत्तरीभारत की सन्त-परम्परा, पृष्ठ 233।
15. The Sikh religion, by M.A. Macauliffe Pp 120 Sixth volume
16. आदिग्रंथ में संग्रहित संतकवि, पृष्ठ 65 डॉ. महीपसिंह।
17. भक्तमाल, रूपकला-संस्करण, पृष्ठ 525।
18. आदिग्रंथ, पहली सैंची, पृष्ठ 13 भूमिका भाग, डॉ. मनमोहन सहगल।
19. रामरसिकावली, पृष्ठ 939 छंदांक 31 राजा रामसिंह को कबीर का शिष्य भी बताया है। "तहँ को राजा राम बघेला। वर्ण्यो जेहि कबीर को चेला ॥ करै रोज तिनकी सेवकाई। मुकुर देखावै तेल लगाई ॥"
20. रींवा राज्य का इतिहास : लेखक गुरु रामप्यारे अग्निहोत्री
21. रामरसिकावली, पृष्ठ 1080 से 1102 तक, रघुराजसिंहदेव।

22. रामरसिकावली, पृष्ठ 1102-1103, एवम् रींवा राज्य का इतिहास
23. रामरसिकावली, पृष्ठ 1102 से 1103 व वेबसाइट आन रींवा।
24. उत्तरीभारत की सन्तपरम्परा, पृष्ठ 232, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी।
25. अनन्तदास ने कुल नौ परचियाँ लिखी हैं : (1) नामदेव (2) त्रिलोचन (3) राँका-बाँका (4) धन्ना (5) पीपा (6) रैदास (7) कबीर (8) अंगद (9) सेऊ-संमन। इन्होंने नामदेव के परची में इसको बनाने का समय वि. सं. 1645 बताया है। अनन्तदास विनोदीजी का शिष्य और विनोदीजी अग्रदासजी, रैवासा के शिष्य थे।
26. अनंतदास कृत रैदास की परचई, विश्राम 7 को लेकर 9 तक। सिटी पैलेस, जयपुर की वि. सं. 1719, 1722, व 1744 की हस्तलिखित पुस्तकें व लेखक के निजी संग्रह में उपलब्ध 1869, 1844, 1903 वि. सं. की हस्तलिखित प्रतियाँ।
27. रामरसिकावली : वघेलवंशागमनिर्देश, महाराज रघुराजसिंहदेव निर्मित, पृष्ठ 1099।
28. उक्तानुसार, पृष्ठ 1100, 1101,
29. अनंतदास कृत कबीर की परचई, चौथे विश्राम के छंदांक 11 से लेकर छठे विश्राम के छंदांक 4 तक। विन्दु 26 में उल्लिखित व अन्यान्य हस्तलिखित ग्रंथ।
30. मनां भजसि रे हरि चरन।

परम पुनीति आरति हरन, और जँजाल सब तजसि लोई।
वेद पुरान जे कोटि सासतर पढै, बिना भगवंत नहिं मुक्ति होई ॥टेक॥
भजि हरि चरन जीति च्यारूयूँ वरन, जासकी जाति अछोप छीपा।
व्यास में लेखिये सनक में पेषिये, नामा की नामना सप्त दीपा ॥1॥
जाकै ईद बकरीद गऊ रह बध करै, मानिये सेख सहीद पीरा।
बाप वैसी करी पूत अैसी धरी, प्रथमि प्रसिध नवखण्ड कबीरा ॥2॥
जासु के कुटुंब के ढोर ढोवत फिरैं, अजहूँ वाणारसी आसपासा।
षटक्रम सहित विप्र डंडवत करैं, प्रगट नीसाण रैदास दासा ॥3॥
जपत जे जना चरण कंवलापति, तास सम तुलि नहीं आन कोई।
आप एक अनेक ह्वै विसतरूयौ, अंत ही एक ह्वै रह्यौ सोई ॥4॥
दसौं दिसि छाइ जस रह्यौ भरपूरि करि, कूण मारगि गयौ खोजौं न पाऊँ।
दास पीपौ कहै कठिण कलिकाल में, भगत भगवंत भजि पार पाऊँ ॥5॥

- दादूधाम नरायना के ग्रंथांक 496, 497, 561 व अन्य अनेक ग्रंथ, लिपिकाल क्रमशः 1660, 1785 व 1780 विक्रमसम्वत्
- लेखक का वैचारिकी, त्रैमासिकी, वर्ष 23 अंक 3 पृष्ठ 22 से 40 तक में छपा राजर्षि पीपा और उनकी रचनाएँ, नामक लेख
- रज्जव की सरवंगी, पृष्ठ 272-273; अंग 22, पदांक 22; सम्पादक ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल
- संतसप्तक, लेखक : ब्रजेन्द्रकुमार सिंहल

31. चौहान-कुल कल्पद्रुम, पृष्ठ 99, इसके अनुसार कड़वाराय (क्रोधसिंह) के पुत्र थे राजर्षि पीपा जिनका पूर्वाश्रमीय नाम बप्पाजी राजा था। ये निःसंतान थे। अतः इनका काकाजात भाई कल्याणराव इनकी गद्दी पर बैठा। इसका भोजराज और भोजराज का उत्तराधिकारी अचलदास खींची हुआ।

32. तबकाते अकबरी, जिल्द 3, पृष्ठ 207, 208 व 479
अचलदास खींची री वचनिका, शिवदास गाडण री कही, मूल पाठ 21 (1) व भूमिका पृष्ठ 85 व 138, सम्पादक डॉ. शंभुसिंह मनोहर
- राजस्थान के इतिहास का तिथिक्रम, पृष्ठ 12, लेखक सुखवीरसिंह गहलोत।
तबकाते फरिश्ता (ब्रिग्स कृत अंग्रेजी अनुवाद) जिल्द 4 पृष्ठ 23-25, 282-283
33. वचनिका : ऐतिहासिक परीक्षण, पृष्ठ 3, सं. दीनानाथ खत्री, ले. डॉ. दशरथ शर्मा
A descriptive catalogue of Bardic and Historical MSS. section II Part I, page 41 by Dr. P.L Tessitori.
34. डॉ. शंभुसिंह मनोहर ने अनेक विद्वानों के मतों का पूर्व पक्ष के रूप में उल्लेख कर उन्हें सप्रमाण निरस्त करते हुए निर्णय दिया है कि शिवदास गाडण जो अचलदास खींची का समकालीन तथा अचलदास खींची के पुत्र पाल्हणसी के साथ युद्ध के पूर्व ही गढ़ से निकलकर युद्ध से विरत हो गए थे, ने पाल्हणसी के राजकाल में हुए दूसरे शाके (सन् 1444) के पूर्व ही इस ग्रंथ का निर्माण कर दिया था क्योंकि गागरोन के इस दूसरे शाके का इस ग्रंथ में कोई उल्लेख नहीं है। अतः उनका निर्णय है कि इस वचनिका का रचनाकाल ई. 1434 से 1444 के बीच कभी भी हो सकता है। पृष्ठ 26, भूमिका।
डॉ. दशरथ शर्मा ने भी इसका रचनाकाल ई. 1435 वि. सं. 1492 माना है। देखें Rajasthan through the ages, page 459&460 by Dr. Dashrath Sharma.
35. खवास प्रायः नाई जाति के ही हुआ करते थे और वर्तमानकाल के 10-20 वर्ष पूर्व तक प्रायः नाइयों को खवासजी व नाइनों को खवासनजी कहा जाता था। 'खवास' शब्द खास से बना है जिसका तात्पर्य है 'निजी'। राजा का निजी सेवक। खवास नाई ही होते थे, ऐसा अटल नियम नहीं था। जयपुर का रोडाराम खवास दर्जी था। इसने रोड़पुरा नामक गाँव बसाया जिसको आजकल दुर्गापुरा (जयपुर) कहा जाता है।
36. भक्तमाल की भक्तदामगुणचित्रणी टीका, 39 वाँ रचनावृंद, छंदांक 29, पृष्ठ 298.
37. उक्त, छंद 29.
38. नाभा कृत भक्तमाल, छंदांक 36, रूपकला-संस्करण, पृष्ठ 282.
39. भक्तदामगुणचित्रणी टीका, 39वाँ रचनावृंद, छंदांक 34, पृष्ठ 298.
40. वही, छंदांक 39वाँ।
41. संत धन्ना जाट का पद, आदिगुरुग्रंथसाहिब, पृष्ठ 395, सैंची दूसरी।
42. रज्जब ने सरवंगी नामक ग्रंथ को विक्रमसम्वत् 1660 से 1670 के बीच कभी भी संकलित कर सम्पादित किया था। इसमें 149 अंग तथा 117 हिन्दी के रचनाकार हैं। उर्दू-फारसी व संस्कृत के रचनाकार इनसे अलग हैं। इसमें कुल 16 प्रकार के छंदों का प्रयोग होकर—4108 छंदों-पदों का संकलन है। देखें : रज्जब की सरवगी, सम्पादकः व्रजेन्द्रकुमार सिंहल। सन्तप्रवर सैन का पद इसमें 39वें अंग के 46वें पद के रूप में आया है।
43. दादू-शिष्य संतदास मारु के शिष्य सन्त गोपालदास ने वि.सं. 1684 में, जब वह 37 वर्ष की उम्र का था साँभर में रहते हुए 'सरबंगी-सरह-चिंतामणि' नामक ग्रंथ का संकलन-सम्पादन किया। इसमें कुल 126 अंग हैं जिनमें समाहित सामग्री का

अनुष्टुपश्लोकांक 25000 परिमाण है। इस ग्रंथ में संत सैन का 78वें अंग में 87वां पद है।

44. यह पाठ दादूधाम, नरायना के ग्रंथांक 496 के आधार पर है जिसका लिपिकाल वि.सं. 1660 है। चूँकि यह प्राचीनतम पाठ है। साथ ही अर्थ की दृष्टि से इसका पाठ प्रामाणिक लगता है। अतः अन्यान्य प्रंतियों से पाठान्तर नहीं दिये गये हैं। वैसे पाठांतर हैं भी सामान्य। ग्रंथांक 561 में बीनऊँ के स्थान पर केशव पाठांतर अवश्य महत्वपूर्ण है जो अर्थ भिन्नता भी उत्पन्न करता है।

45. यह पाठ दादूधाम, नरायना के ग्रंथांक 497 के आधार पर है। इसका लिपिकाल वि.सं. 1785 है। इसमें कुल 69 आरतियों का संकलन है जिसमें से इसका 19वाँ क्रमांक है। दादूधाम, नरायना की कई अन्य पंचवाणी-पुस्तकों में भी इस आरती का संकलन है। गुरुग्रंथीय-पाठ प्रकाशित है। अतः उसको पाठांतर में देना पृष्ठों को बढ़ाना मात्र है।

46. यह गोष्ठी वि.सं. 1869 में लिखी पुस्तक के पृष्ठ 343 से प्रारंभ होकर 345 पर समाप्त होती है। इस गोष्ठी के सम्पन्न होने के अनंतर ही रैदास तथा सैन की निष्ठा साकार भगवान् की ओर से हटकर निर्गुण-निराकार की ओर हो गई। संतों से सुना गया है कि रैदास द्वारा पदों व साखियों की रचना भी इस गोष्ठी के उपरान्त ही की गई। इसी कारण पदों व साखियों में सगुण-साकार निष्ठा का वर्णन न होकर निर्गुण-निराकार-निष्ठा का वर्णन है। इस गोष्ठी को पढ़ने पर उक्त तथ्य की पुष्टि भी होती है। यह रचना राजस्थान-प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जयपुर के ग्रंथांक 12 के पृष्ठ 324-325 पर भी लिखित है।

ॐ ॐ ॐ



पीपा बहुत ही क्रान्तिकारी विचारक थे। उन्ह
पर्दाप्रथा का घोर विरोध किया। नारी-अस्मि
को स्थापित कर उसकी स्वतंत्रता की न
डालकर उनको भगवद्भक्ति करने
अधिकारिणी घोषित किया। तेलन, कंडेरन
भंगनों को दीक्षित कर दलितोद्धार
हरिजनोद्धार का राजर्षि पीपा ने श्रीगणे
किया। शीलव्रत धारण करके गृहस्थ में
रहकर भगवद्भजन करने का मार्ग प्रश
किया। अनेक राजपूतों को लड़ने-भिड़ने
विरतकर शांति से जीने का मार्ग अपनाने
रास्ता बताया। काटने वाली तलवार
त्यागकर जोड़ने वाली सूईं को अपनाने
उपदेश दिया। राजमान्य होते हुए भी कभी
शासनतंत्र का इस्तेमाल नहीं किया। स
प्राप्त भिक्षान्न से ही जीवननिर्वाह कि
विकट से विकट स्थिति में भी भगवद्विश्व
को डिगने नहीं दिया।



ब्रजेन्द्रकुमार ताराचन्द्र सिंहल

जन्म : 23 नवम्बर, 1956 (गंगापुरसिटी, जिला सवाईमाधोपुर, राज॰)

विशेष अध्ययन : रामस्नेही संत श्रीकीर्तिरामजी से संस्कृत-साहित्य एवं संत-वाणियों का अध्ययन, दादूपंथी संत श्रीधनीरामजी से वेदांत-ग्रंथों एवं संतवाणियों का अध्ययन

व्यवसाय : दिल्ली स्थित निजी प्रतिष्ठान में महाप्रबंधक

विशेषज्ञ : संत-साहित्य, पाठालोचन व संपादन-कला, रामस्नेही-संप्रदाय व दादूपंथ सहित अनेक संत-भक्त-सम्प्रदायों के साहित्य व इतिहास के आधिकारिक विद्वान्

प्रकाशित ग्रंथ : 1. श्रीरामचरण-चरितामृत 2. श्रीसुरतराम-चरितामृत 3. श्री[illegible]वाणी पूर्वार्द्ध (सटीक) 4. श्रीरामप्रतापवाणी, पूर्वार्द्ध 5. रामस्नेही-मत-सिद्धान्त-दर्पण (पूर्वार्द्ध) 6. [illegible]स-वाणी [illegible] हरिदास-वाणी (सटीक) 8. आचार्य हिम्मतराम-ग्रंथावली (सटीक) 9. श्री[illegible]गी (स[illegible]मिका) [illegible] श्रीपोहकरदास-वाणी (सभूमिका) 11. श्रीसंग्रामदासजी के कुंडलिए 12. [illegible] और उनकी [illegible] (अनुवाद) 13. श्रीमुरलीरामवाणी (सभूमिका) 14. श्रीजगंनाथ-ग्रंथावली [illegible] 15. श्री[illegible]राम[illegible] 16. मीरां-चरितामृत 17. वषनांवाणी (सटीक) 18. टीला-पदावली [illegible]-प्रतीत-भगत [illegible] (सटीक) 20. नरसीजी रो माहेरो 21. ग्रंथ संतोषसुरतरु (सटीक) 2[illegible] [illegible]प्रभा-रसरंज[illegible] सुदंरविलास का विपर्जय का अंग (सटीक) 24. ग्रंथ नामप्रताप (सटीक) 2[illegible] [illegible]महिमा (सटीक) [illegible] दादू-चरित्र 27. हरदास-ग्रंथावली (सटीक) 28. बाजीद-ग्रंथावली भाग-1 (सटीक) 29. सर्वा[illegible] नवमविधान (सटीक) 30. प्रश्नोत्तर मणिरत्नमाला (सटिप्पण) 31. परची-तुलाराम कृत (सटिप्पण) 32. परची-लालदास कृत (सटिप्पण) 33. कान्हड़दास-वाणी 34. गरीबदास-ग्रंथावली (सटीक) 35. अर्जुनगीता (सटीक) 36. मीरांबाई : प्रामाणिक जीवनी एवम् मूल पदावली 37. जैमलजोगी-ग्रंथावली (सभूमिका) 38. साधुराम-ग्रंथावली (सभूमिका) 39. विज्ञान-दासोह (अनुवाद) 40. अल्लमप्रभु: व्यक्तित्व और कृतित्व (अनुवाद) 41. सूफी दरवेश बाबा शेख फरीद : जीवन और वाणी (सटीक) 42. कान्हां-ग्रंथावली (सटीक) 43. रज्जब की सरबंगी (सभूमिका) 44. ब्रह्मदास (भगतराम-शिष्य) वाणी (सटीक) 45. मारवाड़ी दरियावसाहब : जीवनी और वाणी 46. ब्रह्मदास (रामजंन-शिष्य) वाणी 47. राजस्थान में नरसी मेहता पर रचित साहित्य (नरसीजी रो माहेरो) 48. श्रीउदासीराम-वाणी 49. संत रामलगन-वाणी 50. रैदास-परचई (सटीक) 51. सूफी-सन्त-सौरभ

प्रकाश्य ग्रंथ : 1. बसवेश्वर और उनका समय 2. द्वारकादास अवधूत : व्यक्ति, वाणी और शिष्य-परम्परा 3. रैदास : वाणी और जीवनी 4. नामदेव : वाणी और जीवनी 5. पद्मिनी-समयो 6. चरणप्रकाश

विस्तृत भूमिकाएँ : 1. रामस्नेही स्वामी श्रीदेवादासजी की वाणी 2. रामस्नेही स्वामी श्रीगिरधरदासजी की वाणी

सम्पादक : श्रीरामस्नेही-संदेश (त्रैमासिक-पत्र)। अनेक प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में द्विशताधिक शोध-लेख प्रकाशित। अन्तर्राष्ट्रीय-रामस्नेही-संप्रदाय, प्रधानपीठ-शाहपुरा, प्रधानपीठ दादूपंथ नरायना; मीरां-स्मृति-संस्थान, चित्तौड़गढ़; साहित्य-मंडल, नाथद्वारा व भारतीय विद्या मंदिर, कोलकाता द्वारा सम्मानित।

संपर्क : 60/60 रजतपथ, मानसरोवर, जयपुर (राज॰) 302020

दूरभाष : (0141) 2782609, 9351503555